अस्स्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में तल-आधारित पारिस्थितिक समस्याएँ- एक अध्ययन

ASYOTHAR HINDI UPANYASOM MEIN THAL-AADHARITH PARISTHITHIK SAMASYAYEM-EK ADHYAYAN

शोध प्रबंध

कालिकट विश्वविद्यालय की

डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध

Thesis

Submitted to the University of Calicut

for the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY IN HINDI

निर्देशक :

डॉ.हेरमन.पी.जे

असिस्टेन्ट प्रोफेसर

हिन्दी विभाग

कालिकट विश्वविद्यालय

प्रस्तुतकर्ता :

फसीला.एम

शोध छात्रा

हिन्दी विभाग

कालिकट विश्वविद्यालय

हिन्दी विभाग

कालिकट विश्वविद्यालय

2019

Dr. HERMAN. P.J
Assistant Professor
Department of Hindi
University of Calicut

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"Asyothar Hindi Upanyasom Mein Thal-aadharith Paristhithik Samasyayem-Ek Adhyayan"** is a bonafide record of research work carried out by **FASEELA. M,** under my supervision and that no part of this thesis has hitherto been submitted for a Research Degree in any University.

C.U. Campus
Date:

Dr. HERMAN. P.J
(Supervising Teacher)

Dr. HERMAN. P.J
Assistant Professor
Department of Hindi
University of Calicut

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"Asyothar Hindi Upanyasom Mein Thal-aadharith Paristhithik Samasyayem-Ek Adhyayan"** is a bonafide record of research work carried out by **FASEELA. M,** under my supervision and that no part of this thesis has hitherto been submitted for a Research Degree in any University.

It is also certified that the reports of the adjudicators of the thesis have not been suggested any modifications/corrections on the work. It is also certified that contents of the hard copy and soft copy are the same.

C.U. Campus
Date:

Dr. HERMAN. P.J
(Supervising Teacher)

Dr. HERMAN. P.J
Assistant Professor
Department of Hindi
University of Calicut

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"Asyothar Hindi Upanyasom Mein Thal-aadharith Paristhithik Samasyayem-Ek Adhyayan"** is a bonafide record of research work carried out by **FASEELA. M,** under my supervision and that no part of this thesis has hitherto been submitted for a Research Degree in any University.

It is also certified that the reports of the adjudicators of the thesis have not been suggested any modifications/corrections on the work.

C.U. Campus
Date: 21/12/2019

Dr. HERMAN. P.J
(Supervising Teacher)

DECLARATION

I, **FASEELA. M**, do hereby declare that this thesis entitled **"Asyothar Hindi Upanyasom Mein Thal-aadharith Paristhithik Samasyayem-Ek Adhyayan"** is a record of bonafide research carried out by me and this has not previously formed the basis for the award of any Degree, Diploma, Associateship, Fellowship other similar Title or Recognition. This research work was supervised by **Dr. Herman. P.J**, Assistant Professor, Department of Hindi, University of Calicut.

C.U. Campus
Date:

FASEELA. M
Research Scholar
Department of Hindi
University of Calicut

अनुक्रमणिका

		पृ.सं.
प्राक्कथन		**i-v**
पहला अध्याय :		**1-60**
पारिस्थितिक विमर्श और साहित्य- एक परिचय		
1.1	प्रकृति और पर्यावरण	
1.2	पर्यावरण : अर्थ एवं परिभाषा	
1.3	पारिस्थितिकी तंत्र	
1.3.1	उत्पादक	
1.3.2	उपभोक्ता	
1.3.3	अपघटक	
1.4	मानव और पर्यावरण	
1.5	पर्यावरण प्रदूषण	
1.5.1	जल प्रदूषण	
1.5.2	वायु प्रदूषण	
1.5.3	ध्वनि प्रदूषण	
1.5.4	मिट्टी प्रदूषण	
1.5.5	वन-विनाश	
1.6	पारिस्थितिकी विज्ञान	
1.7	पारिस्थितिक दर्शन	
1.7.1	गहन पारिस्थितिवाद	
1.7.2	सामाजिक पारिस्थितिवाद	

1.7.3 पारिस्थितिक मार्क्सवाद

1.7.4 पारिस्थितिक स्त्रीवाद

1.8 पर्यावरण संस्थाएँ

1.8.1 पर्यावरण संरक्षण : अंतर्राष्ट्रीय स्तर

1.8.1.1 स्टॉकहोम सम्मेलन

1.8.1.2 संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम

1.8.1.3 नैरोबी सम्मेलन

1.8.1.4 वियन्ना सम्मेलन

1.8.1.5 रयो घोषणा

1.8.1.6 क्योटो प्रोटोकोल

1.8.1.7 कोपनहेगन सम्मेलन

1.8.2 पर्यावरण संरक्षण: भारत में

1.8.2.1 भारतीय संविधान में पर्यावरण संरक्षण

1.8.2.2 पर्यावरण संरक्षण अधिनयम

1.8.2.3 भारत के प्रमुख पर्यावरण- संरक्षण आन्दोलन

1.8.2.3.1 चिपको आन्दोलन

1.8.2.3.2 सेव सैलेंडवाली आन्दोलन

1.8.2.3.3 बलियापल आन्दोलन

1.8.2.3.4 नर्मदा बचाओ आन्दोलन

1.8.2.3.5 अपिको आन्दोलन

1.8.2.3.6 गंगा रक्षा आन्दोलन

1.8.2.3.7 चिलका समिति

1.9 पर्यावरण शिक्षा

1.9.1 पर्यावरण शिक्षा की परिभाषा

1.9.2 पर्यावरण शिक्षा का महत्व

1.10 पारिस्थितिक सौंदर्यशास्त्र

1.11 पारिस्थितिक चिंतन : सृजनात्मक स्तर में

1.11.1 पारिस्थितिक बोध : पाश्चात्य दृष्टिकोण

1.11.2 हिन्दी साहित्य में पारिस्थितक चिंतन

1.11.3 मलयालम साहित्य में पारिस्थितिक बोध

निष्कर्ष

दूसरा अध्याय :

अस्स्योत्तर हिन्दी उपन्यास : एक सामान्य परिचय **61-104**

2.1 उपन्यास शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ

2.2 उपन्यास की परिभाषा

2.3 हिन्दी उपन्यास : विकास यात्रा

2.3.1 पूर्व प्रेमचंदयुगीन उपन्यास

2.3.2 प्रेमचंदयुगीन उपन्यास

2.3.3 प्रेमचंदोत्तरयुगीन उपन्यास

2.4 समकालीन हिन्दी उपन्यास

2.5 समकालीनता

2.5.1 समकालीनता की परिभाषा

2.6 आधुनिकता

2.7 समकालीन उपन्यास

2.7.1 समकालीन उपन्यास की प्रवृत्तियाँ

2.7.1.1 बदलते ग्रामीण जीवन का चित्रण

2.7.1.2 मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण

2.7.1.3 शहरीकरण का चित्रण

2.7.1.4 कला, साहित्य और पत्रकारिता

2.7.1.5 स्त्री विमर्श

2.7.1.6 दलित विमर्श

2.7.1.7 सांप्रदायिकता का चित्रण

2.7.1.8 पारिस्थितिक विमर्श

2.7.1.9 बदलते राजनीति

2.7.1.10 शैक्षिक विमर्श

2.7.1.11 विदेशी परिवेश

2.7.1.12 आदिवासी विमर्श

2.7.1.13 इतरलिंगीय विमर्श

2.7.1.14 वृद्ध विमर्श

2.7.1.15 प्रवासी विमर्श

2.7.1.16 मीडिया विमर्श

निष्कर्ष

तीसरा अध्याय : 105-197

हिन्दी उपन्यास में पारिस्थितिक चिंतन

3.1 रंगभूमि

3.2 सावधान! नीचे आग है

3.3 धार

3.4 डूब

3.5 गगन घटा घहरानी

3.6 पार

3.7 इदन्नमम

3.8 अनबीता व्यतीत

3.9 कुइयाँजान

3.10 हलफनामे

3.11 दावानल

3.12 ग्लोबल गाँव के देवता

3.13 मरंग गोडा नीलकंठ हुआ

निष्कर्ष

चौथा अध्याय :

अस्स्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में तल-आधारित पारिस्थितिक समस्याएँ **198-244**

4.1 जल-प्रदूषण

4.2 वायु-प्रदूषण

4.3 मिट्टी-प्रदूषण

4.4 ध्वनि प्रदूषण

4.5 अस्स्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में चित्रित तल-आधारित पारिस्थितिक समस्याएँ

4.5.1 खनन उद्योग और पारिस्थितिक आघात

4.5.1.1 खनिज, खनन, खदान

4.5.1.2 खनन इंजिनीयरी

4.5.2 बाँध : विकास है या विनाश

4.5.3 कटता वन और बनता रेगिस्तान

4.5.4 भूगर्भजल शोषण और बोरवेल उद्योग

4.5.5 रासयनिक प्रदूषण व कारख़ाना

4.5.6 पहाडों को पीसनेवाले क्रशर उद्योग

निष्कर्ष

पाँचवाँ अध्याय : 245-284

चर्चित उपन्यासों में अभिव्यक्त प्रतिरोध की आवाज़

5.1 सावधान! नीचे आग है

5.2 धार

5.3 डूब

5.4 गगन घटा घहरानी

5.5 पार

5.6 इदन्नमम

5.7 हलफनामे

5.8 दावानल

5.9 ग्लोबल गाँव के देवता

5.10 मरंग गोडा नीलकंठ हुआ

निष्कर्ष

उपसंहार 285-294

संदर्भ ग्रंथ सूची 295-303

Dr. HERMAN. P.J
Assistant Professor
Department of Hindi
University of Calicut

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"Asyothar Hindi Upanyasom Mein Thal-aadharith Paristhithik Samasyayem-Ek Adhyayan"** is a bonafide record of research work carried out by **FASEELA. M,** under my supervision and that no part of this thesis has hitherto been submitted for a Research Degree in any University.

It is also certified that the reports of the adjudicators of the thesis have not been suggested any modifications/corrections on the work.

C.U. Campus
Date: 21/12/2019

Dr. HERMAN. P.J
(Supervising Teacher)

प्राक्कथन

वर्तमान समाज कई प्रकार की समस्याओं से गुज़र रहे हैं। इनमें सबसे प्रमुख और ज्वलंत है पारिस्थितिक समस्याएँ, जो आज किसी एक देश या समाज की नहीं, बल्कि विश्वभर में इनको लेकर गंभीर चर्चाएँ हो रही हैं। आज की पारिस्थितिक समस्याओं के मूल कारण हैं- औद्योगीकरण, शहरीकरण, जनसंख्या विस्फोट, आधुनिकीकरण आदि। आधुनिक युग में विकास के नाम पर, विज्ञान और सूचना प्रौद्योगिकी के ज़रिए मानव द्वारा प्रकृति पर हस्तक्षेप हो रहे हैं। फलस्वरूप कई प्रकार की समस्याएँ उभर आने लगी है। तापमान में वृद्धि, ओसोन परत का क्षय, जलवायु परिवर्तन, अम्लवर्षा, वर्षा में कमी, जल-वायु-मिट्टी का प्रदूषण, प्राकृतिक आपदाएँ आदि कई समस्याओं का सामना करना पडा। इस प्रकार आधुनिक मानव के अविवेकपूर्ण क्रिया-कलाप, जब पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगाने लगे तब समाज में पारिस्थितिक बोध का उदय हुआ। समाज के कुछ सजग और सक्रिय मानव इन विकास नीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाने लगे। इसके फलस्वरूप कई आन्दोलनों व सम्मेलनों का जन्म हुआ। साहित्यकार का ध्यान भी इस भीषण समस्या के प्रति आकर्षित होने लगा और साहित्य के क्षेत्र में पारिस्थितिक विमर्श नामक एक नई विचारधारा का उदय हुआ। पारिस्थितिक विमर्श दरअसल प्रकृति की चेतावनियों को सुनकर मानव द्वारा अपनी गलतियों को सुधारने तथा प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण और समन्वयात्मक संबंध स्थापित करने का आह्वान देता है। पाश्चात्य जगत में सन् 1962 में 'रेचल कारसन' की 'साइलेंड स्प्रिंग' नामक रचना को ही इस दिशा का पहला कदम माना जाता है। इसके बाद सन् 1972 में संयुक्त राष्ट्र संघ के नेतृत्व में पर्यावरण संरक्षण को ध्यान में रखकर कई सम्मेलनों तथा

कार्यक्रमों का आयोजन हुआ और दुनियाभर में पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रयत्न करने का आह्वान दिया गया। भारत में चिपको आन्दोलन, सैलेंडवाली आन्दोलन, भोपाल गैस त्रासदी आदि घटनाओं के कारण भारतीय जनमानस में भी पर्यावरण संबंधी सजगता बल पकडने लगी। इसलिए भारतीय साहित्य में भी इसकी सशक्त अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। इस सिलसिले में हिन्दी साहित्य विशेषकर हिन्दी के उपन्यास, कविता, कहानी में पृथ्वी की रक्षा के लिए कई प्रयत्न हो रहे हैं।

अस्स्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में पारिस्थितिक संकट मुख्य विषय बनकर आया है। इसलिए **"अस्स्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में तल-आधारित पारिस्थितिक समस्याएँ- एक अध्ययन"** शोध विषय के रूप में समीचीन लगा। अस्सी के बाद के हिन्दी उपन्यासों से दस प्रमुख उपन्यासों को लेकर मैंने अपना अध्ययन पूरा किया है। संजीव, रणेन्द्र, महुआमाजी, राजू शर्मा, वीरेन्द्र जैन, नवीन जोशी, मनमोहन पाठक, मैत्रेयी पुष्पा जैसे उपन्यासकारों के पर्यावरण संबंधी दृष्टिकोण एवं पारिस्थितिक समस्याओं को रोकने के लिए साहित्यकारों द्वारा किये जानेवाले प्रयासों आदि को समझने का सुअवसर था प्रस्तुत अध्ययन।

अध्ययन को क्रमबद्ध और सुविधापूर्ण रखने के लिए पाँच अध्यायों में विषय को बाँटा गया है और अंत में उपसंहार है।

पहला अध्याय है **'पारिस्थितिक विमर्श और साहित्य : एक परिचय'**। इसमें पर्यावरण, पारिस्थितिक तंत्र, मानव और पर्यावरण, पर्यावरण प्रदूषण, पारिस्थितिकी विज्ञान, पारिस्थितिक दर्शन, पर्यावरण संरक्षण, सृजनात्मक स्तर में पारिस्थितिक चिंतन आदि कई मुद्दों पर चर्चा की गई है।

दूसरा अध्याय **'अस्स्योत्तर हिन्दी उपन्यास : एक सामान्य परिचय'** में उपन्यास की व्युत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा को देकर हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा के प्रमुख चरणों का परिचय दिया है साथ ही साथ समकालीन हिन्दी उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्तियों पर चर्चा भी की गई हैं।

तीसरा अध्याय है **'हिन्दी उपन्यासों में पारिस्थितिक चिंतन'**। प्रस्तुत अध्याय में सबसे पहले 'रंगभूमि' उपन्यास में अभिव्यक्त पारिस्थितिक संकट पर चर्चा करते हुए अस्स्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में चित्रित पारिस्थितिक समस्याओं पर अध्ययन किया गया है। अस्सी के बाद के संपूर्ण पारिस्थितिक उपन्यास पर चर्चा करना असंभव है। इसलिए मैं ने संजीव, रणेन्द्र, महुआमाजी, वीरेन्द्र जैन, कमलेश्वर, नासिरा शर्मा, नवीन जोशी, मैत्रेयी पुष्पा आदि कुछ प्रमुख उपन्यासकारों के तेरह उपन्यासों को चुनकर उनका विस्तृत परिचय देने की कोशिश की है।

चौथा अध्याय है **'अस्स्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में तल-आधारित पारिस्थितिक समस्याएँ-एक अध्ययन'**, जिसमें अस्स्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में तल-आधारित अर्थात् पृथ्वी के तल पर अथवा धरातल पर मानव के अविवेकपूर्ण क्रिया-कलापों द्वारा उत्पन्न पारिस्थितिक समस्याओं का अध्ययन किया गया है। ख्रनन उद्योग, बाँधों का निर्माण, वनों की अंधाधुंध कटाई, बोरवेल उद्योग, क्रशर उद्योग, कारख्रानों का भरमार आदि से उत्पन्न पारिस्थितिक समस्याएँ बहुत ख्रतरनाक और भयानक है। अस्सी के बाद प्रकाशित दस उपन्यासों को चुनकर, उनमें, आर्थिक प्रगति को लक्ष्य बनाकर मानव द्वारा किये जाने वाले उपर्युक्त कहे गये विकास कार्यों से उत्पन्न पारिस्थितिक संकट पर अध्ययन किया गया है।

पाँचवाँ अध्याय **'चर्चित उपन्यासों में प्रतिरोध की आवाज़'** में शोध प्रबंध के लिए चुने गये दस उपन्यासों में चित्रित समस्याओं के प्रति लेखक के प्रतिरोधों पर विचार किया गया है।

अंत में **'उपसंहार'** है, जिसमें इस शोध प्रबंध का निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध कालिकट विश्वविद्यालय के असिस्टेन्ट प्रोफेसर **डॉ. हेरमन. पी.जे** के निर्देशन में संपन्न हुआ है। विषय चयन से लेकर शोध-प्रबंध के प्रणयन तक उन्होंने अपने बहुमूल्य सुझावों, विद्वतापूर्ण दिशा-निर्देशों से मुझे एक शोधार्थी होने का एहसास दिलाया और समयोचित प्रोत्साहनों एवं सुधारों के ज़रिए शोधकार्य के बीच में आए अंतः बाह्य संघर्षों से ऊपर उठाया। अपने पूजनीय गुरुवर डॉ. हेरमन जी के प्रति मेरी असीम आभार तहे दिल से व्यक्त कर रही हूँ।

शोध सामग्री, संदर्भ एवं प्रेरणा के रूप में काम में आए ग्रंथों के लेखकों, उनके प्रकाशकों के प्रति भी मेरी कृतज्ञता ज्ञापित कर रही हूँ। विभाग के आदरणीय गुरुजनों, मेरे प्रेरणास्रोत रहे मित्रों, दफतर एवं पुस्तकालय के कर्मचारियों, शोध छात्र-छात्राओं, शोध प्रबंध के टंकण एवं मुद्रण कार्यों से जुडनेवालों के प्रति भी मैं सर्वदा कृतज्ञ रहूँगी। मेरे जीवन साथी षौक्कत्तली और मेरी बेटी अयिशा नौरिन एवं दोनों परिवारवालों का पूर्ण सहयोग और प्रोत्साहन मुझे सदैव मिलते रहे। उन सबके प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ।

बचपन से अब तक हिन्दी भाषा और साहित्य से मेरा नाता जोडनेवाले सभी अध्यापक बंधुओं का स्मरण करते हुए इस शोध प्रबंध को उसकी खामियों और खूबियों के साथ आपके सम्मुख सविनम्र प्रस्तुत कर रही हूँ।

हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय
दिनांक :

फसीला. एम
शोध छात्रा

पहला अध्याय

पारिस्थितिक विमर्श और साहित्य-एक परिचय

पृथ्वी में जीवन बनाये रख्रने में पर्यावरण का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए ही पर्यावरण नियमों के अनुसार उचित रूप में उसकी रक्षा करना अत्यंत अनिवार्य है। नहीं तो उसमें जीवन का अस्तित्व ख्रतरे में पड जाएगा। अपनी आरंभिक सदियों में प्राकृतिक संसाधनों से संपन्न, जैवविविधता से पुष्ट, जीवदायक पृथ्वी आज संपूर्ण जीव जगत् के सामने प्रश्नचिह्न बनकर ख्रडी है। पर्यावरण के ऐसा एक ख्रतरनाक बदलाव का एकमात्र कारण मानव ही है। कालानुसार तथा मानव अपने लिये बेहतर एवं सुविधाजनक परिस्थिति बनाने के तहत विकास के नाम पर, अपनी असीमित इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विज्ञान और तकनीकी की सहायता से प्रकृति का निरंकुश शोषण करते रहे। फलस्वरूप कई प्रकार के पारिस्थितिक संकट पैदा हुए। पर्यावरण प्रदूषण, जनसंख्या विस्फोट, पारिस्थितिक असंतुलन, अम्ल वर्षा, ओसोन परत का क्षय आदि कई प्रकार की समस्याएँ जीवजगत के भविष्य की सबसे बडी चनौती बन गयी है। इस प्रकार जब मानव, विज्ञान की ख्रूबियों को बिना प्रकृति की कोई चिंता से सिर्फ अपनी स्वार्थ लोलुपता की पूर्ति के लिए प्रयुक्त करने लगे तब उसके प्रतिरोध के रूप में समाज में पारिस्थितिक बोध का उदय हुआ। फलस्वरूप बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में पाश्चात्य देशों में 'पारिस्थितिक विज्ञान' नामक एक विज्ञान शाख्रा रूपायित हुई। पर्यावरण की रक्षा, प्रकृति की जैवविविधता और उनके पारस्परिक संबंधों का अध्ययन, प्राकृतिक संसाधनों का उचित रूप में उपयोग, प्राकृतिक नियमों के अनुरूप तैयार की गई विकास योजनाएँ आदि कई महत्वपूर्ण विषयों पर अध्ययन करना ही पारिस्थितिक विज्ञान का लक्ष्य है। किसी भी समाज की समकालीन परिस्थितियों का प्रभाव वहाँ के साहित्य पर भी हम देख्र सकते हैं। इसलिए ही 'पारिस्थितिक समस्याएँ' साहित्य का एक प्रमुख्र हिस्सा बन गया है। अस्तित्व का सवाल होने के कारण ही

साहित्यकारों ने इसे अन्य सामाजिक समस्याओं से ज़्यादा महत्व दिया है। फलस्वरूप साहित्य में पारिस्थितिक विमर्श (Eco-criticism) नामक एक नयी विचारधारा की शुरूआत हुई। वैसे पर्यावरण की दुख्रद स्थिति और शेष वन्य प्रकृति का रुदन दोनों सर्जनात्मकता से मिलकर श्रेष्ठ साहित्यिक रचनाओं में परिणत होने लगी।

'पर्यावरण और साहित्य' इस विषय पर गहराई से जानने से पहले मौलिक रूप में इससे जुडी कुछ अन्य बातों को समझना अत्यंत अनिवार्य है।

1.1 प्रकृति और पर्यावरण (Nature and Environment)

प्रकृति और पर्यावरण ये शब्द प्रत्यक्ष रूप में एक जैसे लगने पर भी दोनों भिन्न-भिन्न अर्थों को ही सूचित करते हैं। हमारे चारों ओर दिख्राई देनेवाले, अर्थात् हमारी आँख्रों के सामने प्रत्यक्ष रूप में दिख्रनेवाले दृश्य जगत को ही हम प्रकृति के रूप में मानते हैं। प्रकृति अनंत है, जो हमारे पैरों के नीचे पडी हुई धूल से लेकर साक्षात् दिव्य गौरव विराट हिमालय तक फैली हुई है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति की तुलना ईश्वर से की गई है। इसलिए ही हमारे पुराणों, वेदों, रामायण आदि में सूर्य, अग्नि, समुद्र आदि प्राकृतिक तत्वों को ईश्वर के विभिन्न रूप मानते हैं और उनकी पूजा भी करते हैं।

पर्यावरण अत्यंत व्यापक शब्द है। इसके विस्तार की कोई सीमा नहीं है। प्रकृति के सारी जैविक और अजैविक तत्वों और उनके जीवन एवं विकास को प्रभावित करनेवाली सारी दशाओं और प्रभावों को ही हम पर्यावरण मानते हैं।

1.2 पर्यावरण : अर्थ एवं परिभाषा (Environment : Meaning, Definition)

पर्यावरण का अंग्रेज़ी शब्द है Environment, जो फ्रंच भाषा के शब्द 'Environer' से बना है, जिसका अर्थ है संपूर्ण पारिस्थितिकी। पर्यावरण शब्द

परि + आवरण से बना है। 'परि' का अर्थ है 'चारों ओर से', 'सब ओर से' और 'आवरण' का अर्थ है 'घेरा हुआ'। अर्थात् पर्यावरण का अर्थ है हमारी चारों दिशाओं में घिरा हुआ आवरण या भौतिक तथा सामाजिक परिवेश। प्रारंभ में मनुष्य के पर्यावरण की रचना केवल इस पृथ्वी के भौतिक तथा जैविक तत्वों द्वारा ही हुआ है। लेकिन समय के परिवर्तन के साथ मानव अपने सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक कार्यों के माध्यम से अपने पर्यावरण को विस्तृत करने लगे। इसके फलस्वरूप पर्यावरण के अंतर्गत भौतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक पर्यावरण शामिल होते गये। इस प्रकार पर्यावरण अनेक तत्वों का समूह होता है और इसमें प्रत्येक तत्व का अपना महत्वपूर्ण स्थान भी है।

विभिन्न विद्वानों द्वारा पर्यावरण को परिभाषित करने की कोशिश हुई है। इनमें से कुछ हैं-

बोरिंग के अनुसार- "एक व्यक्ति के पर्यावरण में वह सब कुछ सम्मिलित किया जाता है जो उसके जन्म से मृत्यु पर्यन्त प्रभावित करता है।" (A person's environment consists of the sum, total of the stimulation which he receives from his conception untill his death.)[1]

हॉलैण्ड तथा डगलस के अनुसार- "The term environment is used to describe, in the aggregate all the external forces, influences and conditions which affect the life, nature, behaviour and the growth, development and maturity of living organisms." "जीव जगत् के प्राणियों के विकास, परिपक्वता, प्रकृति, व्यवहार तथा जीवन शैली को प्रभावित करनेवाली बाह्य समस्त शक्तियों, परिस्थितियों तथा घटना को पर्यावरण में सम्मिलित किया जाता है और उन्हीं की सहायता से पर्यावरण का वर्णन किया जाता है।"[2]

डॉ. रघुवंशी के अनुसार- "पर्यावरण का प्रत्येक भाग जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में जीवों के जीवन को प्रभावित करता है, उस आवास विशेष का कारक कहलाता है।"[3]

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट होता है कि हमारे चारों ओर प्रकृति में जो कुछ भी जैविक या अजैविक तत्व होते हैं- जैसे वायु, जल, मृदा, पेड-पौधे, जीव-जन्तु ये सब सम्मिलित होकर ही पर्यावरण की संरचना बनती है। इसलिए पर्यावरण को जैवमंडल (Biosphere) भी कहते हैं।

संरचना के आधार पर पर्यावरण को अजैविक तथा जैविक पर्यावरण- इन दो वर्गों में बाँटा गया है। इनमें अजैविक पर्यावरण के अंतर्गत स्थल मंडल, जल मंडल तथा वायु मंडल आते हैं और जैविक पर्यावरण के अंतर्गत जीवजंतु तथा पेड-पौधे आदि आते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हमारी चारों दिशाओं में घिरा हुआ आवरण ही पर्यावरण है। इसमें अनेक प्रकार के जैविक तथा अजैविक तत्व सम्मिलित हैं, जो एक दूसरे से प्रभावित व आश्रित हैं। हर एक सृष्टि के निर्माण के साथ उसके पर्यावरण का भी निर्माण हुआ है। क्योंकि प्रकृति के सभी जीव-जंतुओं, वनस्पतियों, पेड-पौधों का अस्तित्व बनाये रखने के लिए उसका पर्यावरण अत्यंत अनिवार्य है।

लेकिन आधुनिक मानव यह परम सत्य भूल जाते हैं कि पर्यावरण के बिना हमारा अस्तित्व संभव नहीं है। इसलिए विज्ञान और तकनीकी के ज़रिये प्रकृति का नाश ही कर रहे हैं। विकास के बहाने प्राकृतिक तत्वों का लूट कर रहे हैं। अब हालत इस प्रकार बदल गयी है कि प्रकृति स्वयं अपना संतुलन बनाये रखने में अक्षम

सिद्ध हुई है। ऐसी स्थिति में सुप्रसिद्ध अमरिकी अन्तरिक्ष यात्री श्री वाल्टर एम.एम शिरा का कथन ध्यान में रखना समीचीन है-

"चन्द्रमा मानव निवास के लिए उपयुक्त स्थान नहीं है, और न ही शुक्र और मंगल ग्रह है। हमारे लिए अच्छा यही होगा कि हम जो कुछ भी कर सकते हैं तो वह धरती को स्वच्छ बनाने के लिए करें क्योंकि यही वह स्थान है जहाँ हमें रहना है।"[4]

1.3 पारिस्थितिकी तंत्र (Eco-System)

हमारे चारों तरफ वातावरण में अनेक प्रकार के जैव-अजैव घटक होते हैं। प्रत्येक घटक एक दूसरे से ऊर्जा एवं द्रव्य आदि का आदान-प्रदान करते हैं, जिससे कि पारिस्थितिकी तंत्र की चाक्रिक प्रणाली ज़ारी रहती है।

पारिस्थितिकी तंत्र शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ए.जी. टांसले ने सन् 1935 में किया। पारिस्थितिकी तंत्र पर्यावरण की बृहद, संरचनात्मक तथा कार्यात्मक इकाई है, जो सजीव प्राणियों तथा उनके वातावरण से बनती है। इसके बिना पृथ्वी पर जीवन असंभव है। पारिस्थितिकी तंत्र में समुदाय आपस में तथा भौतिक वातावरण से ऊर्जा, द्रव्य आदि का आदान-प्रदान करते रहते हैं। विभिन्न पारिस्थितिकी तंत्र के उदाहरण हैं- जंगल, गाँव, तालाब आदि।

मौलिक रूप से सभी पारिस्थितिक तंत्र की संरचना समान होती है। प्रत्येक पारिस्थितिकी तंत्र में दो आधारभूत घटक होते हैं-अजैविक घटक और जैविक घटक। अजैविक घटकों के अंतर्गत कार्बनिक, अकार्बनिक तथा भौतिक तत्व आ जाते हैं। जैविक तथा अजैविक पदार्थों को आपस में जोडने के लिए तथा जैविक पदार्थों के

अस्तित्व के लिए आवश्यक गैस, जलवायु, ताप, सूर्य, ख्रनिज लवण आदि को ही हम अजैविक घटक मानते हैं।

अकार्बनिक तत्वों के अंतर्गत कार्बन, जल, ऑक्सीजन, कार्बन डाइ ऑक्साइड, नैट्रोजन, हाइड्रोजन एवं ख्रनिज लवण आदि आते हैं।

कार्बनिक पदार्थों में प्रोटीन, कारबोहाइड्रेट, क्लोरोफिल आदि आते हैं। इनका प्रमुख्र कार्य है जैविक और अजैविक पदार्थों को जोडना।

भौतिक कारकों के अंतर्गत जलवायु (Climate) प्रकाश, ताप, मृदा, सूर्य से प्राप्त ऊर्जा आदि आते हैं।

पारिस्थितिकी तंत्र के जैविक घटक उसके सजीव प्राणी हैं। ऐसे जीवित प्राणियाँ मिलकर संयुक्त रूप से पारिस्थितिकी तंत्र का एक समुदाय बनता है। इसमें उत्पादक, उपभोक्ता और अपघटक आदि सम्मिलित हैं।

1.3.1 उत्पादक

प्रकृति में हरे पौधे स्वपोषी होते हैं, जो अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। हरे पौधों में पाये जानेवाले हरितलावक द्वारा वे सूर्य के प्रकाश से कार्बन डाइ ऑक्साइड व जल ग्रहण कर अकार्बनिक पदार्थों को कार्बनिक पदार्थों में परिवर्तित करते हैं। इस प्रकार अपना भोजन स्वयं निर्मित होने के कारण ही उन्हें उत्पादक कहे हैं।

1.3.2 उपभोक्ता

इन्हें परपोषी भी कहते हैं। क्योंकि ये जीव अपने भोजन के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पौधों अर्थात स्वपोषी पर निर्भर रहते हैं। इन्हें चार वर्गों में विभक्त किये जाते हैं-

प्रथम उपभोक्ता, द्वितीय उपभोक्ता, तृतीय उपभोक्ता और चतुर्थ उपभोक्ता।

सभी शाकाहारी जंतुओं को प्रथम उपभोक्ता कहा जाता है जो अपने भोजन के लिए पेड-पौधों पर आश्रित रहते हैं। उदाः खरगोश, हिरण, गाय आदि।

द्वितीय उपभोक्ता वे जीव होते हैं जो प्रथम उपभोक्ताओं को खाते हैं। जैसे टिड्डी को मेंढक खाते हैं।

द्वितीय उपभोक्ताओं को खानेवाले जीवों को तृतीय उपभोक्ता कहते हैं। उदाः- मेंढक को साँप खाता है।

चतुर्थ उपभोक्ताओं को हम सर्वोच्च उपभोक्ता भी कह सकते हैं। इस श्रेणी के जीव तृतीय उपभोक्ता को खाते हैं। जैसे साँप को चील खाती है।

1.3.3 अपघटक

ये भी पारिस्थितिक तंत्र के सजीव घटक हैं। इसके अंतर्गत निम्न कोटि के प्राणी जैसे जीवाणु (Bacteria) कवक (Fungi) आदि आते हैं। स्वपोषी और परपोषी की मृत्यु के बाद ये प्राणी उन मृत शरीरों का विघटन करके अपना भोजन प्राप्त करते हैं। इसलिए इन्हें मृतजीवी भी कहते हैं।

इस प्रकार प्रकृति के पारिस्थितिकी तंत्र में जैविक एवं अजैविक पदार्थों का चक्र चलता रहता है इससे ही पर्यावरण संतुलन बना रहता है। पारिस्थितिकी तंत्र के जैविक-अजैविक तत्व अपने पोषण के लिए एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। ऐसे वे परस्पर संबंधित आहार श्रृंखला का निर्माण करते हैं। इसलिए मानव के जल-जंगल-

जमीन पर किये जानेवाले हस्तक्षेप के द्वारा इनमें से किसी एक का अभाव पर्यावरण असंतुलन का कारण बन जाता है।

1.4 मानव और पर्यावरण (Man and Environment)

मानव अपने विकास के प्रथम चरण में प्रकृति के अन्य जीवों से भिन्न नहीं थे। वे अपनी आधारभूत आवश्यकताओं- जैसे भोजन, आवास, वस्त्र आदि की पूर्ति प्रकृति से ही करते थे। वे फल खाते थे, जानवरों का शिकार करते थे, गुफाओं में जीते थे। इस प्रकार वे प्रकृति से आत्मीयतापूर्ण संबंध रखते थे। वे अपने हथियारों के रूप में पत्थर का प्रयोग ही करते थे। लेकिन जब उन्होंने पत्थर से आग पैदा करना सीखा तब से लेकर उनके जीवन में बदलाव आने लगे। आग की खोज मानव जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया। तब से लेकर मानव की आवश्यकताओं में भी वृद्धि होने लगी। उन्होंने 'पका भोजन' खाना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे वे अपने बुद्धि और कौशल का आवश्यकतानुसार उपयोग करने लगे। वे जंगल साफ करके और ज़मीन जोतकर मिट्टी को कृषि के अनुकूल बनाकर कृषि कार्य करने लगे और स्वास्थ्य के लिए उत्तम पेड-पौधों को पहचानकर पालना शुरु किया। छोटे-छोटे समूह बनकर जीने लगे। तब वे पर्यावरणीय संसाधनों का उपयोग प्राकृतिक नियमों के अनुरूप ही करते थे। कृषि कार्य के लिए उपयुक्त स्थान नदियों के तट थे। इसलिए नदियों के किनारे छोटे-छोटे समूह में रहने लगे। इसी कारण से ही हमारी पुरानी सभ्यताएँ नदियों के किनारे पनपी। धीरे-धीरे कस्बों, गाँवों तथा शहरों का निर्माण हुआ।

बढती जनसंख्या के कारण पर्यावरण संसाधनों के उपयोग में भी वृद्धि हुई। साथ-साथ भौतिक सुख-सुविधाएँ, आर्थिक उन्नति आदि को लक्ष्य बनाकर मानव

पर्यावरण को अपनी इच्छाओं के अनुरूप परिवर्तित करने लगे। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के ज़रिये प्रकृति के रहस्यों को खोजने लगे तथा पृथ्वी के गोद में पडे अमूल्य संसाधन देखकर मानव अपने स्वार्थ इच्छा को काबू में नहीं कर पाए। सिर्फ मुनाफे को लक्ष्य करते हुए धरती की छाती से उन्हें लूटने लगे। अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए उन्होंने प्रकृति पर विजय पाना एक चुनौती के रूप में स्वीकारा। धीरे-धीरे प्रकृति उनकी दासी और मानव प्रकृति का शासक बन गये। फलस्वरूप प्राकृतिक असंतुलन होने लगे और कई प्रकार की समस्याएँ उभर आने लगी। फिर भी मानव इस बात का नज़रअंदाज़ करते हैं कि प्रकृति का शोषण अपना ही शोषण है, प्रकृति पर विजय अपने लिए मकबारा तैयार करना है। कभी-कभी अपने ऊपर होनेवाले इन हस्तक्षेपों के विरुद्ध प्रकृति अपना प्रकोप कुछ संदेशों के ज़रिए जैसे सूखा, बाढ, सुनामी, भूकंप आदि प्रकट करते हैं फिर भी मानव इन संदेशों को सही ढंग से पहचानने में असमर्थ रहते हैं और अपनी हरकत से पीछे मुडने से तैयार नहीं होते। इसलिए हमें बिलकुल सावधान होना ज़रूरी है। यदि मानव अपने अविवेकपूर्ण व्यवहार और दोहन समाप्त नहीं करते तो सर्वनाश का उस दिन दूरी पर नहीं है।

1.5 पर्यावरण प्रदूषण (Environmental Pollution)

पर्यावरण के सभी जैव-अजैव घटक एक दूसरे से आश्रित रहते हैं, ये सब आपस में सामंजस्य रखते हुए प्रकृति में अपना जो कर्तव्य है उन्हें निभाते हैं, इसी कारण से ही पर्यावरण एक सन्तुलित स्थिति में बरकरार है। जब इस पारिस्थितिक व्यवस्था में बाधा उत्पन्न हो जाता है, तब पारिस्थितिक संतुलन बिगड जाएगा, ऐसी दशा को ही पारिस्थितिक संकट (Environmental crisis) कहा जाता है। प्रदूषण,

रासयनिक पदार्थों का अनियंत्रित प्रयोग, अपशिष्ट पदार्थों का ढेर आदि कई कारणों से पारिस्थितिक संकट उत्पन्न हो जाता है।

आज, पृथ्वी में दिन-प्रतिदिन बढती जा रही ख़तरनाक समस्या है पर्यावरण प्रदूषण। मोटर वाहनों, विभिन्न कारख़ानों, पवर स्टेशनों, ऊँर्जा संयंत्रों, उद्योगों, ख़नन आदि कई कारणों से हमारे जल, वायु, मिट्टी सब प्रदूषित हो रहे हैं। वनों की अंधाधुंध कटाई के कारण हरियाली काफी अनुपात में कम होती जा रही है। औद्योगिक संस्कृति ने हमारी पृथ्वी को कूडा-कचरा का ढेर बना दिया है। हमारी नदियाँ, नालें, समुद्र आदि कारख़ानों की मोरी बन गयी हैं। लोग शुद्ध पानी के लिए तडप रहे हैं। इस प्रकार औद्योगिक संस्कृति हमारे ख़ाने में, पीने में, साँस लेने में सब कहीं ज़हर फैलाने का कार्य कर रही हैं। अब पृथ्वी में गन्दगी बढ़ती जा रही है। पर्यावरण की ये समस्याएँ आधुनिक मानव के सभ्य होते चले जाने का बर्बर इतिहास का मिसाल है। आज मानव यह सत्य भूल जाते हैं कि प्रकृति केवल उनका कार्यस्थली ही नहीं है बल्कि हमारे जीवन का आधार भी है। अतः प्रकृति पर अधिकार जमाने की कोशिश एक प्रकार से हमारे अस्तित्व पर ही ख़तरा है। इसलिए प्रदूषण को रोकना तथा धरती एवं हमारे अस्तित्व को बचाना अत्यंत अनिवार्य है।

प्रदूषण की एक सामान्य परिभाषा इस प्रकार है-"The change in environment caused by man's discharge of matter or energe in to it which alters the normal function of an ecosystem is called pollution."

"मानव द्वारा छोडे गये अपशिष्ट पदार्थों व ऊर्जा के पर्यावरण में सम्मिलित होने से पारिस्थितिक तंत्र की सामान्य क्रियाओं में परिवर्तन को प्रदूषण कहते हैं।"[5]

पर्यावरण प्रदूषण का एकमात्र उत्तरदायी मानव ही है। मानव के अविवेकपूर्ण क्रिया कलापों एवं विकास के बहाने प्राकृतिक संसाधनों पर हस्तक्षेप का परिणाम है प्रदूषण। प्रदूषण के प्रमुख क्षेत्र हैं- जल, वायु, ध्वनि, मिट्टी आदि। प्रदूषण प्रकृति के सभी जीव-जंतु और वनस्पति पर विपरीत प्रभाव डाल रहे हैं। यहाँ प्रदूषण संबंधी मुख्य क्षेत्रों का परिचय देना समीचीन है।

1.5.1 जल प्रदूषण (Water Pollution)

पृथ्वी में जीवन बनाये रखने के लिए वायु तथा जल दोनों घटक अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। पेड-पौधों तथा सभी जीव-जंतुओं के अस्तित्व के लिए जल आवश्यक है। जल के बिना कृषि कार्य, उद्योग आदि कुछ भी संभव नहीं है। बिना जल से पृथ्वी सूखा पड जाती है, सारे जीव-जंतु खतरे में पड जाते हैं। अतः पर्यावरण संतुलन बनाये रखने में जल का स्थान महत्वपूर्ण है। प्राचीन काल में हमारे पूर्वजों ने जल के महत्व को स्वीकार करते हुए उसे देवता मानकर पूजा करते थे। जल स्वास्थ्य के लिए अमृत है। इसलिए उसे दूषित नहीं करना चाहिए। लेकिन आधुनिक युग में बढती जनसंख्या, औद्योगीकरण, शहरीकरण आदि कई कारणों से जल प्रदूषित हो रहा है। कारखानों से बाहर निकालनेवाले अपशिष्ट, उद्योगों के कूडे-कचरे, रासयनिक पदार्थों से युक्त जल आदि हमारी नदियों एवं समुद्रों को कारखानों की मोरी बना दिया है। वैसे पानी का स्वाभाविक गुण नष्ट हो रहा है तथा वह उपयोग शून्य बन जाता है। ऐसे प्रदूषित जल जीव-जंतुओं, पेड-पौधों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। अतः धरती में जीवन बनाये रखने के लिए जल संरक्षण अत्यंत अनिवार्य है।

1.5.2 वायु प्रदूषण (Air Pollution)

हम जानते हैं कि पृथ्वी में जीवन बनाये रखने में वायु का स्थान सबसे महत्वपूर्ण है। पृथ्वी की चारों ओर हवा का जो आवरण है, इसे वायु मंडल कहते हैं। हवा में कई गैसों का मिश्रण है जिसमें ऑक्सीजन और नाइट्रोजन ही प्रमुख हैं। जैसे जल में मछलियों का निवास है वैसे ही हवा में हमारा निवास।

आधुनिक युग में बढती हुई जनसंख्या, शहरीकरण, कीटनाशकों का अधिक प्रयोग, कारखानों-उद्योगों का बढाव आदि कई कारणों से वायु प्रदूषित हो रही है। मानव का श्वसन तंत्र और फेफडे निरंतर वायु के संपर्क में रहते है। इसलिए वायु में जितने भी हानिकारक प्रदूषक तत्व होते हैं जो साँस लेने के साथ हमारे शरीर में प्रवेश करते हैं, फलतः कई प्रकार की बीमारियों का कारण बन जाते हैं। शहरों में 60% वायु प्रदूषण वाहनों से निकलनेवाले धुआँ से होता है। वाहनों से निकलनेवाले रंग-गंद विहीन गैस कारबन मोनोक्सैड प्राणघातक है। जहाँ तक प्रकृति का सवाल है एक व्यक्ति को भोजन बिना कई दिन, और बिना जल से कई घंटों तक रह सकता है लेकिन वायु के बिना पाँच मिनिट तक रह नहीं सकता। अतः वायु जीवन के लिए अत्यंत अनिवार्य है। इसलिए वायु को स्वच्छ एवं शुद्ध रखना हमारा कर्तव्य है।

1.5.3 ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution)

वर्तमान युग में वायु, जल मिट्टी आदि के प्रदूषण के समान ही एक चर्चित समस्या है ध्वनि प्रदूषण। यह भी औद्योगीकरण का परिणाम है। जब कोई ध्वनि सुनने में असह्य लगती है और उसका बुरा प्रभाव मनुष्य पर पडता है तो उसे ध्वनि प्रदूषण कहा जाता है। इस समस्या का प्रमुख क्षेत्र है महानगर और औद्योगिक क्षेत्र।

ध्वनि प्रदूषण हमारी श्रवण क्षमता को विपरीत रूप में प्रभावित करते हैं, जो आगे चलकर बहरापन का कारण बन जाता है। अधिक शोर से मनुष्य का मानसिक संतुलन बिगडने की संभावना भी है।

ध्वनि समस्या को कम करने की दृष्टि से सरकार द्वारा अनेक नियम अनुपालनार्थ निर्धारित किया गया है। ध्वनि प्रदूषण के बारे में जनता को अवबोध करना, वाहनों के इंजिन बनाते समय उसमें मफ्लर का उपयोग करना, इंजिनों में शोर अवशोषक का उपयोग करना, कारखानों में शोर नियंत्रण करनेवाले उपकरण स्थापित करना आदि इसके तहत आते हैं। अस्पताल, स्कूल, न्यायालय आदि क्षेत्रों में वाहनों से होर्न बजाना कानूनी अपराध है और अन्य क्षेत्रों में तीव्र होर्न, बजाने में नियमानुसार नियंत्रण लगाया है। लेकिन ये सब होते हुए भी ध्वनि प्रदूषण में कोई कमी नहीं है।

1.5.4 मिट्टी प्रदूषण (Land Pollution)

मिट्टी पर्यावरण का महत्वपूर्ण अंग है। बिना स्वच्छ मिट्टी से पृथ्वी में जीवन असंभव है। जब मिट्टी में रासयनिक पदार्थ, कीटनाशक, कूडा-करकट आदि के प्रयोग से उसकी गुणवत्ता में परिवर्तन होती है, उन्हें मिट्टी प्रदूषण कहा जाता है। इससे मिट्टी की उर्वरता नष्ट हो जाती है।

जनसंख्या में वृद्धि, कांक्रीट मकानों का निर्माण, अधिक उत्पादन के लिए कृषि कार्य में कीटनाशकों का प्रयोग, औद्योगीकरण के उपरांत बाहर निकलनेवाली रासयनिक पदार्थ, अपशिष्टों का एकत्रीकरण आदि मिट्टी प्रदूषण के कारण हैं।

आधुनिक युग में जनसंख्या वृद्धि से खाद्यान्नों की आवश्यकता भी बढती जा रही है। इसलिए अधिक उत्पादन के साथ-साथ कीटों का नाश लक्ष्य करते हुए ज़हरीली कीटनाशकों का प्रयोग व्यापक रूप में किया जाता है। ऐसे कीटनाशक अन्य सभी जीवजंतुओं के लिए हानिकारक है। कीटनाशकों के प्रयोग से मिट्टी की उर्वरता नष्ट हो जाती है। घरेलू अपशिष्टों को लापरवाही से इधर-उधर फेंकने से भी मिट्टी प्रदूषित हो रही हैं। बढते औद्योगीकरण के कारण कल-कारखानों से बाहर निकालनेवाले रासयनिक पदार्थों से भी मिट्टी प्रदूषित होती है।

मिट्टी प्रदूषण का दुष्प्रभाव पृथ्वी के सभी जीव-जंतुओं, पेड-पौधों पर पडता है। जिसके परिणामस्वरूप जीव-जंतुओं में कई प्रकार की बीमारियों की संभावना बढ रही है। प्रदूषण मृदा की उत्पादन क्षमता पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। मृदा में प्रदूषित पदार्थों का बढाव हमारे जलस्रोतों को भी दूषित कराती हैं। वैसे मृदा प्रदूषण धरती के हर एक घटक पर पडता है। इसलिए मिट्टी प्रदूषण रोकना अत्यंत अनिवार्य है।

1.5.5 वन विनाश

मानव विकास में वनों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। आदिम मानव भोजन, आवास, वस्त्र आदि आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूर्ण रूप से वृक्षों पर निर्भर रहते थे। वृक्षों की जडी-बूटियों से अनेक औषधियाँ बनाते हैं। हमें प्राणदायक ऑक्सीजन भी पेडों से ही मिलती है। वन संपदा जैवविविधता का अमूल्य एवं प्राकृतिक भण्डार है और यह भण्डार समूचे मानव प्राणी के अपेक्षानुसार लघु मात्रा में दोहन करने के लिए ही उपलब्ध कराया है। लेकिन मानव आवश्यकता

से हटकर मुनाफा हासिल करने की ओर अग्रसर रहते हैं जो कि पारिस्थितिक संतुलन बिगडने का मुख्य कारण बन जाता है।

आधुनिक मानव विकास के नाम पर भौतिक सुख-सुविधाओं के लिए वनों का नाश अधिक मात्रा में कर रहे हैं। इससे कई प्रकार के वन्य जीवों और पेड-पौधों का नाश हो जाते हैं। कई जीव वर्ग का वंशनाश भी हो गये हैं। वर्षा में कमी, तापमान में वृद्धि आदि भी वन विनाश का परिणाम है।

आज, इक्कीसवीं सदी में लगातार बढती विकास की प्रवृत्तियों द्वारा पर्यावरण में ऐसे परिवर्तन हो रहे हैं कि भविष्य की स्थिति संकीर्ण ढंग से बिगडती जा रही है। आज पूरे विश्व में औद्योगीकरण की क्रांति गूँज रही है। इसी औद्योगिक संस्कृति की खतरनाक परिणति है आज की संपूर्ण समस्याएँ। प्रदूषण अब एक देश विशेष की समस्या नहीं है, बल्कि संपूर्ण विश्व प्रदूषण से त्रस्त हैं। विज्ञान की जितनी उन्नति हुई है उतनी ही मात्रा में वह अभिशाप बनकर आगे बढ रहा है।

1.6 पारिस्थितिकी विज्ञान (Ecology)

आधुनिक युग में पर्यावरण के बदलते रूप एवं उनके तत्वों में आये परिवर्तन का अध्ययन एक महत्वपूर्ण विषय बन गया है। विज्ञान की यह नवीन शाखा है पारिस्थितिकी विज्ञान (Ecology) । इसमें हमारी चारों ओर के जीवजगत तथा उनके पर्यावरण के अध्ययन को ही महत्व देता है।

पारिस्थितिकी विज्ञान का अंग्रेज़ी पर्यायवाची शब्द है 'Ecology' । Ecology शब्द ग्रीक भाषा के 'Oikos' और 'Logos' इन दोनों शब्द मिलकर बना है। Oikos का अर्थ है रहने की जगह (place to live) या घर और 'Logos' का अर्थ है अध्ययन

(Study)। Ecology का अर्थ है घर अथवा रहने की जगह का अध्ययन (Study of Home or Habitate)। अर्थात् पारिस्थितिकी वह विज्ञान है जिसमें जीवजगत् तथा उसके आवास स्थान का अध्ययन कर रहा है। विस्तृत रूप में कहें तो एक ही परिवार तथा उसके सदस्यों के बीच संबंधों का अध्ययन ही पारिस्थितिकी अध्ययन कहा जाता है।

Encyclopedia Britanica में पारिस्थितिकी विज्ञान की परिभाषा इस प्रकार दी है-

"The study of inter relationship between organism and their environment and each other is called the Ecology."[6]

एल.आर.टेलर के अनुसार- "Ecology is the study of the way in which individual organism population of some species and communities respond to those change".

"पारिस्थितिकी विज्ञान अध्ययन का एक ढंग है जिसमें एक प्राणी, जनसंख्या, जीवों का एक समुदाय परिवर्तन के साथ कैसी प्रतिक्रिया करते हैं।"[7]

उपर्युक्त बातों के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि धरातल या पृथ्वी पर किसी भी जैविकीय तथा अजैविकीय तत्वों एवं उनके परिवार से संबंधित अध्ययन ही पारिस्थितिकी विज्ञान है। जैवविविधता, उनके पर्यावरण, प्रदूषण से उसका संरक्षण तथा सभी प्राणियों और उनके पारस्परिक संबंधों की जानकारी आदि का अध्ययन इस विज्ञान शाखा का लक्ष्य है।

1.7 पारिस्थितिक दर्शन (Eco-Philosophy)

पर्यावरण और प्रकृति के बारे में मानव का दृष्टिकोण आज बिलकुल बदल रहा है। आज प्रकृति 'माँ' की परिकल्पना से हटकर दासी बन गयी है तथा मानव उसके पुत्र से शासक बन गया है। मानव पृथ्वी को सिर्फ अपनी आर्थिक उन्नति के लिए अवश्यक साधन मात्र समझने लगे और उसका शोषण लगातार करते रहे। फलस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण, ओसेन परत का क्षय, वनों का नाश, भूमण्डलीकरण, शहरीकरण, औद्योगीकरण, अम्ल वर्षा आदि कई पारिस्थितिक समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। आज स्थिति ऐसी बन गयी है कि पृथ्वी में जीवन का अस्तित्व एक बडा प्रश्नचिह्न बन गया है। वैसे आधुनिक युग में प्रकृति और मानव के बीच दिन-ब दिन गंभीर होते जा रहे पारिस्थितिकीय संकट समूचे विश्व के सामने चिंतनीय मुद्दा बन गया है।

पर्यावरण और प्रकृति की इस दुःखद स्थिति को पहचानकर सन् 1960-70 में यूरोप और अमेरिका में पर्यावरण संरक्षण के लिए, पृथ्वी के घावों को इलाज करके उसकी रक्षा के लिए कई राजनीतिक-बौद्धिक आन्दोलन शुरू कर दिये गये। अमेरिका में रेचल कारसन द्वारा लिखित 'मौन वसंत' (Silent spring-1962) को ही साहित्य में पारिस्थितिकवाद का पहला आविष्कार माना जाता है। बाद में ब्रिटिश मार्क्सिस्ट आलोचक रेयमंड विलियम्स का 'द कन्ट्री ऑन्ड द सिटी' (1973) और जोसफ मीकेर्स का 'द कॉमडी ऑफ सरवैवल (1974) आदि रचनाएँ इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास हैं। लेकिन ये सब कोई संगाठित प्रयास न होने के कारण इसमें एक आन्दोलन जैसी तीव्रता नहीं थी। बाद में सन् 1980 के मध्य पारिस्थितिक विमर्श को एक नई विचारधारा एवं एक नयी साहित्यिक चर्चा के रूप में ख्याति प्राप्त होने

लगी। 'इको क्रिटिसिसम' शब्द का प्रथम प्रयोग विलियम रुकेर्ट ने अपना लेख 'लिटरेचर एण्ड इकोलजी-एन एक्स्पेरिमेन्ट इन इको क्रिटिसिसम (Literature and Ecology: An experiment in Eco-criticism, 1978) में ही किया, जो साहित्य में पारिस्थितिक विचारधाराओं के अध्ययन पर आधारित रचना है। सन् 1990 में रेनो के नेवडा विश्वविद्यालय में पारिस्थितिक अध्ययन को महत्व देकर साहित्य और पारिस्थितिक अध्ययन के लिए एक नया विभाग शुरू किया गया और इस विभाग का प्रथम आचार्य है शेरिल ग्लोफेल्टी (Cherryll Glotfelty)। उस विश्वविद्यालय में प्रस्तुत विभाग आज भी है। बाद में पारिस्थितिक विमर्श की एक नयी संस्था ASLE (Association for Studies of Literature and Ecology) की स्थापना हुई, जिसकी अमरिकी शाखा में हज़ारों सदस्य थे। सन् 1990 के बाद ASLE के अनेक शाखाएँ यू.के, जापान, न्यूसिलैन्ड, भारत, तायवान, कानडा और यूरोप आदि कई देशों में अपना काम शुरू कर दिया।

पारिस्थितिक समस्याएँ मुख्रतः दो प्रकार के होते हैं- वैज्ञानिक और सामाजिक। उदाहरण के लिए वायू में बढती कार्बन की मात्रा, नदी के पानी में विलुप्त रासयनिक पदार्थ, अम्लवर्षा, ओसोन परत का क्षय आदि समस्याएँ वैज्ञानिक कार्यवाई के परिणाम हैं। जनसंख्या विस्फोट, वन्य जीवियों का शिकार, बाँधों का निर्माण आदि इसके सामाजिक कारण हैं। पारिस्थितिक विद्धान इन समस्याओं को समझकर उसका विश्लेषण कर, उसको परिभाषित करके, अपनी क्षमता द्वारा प्रस्तुत करते हैं। साथ-साथ इन समस्याओं से मुक्ति का उपाय भी वे हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। इन्हें पारिस्थितिक विमर्श कहा जाता है। पारिस्थितिक विमर्श न तो सिर्फ

पारिस्थितिक विभीषिकाओं के प्रति सामाजिक जागरण पर बल देता है वरन् इसके समाधान के लिए क्या-क्या किया जाना चाहिए उस पर भी ज़ोर देता है।

Glotfelty के मतानुसार पारिस्थितिक विमर्श भौतिक पर्यावरण और साहित्य के संबंध के बारे में अध्ययन है। जैसे स्त्री विमर्श में एक प्रत्येक विभाग अथवा स्त्री के संदर्भ में भाषा और साहित्य को परखते हैं। वैसे पारिस्थितिक विमर्श में पृथ्वी को केन्द्र में रखकर साहित्यिक अध्ययन करते हैं।

पर्यावरणवाद में प्रकृति और उनकी उपयोगिता तथा गुणों का समर्थन होता है। इसमें प्रकृति का जो स्वतंत्र अस्तित्व होता है, उसे पुनः परिभाषित करते हैं। साथ ही साथ प्रकृति की ओर वापस जाने का आह्वान भी देता है। पारिस्थितिकी विज्ञान में मानव को प्रकृति के महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकार किया है। पर्यावरण संरक्षण के लिए मानव और मानवेतर तत्वों के बीच आत्मीय रिश्ता अत्यंत अनिवार्य है। पारिस्थितिक विज्ञान, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, वन्य जीवों का संरक्षण, ग्रामीण जीवन शैली, हरित क्रांति, अपशिष्टों का प्राकृतिक रूप में निष्कासन, प्रकृति के नियमों के अनुरूप विकास योजनाएँ, सभी जीव-जंतु और पेड-पौधों का संरक्षण आदि पर बल देता है। पाश्चात्य जगत में इसके प्रवर्तकों में प्रमुख हैं- रेचल कारसन, स्टीफन ष्नैडर, मेट्रिन लूयिस, आन एरलिच, पोल आदि। भारत के पारिस्थितिक प्रवर्तकों में प्रमुख हैं- सुन्दरलाल बहुगुणा, प्रो.नेन्जुण्डा स्वामी, मेधा पटकर, वन्दना शिवा, अरुंधती रॉय, सुगतकुमारी, ओ.वी. विजयन आदि।

- **पारिस्थितिक दर्शन की शाखाएँ**

पारिस्थितिक दर्शन की मुख्यतः चार शाखाएँ हैं-

- गहन पारिस्थितिवाद (Deep Ecology)
- सामाजिक पारिस्थितिवाद (Social Ecology)
- पारिस्थितिक मार्क्सवाद (Eco-Marxism)
- पारिस्थितिक स्त्रीवाद (Eco-Feminism)

1.7.1 गहन पारिस्थितिवाद (Deep Ecology)

मानव केन्द्रीकृत पारिस्थितिवाद के विरुद्ध एक विमर्श के रूप में ही गहन पारिस्थितिवाद का उदय हुआ है। इसके प्रवर्तक हैं नोर्वे के पारिस्थितिक चिंतक आर्ननेस। उन्होंने पारिस्थितिवाद को 'षालो इकोलजी' और 'डीप इकोलजी' इन दो भागों में विभक्त किया। 'षालो इकोलजी' विकसित देशों की जनता के स्वास्थ्य एवं संपत्ति की सुरक्षा पर आधारित है, जो प्रदूषण का नियंत्रण, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, तकनीकी का सुधार आदि से संभव है। लेकिन उन्होंने पहचाना कि पर्यावरण की समस्याएँ सिर्फ तकनीकी विकास की देन नहीं है। ऐसे उन्होंने सन् 1973 में पारिस्थितिक परिवर्तन एवं सुरक्षा के लिए गहन पारिस्थितिवाद नामक एक नये दर्शन का आविष्कार किया।

गहन पारिस्थितिवाद के प्रवर्तक ग्रे ष्नैडर और आर्ननेस ने 'डीप इकोलजी फोर दा 21 स्ट सेजुरी' (Deep Ecology for the 21st century) नामक पुस्तक में गहन पारिस्थितिवाद के आठ तत्वों के बारे में बताया है। इनमें आधारभूत दो तत्व हैं। प्रथम तो यह है कि प्रकृति में मानव के समान सभी तत्वों का अपना महत्व होता है। प्रत्येक सत्ता का महत्व इस पर केन्द्रित नहीं कि वह मानव के लिए उपयोगी है या

नहीं। इसलिए मानव को दूसरे जीवों के अस्तित्व को बर्बाद करने का कोई अधिकार नहीं है। मानव अपनी ज़रूरतों की पूर्ति के लिए या अपनी आर्थिक उन्नति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का शोषण कर रहे हैं। मानव की इस मानसिकता में बदलाव आना चाहिए। दूसरा है कि दर्शन को मानव केन्द्रीकृत तत्व से जैव केन्द्रीकृत बनाना चाहिए। अर्थात् मानव केन्द्रीकृत मूल्यों के स्थान पर जैव केन्द्रीकृत या प्रकृति केन्द्रीकृत मूल्यों की स्थापना करना चाहिए। इस प्रकार आधुनिक मानव की नीति, अर्थशास्त्र कर्म प्रणाली आदि में परिवर्तन लाया जायें । इसके लिए अहिंसात्मक मार्ग को अपनाना समीचीन है।

गहन पारिस्थितिवाद में प्रकृति के साथ निरंतर संपर्क रखकर उससे तादात्मय स्थापित करने का आह्वान देता है। इससे मानव समस्त चराचरों के साथ अपने को भी प्रतिष्ठित करके स्वत्व बोध प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रक्रिया को आर्ननेस ने Self Realisation (आत्म पहचान) कहा है। इसके द्वारा हम संपूर्ण जगत् का पहचान कर सकते हैं। आर्ननेस के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के पूरे कर्मपथ में पारिस्थितिक चिंतन होना चाहिए। कुछ गहन पारिस्थितिवादियों का मानना है कि प्रकृति की रक्षा के लिए हिंसात्मक मार्ग अपनाने में कोई गलती नहीं है। लेकिन आर्नवेस का दर्शन अहिंसा पर आधारित है।

गहन पारिस्थितिवाद के आलोचकों में प्रमुख हैं मुरे बुक्कचिन। उन्होंने गहन पारिस्थितिवाद को मानव विरोधी माना है। लेकिन गहन पारिस्थितिवाद मानव विरोधी नहीं है, बल्कि इसमें मानव द्वारा किये जानेवाले अन्यायों को पर्यावरण के लिए महाविपत्ती मानकर उसका विरोध करते हैं। यह नवीन वैज्ञानिक-प्रौद्योगिक

विकास योजनाओं एवं तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक स्थितियों पर लगातार सवाल करने में प्रेरित करता है।

1.7.2 सामाजिक पारिस्थितिवाद (Social Ecology)

सामाजिक पारिस्थितिवाद के प्रवर्तक हैं मुरे बुक्कच्चिन। सामाजिक पारिस्थितिवाद गहन पारिस्थितिवाद से बिलकुल भिन्न है। इसमें बुक्कचिन पारिस्थितिक समस्याओं का मूल कारण मानव की प्रभुत्व मानसिकता मानकर उन्हें समाज से दूर करने का आह्वान देते हैं।

बीसवीं सदी के अंतिम दशक में आते-आते पारिस्थितिक दर्शन और मार्क्सिस्ट दर्शन दोनों का समन्वय होने लगा, जो पारिस्थितिक दर्शन के विकास में नया मोड था। तब से पारिस्थितिक दर्शन दो धाराओं में विभक्त होकर आगे बढने लगे- Social Ecology (सामाजिक पारिस्थितिवाद) और Eco-Marxism (पारिस्थितिक मार्क्सवाद)। गहन पारिस्थितिवादियों के अनुसार सारी पारिस्थितिक समस्याओं का मूल कारण मानव ही है। लेकिन बुक्कचिन ने इसपर अपनी असहमति व्यक्त की। उनका मानना है कि पारिस्थितिक समस्याएँ, सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक कारणों से उत्पन्न होती हैं। इसलिए उसका हल आध्यात्मिक और सद्कर्मों (सदाचार) से संभव नहीं है।

मानव अपने विकास के आरंभिक चरणों में छोटे-छोटे समूह बनकर एक साथ रहते थे। तब से ही वह दूसरे लोगों या अन्य जीव-जंतुओं को अपने अधीनस्त रखने में तत्पर थे। अधीनस्त बनना या अधिकार स्थापित करना यह मानव का सहज-स्वाभाविक गुण है। पहले-पहले वे प्रकृति को माँ के रूप में स्वीकार करके

उसके नियमों के अनुकूल अपना जीवन व्यतीत करते थे। लेकिन धीरे-धीरे वह अपनी भौतिक सुख-सुविधाओं और आर्थिक उन्नति के लिए प्राकृतिक तत्वों का शोषण करने लगा। वह प्रकृति पर विजय पाने के लिए कठिन प्रयास करने लगा। फलस्वरूप कई पारिस्थितिक समस्याएँ उत्पन्न हुईं। इन सबका एकमात्र कारण मानव की प्रभुत्व मानसिकता है। इसलिए उस मानसिकता को समाज से दूर करना अत्यंत अनिवार्य है। मुरे बुक्काचीन का सामाजिक पारिस्थितिवाद मानव की ऐसी प्रभुत्व मानसिकता को दूर करके प्रकृति के साथ जीने का आह्वान देता है।

1.7.3 पारिस्थितिक मार्क्सवाद (Eco-Marxism)

पारिस्थितिक मार्क्सवाद मैकल बकुनिन के अनार्किसम (Anarchism) एन्गेल्स और मार्क्स के कम्यूनिसम को आधार बनाकर आविष्कृत एक विचारधारा है, जिसमें बुक्कचिन के सामाजिक पारिस्थितिवाद से भिन्न राजनीतिक अर्थशास्त्र का विश्लेषण है। पारिस्थितिक मार्क्सवाद के अनुसार पारिस्थितिक समस्याओं का मूल कारण समाज में ज़ारी रख्नेवाली पूँजीवादी व्यवस्था है। पारिस्थितिक मार्क्सवाद में प्रयत्न, शोषण, उत्पादन, मुनाफे का दर, पूँजी का बँटवारा जैसे मुद्धों का अध्ययन ही किया जा रहा है। समाज के नीचे वर्ग अथवा मज़दूर लोगों के प्रति पूँजीपतियों की शोषणपरक मानसिकता ही पारिस्थितिक समस्याओं का मूल कारण है। इसलिए पूँजीवादी व्यवस्था का बदलाव अत्यंत अनिवार्य है, इससे ही पारिस्थितिक संकट का हल संभव होगा।

पारिस्थितिक मार्क्सवाद में प्रकृति की सत्ता और उसकी विविधता को मान्यता देती है। मज़दूर वर्ग प्रकृति के मित्र हैं, वे प्रकृति के साथ सुदृढ़ संबंध रख्नेवाले हैं। लेकिन पूँजीवादी लोग मज़दूरों के समान प्रकृति का भी शोषण कर रहे हैं। उनका

लक्ष्य सिर्फ आर्थिक उन्नति है। इसलिए समाज से पूँजीवादी व्यवस्था का उन्मूलन अत्यंत अनिवार्य है। इस प्रकार पूँजीवादी मानसिकता से उत्पन्न प्राकृतिक विनाश पर ही पारिस्थितिक मार्क्सवाद चर्चा करती है। पाश्चात्य जगत में इसके प्रवर्तक हैं- जेम्स.ओ.कोणोर, रेयमन्ड विलियम्स, बारी कोमनर, जोन बेल्लामी फोस्टर, जार्ज रिचमेन आदि। केरल में कार्यरत शास्त्र-साहित्य परिषद इको-मार्क्सवाद का उदाहरण है।

1.7.4 इको फेमिनिज़्म (Eco-Feminism)

सन् 1974 में फ्रंच लेखिका फ्रान्स्वा द यूबोन ने ही 'इको फेमिनिज़्म' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया। उन्होंने पारिस्थितिक आन्दोलन के ज़रिये पृथ्वी की रक्षा के लिए महिलाओं को आह्वान किया। स्त्री और प्रकृति को केन्द्र में रखनेवाली एक वैश्विक विचारधारा के रूप में पारिस्थितिक स्त्रीवाद ने काफी महत्व प्राप्त किया है।

आधुनिक युग के पुरुष-सत्तात्मक समाज में प्रकृति और स्त्री दोनों समान रूप से शोषण से त्रस्त हैं। पुरुष अपने को दुनिया की सबसे बडी शक्ति मानते हैं और प्रकृति एवं स्त्री को गुलाम बनाकर उनपर अत्याचार कर रहे हैं। पुरुष की इस मानसिकता के विरुद्ध उद्भूत हुआ आन्दोलन है पारिस्थितिक स्त्रीवाद अथवा इको फेमिनिज़्म। जो नारीवादी आन्दोलन को और भी सशक्त बना दिया।

अन्य आन्दोलनों की तरह इको फेमिनिज़्म का आरंभ पाश्चात्य साहित्य में ही हुआ। प्रकृति और स्त्री का शोषण सभी देशों में समान रूप से हो रहा है। लेकिन इन दोनों को एक सिक्के के दो पहलू के रूप में जोडकर देखने की पद्धति पाश्चात्य साहित्य में ही शुरु हुई। वहाँ सबसे पहले सीमोन द बुआ ने ऐसे एक चिंतन प्रस्तुत

किया। लेकिन फ्रान्सवा-द-यूबोन ने ही इसको एक दार्शनिक व्याख्या प्रदान दिया। इन्होंने सन् 1972 में इकोलजी-फेमिनिज़्म सेंटर (Ecology-Feminism Centre) नामक एक संस्था की स्थापना की।

प्रकृति और नारी पर होनेवाले अत्याचार के मुख्य कारण हैं- भूमण्डलीकरण, बाज़ारीकरण, उपभोग संस्कृति, मुनाफे के प्रति मानव का लालच आदि। पुरुष, स्त्री और प्रकृति को अपनी आर्थिक उन्नति का महत्वपूर्ण साधन मात्र समझने लगे और उनपर अपना प्रभुत्व स्थापित करके शोषण करने लगा। इसके विरुद्ध, पुरुष की प्रभुत्व मानसिकता को समाप्त करके एक नये स्वच्छ समाज की स्थापना को ध्यान में रखकर विकसित किया गया विचारधारा है 'इको फेमिनिज़्म'। इसका नारा है 'प्रकृति और स्त्री की मुक्ति'। इस मुक्ति से ही जैविक तथा सामाजिक व्यवस्था और उसके ज़रिये मानव जीवन में संतुलन बनाये रख सकते हैं। 'सूसन ग्रिफिन' नामक लेखिका ने अपने 'वुमन ऑन्ड नाचुर : द रोरिन्ग इनसैड हेर' (Women and Nature: The Roaring inside her) नामक पुस्तक में स्त्री और प्रकृति सामना करनेवाली भीषण स्थितियों और शोषण के बारे में चर्चा की है।

पारिस्थितिक स्त्रीवादियों ने उत्पादन, औद्योगिकरण, पारिस्थितिक विनाश आदि पर अपना आक्रोश प्रकट किया है। उत्पादन और विकास के नाम पर स्त्री और प्रकृति का निरंतर शोषण ही हो रहा है। उनका मानना है कि पारिस्थितिक विनाश का मतलब स्त्री का ही नाश है। पुरुष को स्त्री और पृथ्वी के शासक माननेवाली मानसिकता पर पारिस्थितिक स्त्रीवाद सवाल उठाते हैं।

अमेरिका के फ्रान्सवा द यूबोन, नेसेतर किंग, मेरीडाली, सूसन ग्रिफिन, बारबरा डेमिंग आदि पारिस्थितिक स्त्रीवादियों ने मिलकर women's peace movement नामक संस्था की स्थापना करके स्त्री और प्रकृति पर होनेवाले अत्याचारों को 'Rape of the Earth' कहकर उसके विरुद्ध आवाज़ उठायी है।

पारिस्थितिक स्त्रीवाद का लक्ष्य पुरुष के बदले स्त्री की प्रतिष्ठा करना नहीं है। वरन् बिना स्त्री-पुरुष भेदभाव से मानव को मानव रूप में देखना और दोनों को समान महत्व देना ही इसका लक्ष्य है। ऐसे चिंतन से ही हम पृथ्वी की रक्षा कर सकते हैं। पारिस्थितिक स्त्रीवाद न सिर्फ पुरुषों द्वारा होनेवाले शोषण का विरोध करते हैं साथ-साथ वन संरक्षण, पारिस्थितिक संरक्षण, आर्थिक उन्नति आदि अन्य कई मुद्दों को भी महत्व देते हैं।

1.8 पर्यावरण संस्थाएँ

पिछले कई दशकों से हुई वैज्ञानिक-औद्योगिक प्रगति के फलस्वरूप कई प्रकार की खतरनाक पर्यावरण समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। अपनी इच्छाओं के अनुरूप प्रकृति को बदलने की मानव की क्षमता ने पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव डाला है। मानव की इन प्रवृत्तियों के फलस्वरूप पर्यावरण पर हुए भौतिक-रासयनिक तथा जैविक बदलाव को ही पर्यावरण प्रदूषण कहते हैं। आज दिन-ब-दिन बढ रहे पर्यावरण प्रदूषण पृथ्वी के जीव-जंतुओं, पेड-पौधों के सामने सबसे बडी चुनौती बन गयी है। पर्यावरण को उसके नियमों के अनुसार संरक्षण नहीं करेंगे तो उसमें जीवन का अस्तित्व खतरे में पड जाएगा। इस भयानक विपत्ति को पहचानकर ही संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा पर्यावरण संरक्षण के लिए कई सम्मेलन और कार्यक्रमों का आयोजन हो रहे हैं। औद्योगिक प्रगति के दौरान होनेवाली आर्थिक उन्नति से कभी-भी प्रकृति पर

चोट नहीं लगानी चाहिए। इसलिए प्रगति या विकास की दौड में प्रकृति को भी ध्यान में रखना अत्यंत अनिवार्य है, नहीं तो सर्वनाश ही हो जाएगा। आज बढती जा रही पर्यावरण समस्याओं के बारे में विश्व के सभी देश तथा जनता को जागृत करना ही संयुक्त राष्ट्र संघ का लक्ष्य है। इसलिए ही संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में देश-विदेश में पर्यावरण संरक्षण के लिए कई महत्वपूर्ण सम्मेलन और कार्यक्रम आयोजित किये जा रहे हैं।

1.8.1 पर्यावरण संरक्षण: अंतर्राष्ट्रीय स्तर

1.8.1.1 स्टॉकहोम सम्मेलन (Stockholm Conference)

पर्यावरण संरक्षण के लिए स्वीडन के स्टॉकहोम शहर में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में सन् 1972 जून 5 से लेकर 16 तक एक सम्मेलन का आयोजन किया गया था, जो स्टॉकहोम सम्मेलन नाम से जाना जाता है। सम्मेलन का उद्देश्य था कि संपूर्ण विश्व की पर्यावरण समस्याओं का हल करना तथा पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रयत्न करना। पर्यावरण संरक्षण के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह पहला कदम था। इसमें 119 देशों ने पहली बार एक साथ मिलकर 'एक ही पृथ्वी' नारा को स्वीकार किया। सम्मेलन का लक्ष्य था कि पर्यावरण संरक्षण के प्रति संपूर्ण विश्व के राष्ट्रों को अवबोध करना, इसके लिए आवश्यक कार्यवाइयाँ करना और संस्थाओं का निर्माण करना, विभिन्न देशों के प्रशासनिक विभाग तथा अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं को दिशा-निर्देश देना आदि। प्रस्तुत सम्मेलन में पारित किये गये मुख्य तत्व हैं-

- मानव को स्वच्छ एवं समृद्ध पर्यावरण में जीवन बिताने का मौलिक अधिकार होते है। साथ ही साथ यह भी उनका उत्तरदायित्व है कि उस समृद्ध पर्यावरण को अपनी भविष्य की पीढी के लिए भी सुरक्षित रखना।

- वायु, जल, मिट्टी, पेड-पौधे, पशु-पक्षी आदि प्राकृतिक तत्वों का उपयोग आनेवाली पीढी को भी ध्यान में रखकर उचित रूप में करना चाहिए।

- सागर प्रदूषण (समुद्र का प्रदूषण) रोकने के लिए उचित कार्यवाई हर एक देश मं अवश्य करना है। क्योंकि सागर प्रदूषण, मानव एवं पृथ्वी के अन्य सभी जीव-जंतुओं पर विपरीत प्रभाव डालता है। हर एक देश पर्यावरण संरक्षण को अधिक महत्व देना ज़रूरी है।

- प्रदूषण एवं अन्य पारिस्थितिक समस्याओं का शिकार बने देश और जनता के संरक्षण के लिए देशों के बीच एक अंतर्राष्ट्रीय सहयोग बनाना अनिवार्य है।

इनके साथ-साथ सम्मेलन द्वारा सभी देशों की सहमति से यह प्रस्ताव पारित किया गया कि हर एक साल 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस मनाया जाय। सन् 1972 में हुए प्रस्तुत सम्मेलन से प्रेरणा पाकर कई देशों ने अपने संविधान में पर्यावरण संरक्षण के लिए कई नियम जोडे।

1.8.1.2 संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (United Nations Environment Programme (UNEP)

सन् 1972 के स्टॉकहोम सम्मेलन के उपरांत ही संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) का जन्म हुआ, जो संयुक्त राष्ट्र संघ के महासभा के आधीन में आनेवाला एक कार्यक्रम है। सन् 1976 दिसंबर 16 के महासभा ने इसे पर्यावरण संरक्षण का एक सशक्त कार्यक्रम के रूप में घोषणा की। इसका प्रमुख्र कार्यवाईयाँ हैं-

- पर्यावरण संरक्षण के लिए राष्ट्रों के बीच एक अंतर्राष्ट्रीय सहयोग का निर्माण करना तथा उसके कर्तव्यों का निर्देश देना।

- संयुक्त राष्ट्र संघ के अधीन में आनेवाले देशों में पर्यावरण संरक्षण के लिए सामान्य सिद्धातों एवं ठेकाओं का रूपायन करना।

- पर्यावरण संरक्षण के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा लागू किये कार्यक्रमों के रपटों की जाँच करना तथा अवश्यक निर्देश देना।

- संपूर्ण विश्व की पर्यावरण स्थिति का अवलोकन करके प्रशासकों को बडी-बडी समस्याओं के हल के लिए अवश्यक निर्देश देना।

- अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक और सूचना प्रौद्योगिक संगठनों की सहायता से पर्यावरण संरक्षण तथा समस्याओं के हल के लिए नयी-नयी योजनाओं का आविष्कार करना।

- राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संरक्षण के लिए लागू किये गये नियमों और कार्यक्रमों की जाँच करना और अविकसित-विकासशील देशों के लिए आवश्यक सहायता प्रदान करना।

- प्रत्येक वर्ष में हर एक देश के लिए दिये गये अनुदान के विनियोग की जाँच करना।

कई राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण संरक्षण नियमों के रूपायन में UNEP का प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में हम देख्र सकते हैं।

1.8.1.3 नैरोबी सम्मेलन (Nairobi Convension)

सन् 1980 दिसंबर 5 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा निर्णय लिया कि संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम का दसवाँ वर्षगांठ मनाया जाए। तदनुसार केनिया की राजधानी नैरोबी में सन् 1981 मई 10 से 18 तक एक सम्मेलन का आयोजन किया गया। प्रस्तुत सम्मेलन में 105 देश शमिल हुए। इसमें स्वीकार की गई घोषणा को ही 'नैरोबी घोषणा' कहते हैं। सम्मेलन का प्रमुख लक्ष्य था कि सन् 1972 की स्टॉकहोम घोषणा के सिद्धान्तों को और भी सशक्त बनाना। नैरोबी घोषणा के प्रमुख मुद्दे हैं-

- गरीबी तथा अव्यवस्थित उपभोग संस्कृति ये दोनों पर्यावरण केलिए ख़तरा है, जो पर्यावरण दोहन के लिए मानव को प्रेरित करती हैं।
- पर्यावरण संरक्षण में अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। पर्यावरण संतुलन बनाये रखने के लिए युद्ध-विभीषिकाओं और परमाणु हथियारों से सभी देशों की मुक्ति होनी चाहिए।
- अधिकांश पर्यावरण समस्याओं का प्रभाव प्रत्येक देश के अंतर्गत सीमित नहीं रहते। ऐसी समस्याओं के हल के लिए सारा देश एकत्रित होकर निर्णय लेना पडेगा।
- अविकसित एवं विकासशील देशों में होनेवाले पारिस्थितिक संकट के हल के लिए विकसित देशों की सहायता भी ज़रूरी है।
- प्राकृतिक संसाधनों के व्यवस्थित उपभोग और पर्यावरण संरक्षण के लिए उचित कार्यक्रमों का आयोजन करके उन्हें लागू करना चाहिए।

1.8.1.4 वियन्ना सम्मेलन (Vienna Convention)

सन् 1985 मार्च 22 को यू.एन.ई.पी के तत्वावधान में ओसोन परत संरक्षण के लिए ओस्ट्रिया की राजधानी वियन्ना में एक सम्मेलन आयोजित किया। सम्मेलन का लक्ष्य था कि ओसोन परत के संरक्षण के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर नियम निर्माण करना। इसके अनुसार प्रत्येक देशों को ओसोन परत के संरक्षण के लिए अवश्य कार्यवाई स्वीकार करना चाहिए। सन् 1985 में हुए इस सम्मेलन के उपरांत विश्वभर में ओसोन परत संरक्षण का श्रीगणेश हुआ।

1.8.1.5 रयो घोषणा (Rao Declaration)

संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने सन् 1989 दिसंबर 22 को 'पर्यावरण संरक्षण एवं विकास' विषय में एक सम्मेलन आयोजित करने की अनुमति दी। तदनुसार ब्रसील के रयोडिजनरॉय में सन् 1992 जून 3 से 12 तक एक वैश्विक शिखर सम्मेलन हुआ। इसमें 182 देश शामिल थे। सम्मेलन में 'पर्यावरण संरक्षण एवं विकास' के लिए स्वीकार की गई घोषणा 'रयो घोषणा' नाम से जाना जाता है। रयो घोषणा का लक्ष्य था कि पर्यावरण संरक्षण के लिए संपूर्ण लोकराज्यों के बीच समझौता स्थापित करना।

घोषणा की कुछ महत्वपूर्ण बातें हैं-

- विकास में केन्द्रबिन्दु मानव ही है। विकास का लक्ष्य यह होना चाहिए कि प्रकृति से मिलजुलकर तंदुरुस्त और कार्यक्षमता से युक्त जीवन को सफल बनाना।

- अंतर्राष्ट्रीय नियमों और संयुक्त राष्ट्रसंघ के संविधान के अनुसार हर एक देश को अपनी प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग करने का अधिकार होता है। यह स्वातंत्र्य ऐसा होना चाहिए कि जिससे प्रकृति या पडोसी देशों को कोई दोष न हो।

- भविष्य तथा वर्तमान पीढीयों की पारिस्थितिक आवश्यकताओं को न माननेवाली विकास योजनाएँ नहीं बनानी चाहिए।

- ठीक तरह की विकास योजनाओं का अविभाज्य अंग है पर्यावरण संरक्षण।

- सतत विकास योजनाओं को सफल बनाने के लिए गरीबी को मिटाना अनिवार्य है। विभिन्न देश के लोगों के बीच जीवन स्तर में जो अंतराल है उन्हें कम करने से संसार के सभी लोगों की आवश्यकतापूर्ति सुगम बना सकती है।

- सतत विकास को सफल बनाने तथा उच्चतम जीवन स्तर के लिए, हर एक देश अपनी अप्राकृतिक उत्पादन-उपभोग व्यवस्थाओं को मिटाकर जन-सांख्यिकी के अनुरूप सिद्धान्तों का निर्माण करना चाहिए।

- पारिस्थितिक संकट से मुक्ति के लिए सभी लोगों की भागीदारी अत्यंत अनिवार्य है। इसलिए उनके बारे में जनता को अवगत कराना ज़रूरी है।

- प्रदूषण एवं पारिस्थितिक विपत्तियों के शिकार बने लोगों का पुनर्वास कार्यक्रम प्रत्येक देश का कर्त्तव्य है। इनके लिए पर्याप्त मुआवज़ा भी देना चाहिए।

रियो घोषणा सामान्यत: पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता और इसके लिए हर देशों को अनिवार्यत: निभानेवाली बातों पर ज़ोर देती है।

1.8.1.6 क्योटो प्रोटोकाल (Kyto Protocol)

जापान के क्योटो में सन् 1997 दिसंबर 1 से 10 तक, पर्यावरण संरक्षण और मौसम परिवर्तन के बारे में अध्ययन करने के लिए एक सम्मेलन आयोजित किया गया था। प्रस्तुत सम्मेलन में पर्यावरण संरक्षण के लिए सभी देशों ने एक अंतर्राष्ट्रीय संधि पर हस्ताक्षर किया, जो 'क्योटो प्रोटोकोल' के नाम से जाना जाता है। सम्मेलन का प्रमुख उद्देश्य था कि हर एक देश में विभिन्न स्रोतों से बाहर निकालनेवाली कारबन डाई ऑक्साइड की मात्रा कम किया जाऐं। साथ ही साथ ओसोन परत का संरक्षण, पर्यावरण संरक्षण, इनके लिए स्वीकार्य उपाय तथा योजनाएँ आदि के बारे में भी चर्चा की गई।

1.8.1.7 कोपनहेगन सम्मेलन (Copenhagen Conference)

तापमान में वृद्धि, मौसम परिवर्तन तथा इनकी वजह से उत्पन्न पारिस्थितिक समस्याओं के बारे में चर्चा करने के लिए सन् 2009 में डनमार्क की राजधानी कोपनहेगन में एक सम्मेलन आयोजित किया गया था। इसमें 170 देश शमिल हुए। सम्मेलन में मौसम परिवर्तन तथा इसकी वजह से उत्पन्न समस्याओं को रोकने के लिए कई निर्णय लिये गये, जो कोपनहेगन प्रोटोकोल नाम से जाना जाता है।

आधुनिक युग में दिन-ब-दिन बढती जा रही पारिस्थितिक समस्याओं को रोकने के लिए तथा पृथ्वी में जीवन का अस्तित्व बनाये रखने के लिए विश्वभर में कई प्रयत्न हो रहे हैं। भारत में भी पर्यावरण संरक्षण के लिए कई संस्थाएँ कार्यरत हैं।

1.8.2 पर्यावरण संरक्षण: भारत में

भारत में पर्यावरण संरक्षण के लिए कई प्रकार के कार्यक्रम किये जा रहे हैं। इसके लिए कई आन्दोलन तथा संस्थाओं का निर्माण भी हुए हैं। भारतीय संविधान में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा स्पष्ट रूप में निर्धारित किया है।

1.8.2.1 भारतीय संविधान में पर्यावरण संरक्षण

- अनुच्छेद 21 : जीवन और व्यक्ति स्वातंत्र्य का संरक्षण। प्रत्येक व्यक्ति को उन गतिविधियों से बचाया जाना चाहिए जो उसके जीवन, स्वास्थ्य और शरीर को हानि पहूँचाती हो।

- अनुच्छेद 48 (क) : राज्य पर्यावरण संरक्षण एवं सुधार की व्यवस्था करेंगा तथा वन्य जीवन को सुरक्षा प्रदान करेगा।

- अनुच्छेद 49 : देश की पुरातन व प्रमुख इमारतें (स्मारक), स्थान तथा वस्तुओं का संरक्षण करेगा।

- अनुच्छेद 51 (क) : वन, झील, नदी तथा अन्य जीवों से युक्त प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करें और उनका संवर्धन करें तथा प्राणियों के प्रति दया भाव रखें।

- अनुच्छेद 252, 253 को काफी महत्वपूर्ण माना गया है क्यों कि जिसमें पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए कानून बनाने का प्रावधान प्रधिकृत किया गया है।

इस प्रकार भारतीय संविधान में न सिर्फ पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा निर्धारित की गयी हैं, बल्कि पर्यावरण असंतुलन से होनेवाले दुष्प्रभावों से बचने की रक्षा ओर भी ध्यान दिया गया है।

संविधान के अलावा संसद द्वारा पर्यावरण संरक्षण के लिए अनेक अधिनियम पारित किये गये हैं-

1.8.2.2 पर्यावरण संरक्षण अधिनियम

- वन्य जीवन संरक्षण अधिनियम (1972)
- जल प्रदूषण नियंत्रण अधिनियम (1974)
- वायु प्रदूषण नियंत्रण अधिनियम (1981)
- पर्यावरण संरक्षण अधिनियम (1986)
- खतरनाक अपशिष्ट प्रबंधन एवं निष्पादन अधिनियम (1989)
- ध्वनि प्रदूषण नियम एवं नियंत्रण अधिनियम (2000)

वैसे संपूर्ण जीवमंडल के संरक्षण के लिए पर्याप्त कई नियम हमारे देश में भी पारित किये गये हैं। जल तथा वायु प्रदूषण रोकने के लिए प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की स्थापना की गयी है। बिना बोर्ड की अनुमति से कोई व्यक्ति या संस्था, सीधे या अन्य कोई तरीके से जलस्रोतों की ओर दूषित पानी बहाना दण्डनीय अपराध है। किसी भी उद्योग के लिए नदी से पानी लेने के लिए बोर्ड की अनुमति अत्यंत अनिवार्य है, इसप्रकार लेनेवाले पानी के हिसाब से लगान भी देना पडेगा। उद्योग के उपरांत अपशिष्ट पदार्थों से युक्त पानी को बोर्ड के निर्देशानुसार शुद्ध करने के उपरांत निर्दिष्ट स्थान पर बहाने का सुरक्षित इंतज़ाम भी करना है। इन शर्तों का उल्लंखन करनेवाले

उद्योगों के खिलाफ आवश्यक दण्डनीय कार्यवायी स्वीकार करने का संपूर्ण अधिकार बोर्ड का होता है।

जल तथा वायु नियमों के संस्थापन के बाद सन् 1986 में तमाम प्रकार के प्रदूषण रोकने के लिए एक नियम बनाया गया है जो पर्यावरण संरक्षण नियम (Environmental Protection Act) कहा जाता है।

1.8.2.3 भारत के प्रमुख पर्यावरण- संरक्षण आन्दोलन

1.8.2.3.1 चिपको आन्दोलन संस्था

भारत के पर्यावरण संरक्षण आन्दोलन में चिपको का स्थान सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। सन् 1970 में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा ठेकेदारों को वनवृक्षों को काटने की अनुमति दी गई। इसके खिलाफ गाँववालों और कृषकों द्वारा आयोजित अहिंसात्मक प्रतिरोध है चिपको आन्दोलन। चिपको शब्द का अर्थ है 'पेडों का आलिंगन करना'। सन् 1974 मार्च 26 को उत्तरप्रदेश के चमोली जिला के रेनी गाँव में ग्रामीण औरतों द्वारा आयोजित आन्दोलन ही चिपको आन्दोलन नाम से जाना जाता है। यह घटना पारिस्थितिक आन्दोलन के दौर में एक मील का पत्थर है।

चिपको आन्दोलन का नारा है 'आवास व्यवस्था ही हमारी सुदृढ संपत्ति है। यही पारिस्थितिकवाद के लिए चिपको आन्दोलन की देन है। चिपको आन्दोलन के नेताओं में प्रमुख हैं सुन्दरलाल बहुगुणा और चण्डी प्रसाद भट्ट आदि। सन् 1987 में चिपको आन्दोलन के लिए 'रैट लैप्लिहुड पुरस्कार भी मिला है।

1.8.2.3.2 सेव सैलेंडवाली आन्दोलन (1973)

सन् 1973 में केरल के पालक्काड जिले में सैलेंडवाली के नित्य हरित (Evergreen) वनों की रक्षा के लिए हुए आन्दोलन सेव सैलेंडवाली आन्दोलन नाम से जाना जाता है। बिजली उत्पादन के लिए केरल के बिजली बोर्ड द्वारा कुंती नदी में बाँध बनाने का निर्णय लिया गया। लेकिन इस बाँध के निर्माण से सैलेंडवाली के आसपास के इलाकों और वहाँ रहनेवाले लोगों को कई प्रकार के पारिस्थितिक संकट झेलने होंगे। इन संभव्य समस्याओं से बचने हेतु निर्माण कार्यक्रमों के खिलाफ गाँववालों के द्वारा आन्दोलन चलाया गया, और बाँध निर्माण रद्द किया गया। इसके फलस्वरूप सन् 1985 में सैलेंडवाली को देशीय उद्यान के रूप में घोषित किया गया और उद्यान को दुनिया भर में खूब ख्याति प्राप्त हुई।

1.8.2.3.3 बलियापल आन्दोलन

उत्तर उडिया के बलियाल गाँव में मिसाइलों के परीक्षण के खिलाफ आयोजित किये गये आन्दोलन का नाम है बलियापल आन्दोलन।

1.8.2.3.4 नर्मदा बचाओ आन्दोलन

सन् 1947 के बाद भारत सरकार द्वारा नर्मदा नदी में कई योजनाएँ आविष्कृत करने का निर्णय लिया गया। तदनुसार नदी में 30 तक बडे आकार के बाँध, 135 मध्यवर्ती आकार के बाँध, और 3000 छोटे आकार के बाँध बनाने की अनुमति दी गयी। साथ ही साथ सरदार सरोवर बाँध की लंबाई और भी बढाने का भी निर्णय लिया गया। लेकिन इस योजना से उभर आनेवाली खतरनाक पारिस्थितिक समस्याओं को ध्यान में रखकर मेधापटकर के नेतृत्व में सन् 1989 में

आदिवासी, कृषक, गाँववाले, पारिस्थितिक प्रवर्तक सब ने मिलकर नर्मदा नदी की रक्षा के लिए आन्दोलन आयोजित किया। जिसके लिए रूपायित समिति नर्मदा बचाओ आन्दोलन समिति नाम से जाना जाता है। नर्मदा नदी के संरक्षण के प्रति जनता को जागरूक करने के लिए तथा जनता में पारिस्थितिकी संबंधी अवबोध जगाने की दृष्टि से विभिन्न लडाईयाँ चलायी गयीं। इसके महत्व के बारे में जनता के समझ में आसानी से आने हेतु शोर्ट फिल्म आदि बनाकर प्रदर्शित की गयी। इन सबके फलस्वरूप सरदार सरोवर बाँध के निर्माण पर रोक लगा दिया। इस आन्दोलन के नेताओं में बाबा आमटे का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। बुक्कर पुरस्कार विजेता अरुंधती रॉय और हिन्दी फिल्म एक्टर आमीरख़ॉन के आगमन से नर्मदा बचाओ आन्दोलन की लोकप्रियता और भी बढ गयी।

1.8.2.3.5 अपिको आन्दोलन

चिपको आन्दोलन से प्रेरणा पाकर सन् में 1983 में कर्नाटक के उत्तरकाण्डा जिले में पर्यावरण और वनों के संरक्षण के लिए चलाया गया आन्दोलन है अपिको आन्दोलन। 'चिपको' शब्द का कन्नड पर्यायवाची शब्द है अपिको, जिसका भी अर्थ है गले लगाना। औद्योगीकरण और लकडी उद्योग के लिए होनेवाली वनों की अंधाधुंध कटाई से ही कई प्रकार की पारिस्थितिक समस्याएँ हो रही हैं। जिससे पृथ्वी का संतुलन एकदम बिगड रहा है। इन पारिस्थितिक समस्याओं को रोकने तथा वन संपत्ति की रक्षा के लिए रूपायित समिति है अपिको आन्दोलन समिति।

1.8.2.3.6 गंगा रक्षा आन्दोलन (Save Ganga Movement)

उत्तर प्रदेश और बिहार के संत और सामाजिक-पारिस्थितिक प्रवर्तकों द्वारा गंगा नदी की रक्षा के लिए चलाया गया आन्दोलन ही गंगा रक्षा आन्दोलन नाम से जाना जाता है। गंगा नदी के संरक्षण को ध्यान में रखकर उन्होंने 'गंगा सेवा अभियान' नामक समिति की भी शुरूआत की। इस आन्दोलन में पूने की राष्ट्रीय महिला संगठन (National Womens Organisation) जैसी समितियाँ तथा पारिस्थितिक-सामाजिक- धार्मिक- आध्यात्मिक- साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रों से लोगों की सहभागिता मिल गयी है।

1.8.2.3.7 चिलका समिति

उडिसा में स्थित चिलका नामक झील एशिया की सबसे बडी लवन रस जल की झील मानी जाती है। इसकी लंबाई लगभाग 72 कि. मी है तथा चौडाई 25 कि.मी, जो 158 भिन्न-भिन्न वर्ग की चिडियों का आवास स्थान भी है। पूर्णतः झील के आश्रय में जीवन बितानेवाले मछुआरों की संख्या भी बहुत ज्यादा है। लेकिन सन् 1986 में सरकार ने झील के पास 1400 हेक्टर वनभूमि में सोने का खदान बनाने की अनुमति दी। इसके विरुद्ध मछुआरों तथा संपूर्ण गाँववालों द्वारा चलाया गया आन्दोलन ही चिलका आन्दोलन है। बाद में चिलका झील की रक्षा के लिए 'चिलका समिति' को भी रूपायित किया गया। आन्दोलन के फलस्वरूप मछुआरों का विरोध स्वीकार करके तथा पर्यावरण संरक्षण दोनों को ध्यान में रखकर सन् 1992 में सरकार ने झील के आसपास खदान खोलने के फैसले को रद्द कर दिया गया।

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट हो जाता है कि पर्यावरण संरक्षण के लिए राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कई प्रकार के कार्यक्रम किये जा रहे हैं। प्रकृति तथा पर्यावरण के अविवेकपूर्ण शोषण का परिणाम यही होगा कि पृथ्वी में जीवन का अस्तित्व ख़तरे में पड जाएगा। इसलिए हमारी विकास योजनाएँ प्रकृति के नियमों के अनुकूल होनी चाहिए। आनेवाली पीढी के लिए पृथ्वी को सुरक्षित रखना हमारा कर्तव्य है।

भविष्य में प्रकृति को भी महत्व देते हुए बनायी गयी विकास योजनाएँ ही हमें स्वीकार करनी चाहिए। पर्यावरण और विकास के बारे में अध्ययन करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा नियुक्ति की गयी समिति है- WCED (World Commission on Environment and Development) प्रस्तुत समिति द्वारा निर्देशित महत्वपूर्ण विकास योजना है- सतत विकास योजना (Sustainable Development)। इसमें आनेवाली पीढी की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखकर आविष्कृत विकास योजनाओं को शामिल किया है। प्रत्येक देश 'सतत विकास योजना' के आशय को स्वीकार करके अपने देश में विकास योजनाएँ आविष्कृत करना चाहिए। नहीं तो प्रकृति तथा पर्यावरण को नज़रअंदाज़ करनेवाली विकास की प्रवृत्तियाँ निश्चय ही सर्वनाश का कारण बन जाएगा।

1.9 पर्यावरण शिक्षा (Environmental Education)

हमारे चारों ओर दिखाई देनेवाले पेड-पौधे, जीव-जंतु, पशु-पक्षी आदि सभी जैविक-अजैविक तत्वों का सम्मिलित रूप को ही पर्यावरण कहा जाता है। इनमें से किसी एक का अभाव पारिस्थितिक संतुलन बिगडने का कारण बन जाएगा। इसलिए अनिवार्य है संतुलन बिगडे बिना इन्हें सुरक्षित रखना। लेकिन आधुनिक युग में मानव के अविवेकपूर्ण क्रिया कलापों से पर्यावरण का नाश हो रहा है। आज की

पारिस्थितिक समस्याओं का एकमात्र कारण सिर्फ मानव ही है। प्रकृति के साथ मानव के ऐसे निर्मम व्यवहार का परिणाम यही होगा कि पृथ्वी में जीवन का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। पृथ्वी में जीवन ज़ारी रख्ने के लिए स्वच्छ एवं संतुलित पर्यावरण की ज़रूरत है। इसलिए आज पर्यावरण संरक्षण एक प्रमुख विषय बन गया है। इसके लिए विश्वभर में कई प्रयत्न हो रहे हैं। प्रत्येक देश में अपने पर्यावरण संरक्षण के लिए अनेक कानून बनाये गये हैं, लेकिन इससे जनता संपूर्ण रूप से अवगत नहीं हैं। इसलिए आजकल 'पर्यावरण शिक्षा' का महत्व बढ रहा है। इसके तहत छात्रों में पर्यावरण संबंधी जिज्ञासा पैदा कर सकते हैं, इसके द्वारा पर्यावरण संरक्षण एक हद तक संभव होगा।

पर्यावरण शिक्षा में पर्यावरण और मानव का संबंध, पर्यावरण की समस्याएँ एवं उनका समाधान, पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता, प्रकृति के विभिन्न तत्व और उनका महत्व, पर्यावरण में मानव का महत्व और उत्तरदायित्व आदि कई विषयों की शिक्षा दी जाती है। इस प्रकार पर्यावरण द्वारा, पर्यावरण के लिए, पर्यावरण के बारे में जानकारी देने की प्रक्रिया को ही पर्यावरण शिक्षा कहा जाता है। भारत में वैदिक काल से ही धार्मिक व नैतिक शिक्षा के रूप में पर्यावरण शिक्षा दी जा रही थी। आधुनिक युग में भी छात्रों को सार्वजनिक शिक्षा के अंतर्गत पर्यावरण शिक्षा जोडकर अनिवार्य विषय के रूप में अध्ययन का मौका प्रदान करना चाहिए।

1.9.1 पर्यावरण शिक्षा की परिभाषा

- संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के पर्यावरणीय शिक्षा अधिनियम 1970, में पर्यावरण शिक्षा की परिभाषा इसप्रकार दी है-

"पर्यावरणीय शिक्षा का अर्थ है- वह शैक्षिक प्रक्रिया जो मानव के प्राकृतिक तथा मानव निर्मित वातावरण से संबंधित है। इसमें जनसंख्या विस्फोट, संसाधनों के विनियोजन एवं निःशोषण, संरक्षण, यातायात, प्रौद्योगिकी तथा संपूर्ण मानवीय पर्यावरण शहरी तथा ग्रामीण नियोजन का संबंध भी निहित है।"[8]

- International Union for Conservation of Nature (IUCN) की सेमिनार में तथ्य और अभिवृत्ति के आधार पर पर्यावरण शिक्षा को परिभाषित किया है-

"पर्यावरण शिक्षा दायित्वों को जानने तथा विचारों को स्पष्ट करने की वह प्रक्रिया है जिससे मनुष्य अपनी संस्कृति और जैविक परिवेश के मध्य अपने आपकी सम्बद्धता को पहचानने और समझने के लिए आवश्यक कौशल तथा अभिवृत्ति का विकास कर सके। पर्यावरण शिक्षा, पर्यावरण की गुणवत्ता से संबंधित प्रकरणों के लिए व्यावहारिक संहिता निर्माण करने तथा निर्णय लेने की आदत को भी व्यवस्थित करती है।"[9]

- युनेस्को के लिए 'फिनिश नेशनल कमीशन' ने अपनी पर्यावरण शिक्षा की सेमिनार रिपोर्ट में निम्न परिभाषा दी है-

"पर्यावरण शिक्षा पर्यावरण सुरक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने का साधन है। पर्यावरण शिक्षा किसी विज्ञान अथवा विषय के अध्ययन की अलग शाखा नहीं है। इसे जीवन-पर्यन्त संपूर्ण सिक्षा के अंतर्गत चलाया जाना चाहिए।"[10]

संक्षिप्त रूप में हम कह सकते हैं कि पर्यावरण के बारे में जानकारी प्राप्त कर अपने उत्तरदायित्वों को पहचानकर, पारिस्थितिक समस्याओं को हल करने या दूर करने की शिक्षा को ही पर्यावरण शिक्षा कहा जाता है।

1.9.2 पर्यावरण शिक्षा का महत्व

- पर्यावरण शिक्षा द्वारा वायु, जल, ध्वनि, मिट्टी आदि के प्रदूषणों और वनों की कटाई, जनसंख्या वृद्धि, आदि समस्याओं को रोकने की प्रेरणा दी जा सकती है।

- आज की एक प्रमुख समस्या है जनसंख्या वृद्धि, जो पारिस्थितिक समस्याओं का एक प्रमुख कारण है। इसे न रोकें तो पर्यावरण संतुलन बिगड जाएगा। इसलिए जनसंख्या वृद्धि रोकने के लिए पर्यावरण शिक्षा के अंतर्गत परिवार नियोजन का विषय को भी जोडना चाहिए।

- पर्यावरण शिक्षा द्वारा छात्रों को जल प्रदूषण रोकने का उपाय बताया जा सकते हैं। औद्योगीकरण, शहरीकरण आदि कई कारणों से हमारा पवित्र जल प्रदूषित हो रहा है। इसलिए उसे रोकना अत्यंत अनिवार्य है।

- पर्यावरण शिक्षा में वनों के महत्व पर भी अध्ययन हो रहा है। पर्यावरण संतुलन बनाये रखने में वृक्षों का महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए पर्यावरण शिक्षा में वनों की कटाई रोकने तथा अधिक से अधिक पेड-पौधों को लगाना आदि पर ज़ोर देते हैं।

- छात्रों के मानसिक विकास में पर्यावरण शिक्षा सहायक है।

- छात्रों को अपने जैव-भौतिक पर्यावरण एवं उसके प्रति अपने कर्तव्यों का ज्ञान प्रदान कराया जाता है।
- छात्रों के सामाजिक चरित्र विकास में पर्यावरण शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि जिसके द्वारा छात्रों में सहयोग, प्रेम, सहकारिता आदि गुणों का विकास होता है।
- भारतीय संस्कृति का संपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में पर्यावरण शिक्षा सहायक है।
- पर्यावरण शिक्षा से छात्रों में देश प्रेम और विश्व-बंधुत्व की भावना का विकास होता है।
- पर्यावरण शिक्षा से समाज के विभिन्न समुदायों, संस्थाओं का ज्ञान मिल जाता है।
- पर्यावरण शिक्षा में विभिन्न विषयों को समन्वित रूप से पढाते हैं। इसलिए छात्रों में ज्ञान की अखंडता का बोध होता है।

1.10 पारिस्थितिक सौंदर्यशास्त्र (Eco-Aesthetics)

दार्शनिक सौंदर्यशास्त्र का एक नया उपक्षेत्र है पारिस्थितिक सौंदर्यशास्त्र। एक नूतन साहित्यिक विचारधारा के रूप में इसका उदय बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में ही हुआ। इसमें आधुनिक मानव के पारिस्थितिक वीक्षण एवं उसके प्रतिरोध के रूप में उभर आये 'पारिस्थितिक बोध' दोनों का समन्वित रूप हम देख सकते हैं।

पारिस्थितिकी (Ecology) और सौंदर्यशास्त्र (Aesthetics) ये दोनों मत सम्मिलित होकर ही पारिस्थितिक सौंदर्यशास्त्र का उदय हुआ है। अन्य सौंदर्यशास्त्रों

से यह बिलकुल भिन्न है। क्योंकि इसके आविष्कर्ता मानव होने पर भी यह केवल मानव केन्द्रीकृत नहीं है, जो पर्यावरण या पृथ्वी केन्द्रीकृत एक ऐसा अवबोध है, जिसमें पृथ्वी के सारी जैव-अजैव घटक, उनके पर्यावरण, उनको प्रभावित करनेवाले सारे तत्वों का महत्व स्वीकार कर इनके संरक्षण पर बल देते हैं। इसमें जीवन के श्रृंख्रलाबद्ध श्रेणी, जिसे वेब ऑफ लाइफ (Web of life) भी कहती है- पेड-पौधे, पशु-पक्षी, शिलाएँ आदि सब अध्ययन के अधीन आ जाते हैं।

पारिस्थितिक सौंदर्यशास्त्र इस तत्व को भी महत्व देता है जो प्रकृति के सारे तत्वों को, बिना किसी विकलता या चोट के साथ आनेवाली पीढियों के लिए भी सुरक्षित और बरकरार रख्रने को हम बाध्य हैं।

पारिस्थितिक सौंदर्यशास्त्र जैसी एक महत्वपूर्ण अवबोध का आविर्भाव तियडर रोज़ाक की 'where the waste land ends' नामक रचना से ही हुआ है, जो अठारहवीं सदी के लगभग तीन समकालीन कवियों-ब्लेक, वेड्सवर्थ, गैथे की प्रकृति संबंधी विचारधाराओं और काव्य को केन्द्र बनाकर लिख्री गयी रचना है। इसके ज़रिये 'रोसाक' ने पारिस्थितिक और काव्यात्मक अवबोध के संतुलन पर गहराई से विचार की हैं और विज्ञान, प्रकृति और धार्मिकता को समन्वित करने का प्रयास भी किया है। पारिस्थितिक खेती के समर्थक मसनोबु फक्कुवोका, इवान इल्लिच का स्वास्थ्य दर्शन, चिपको जैसे आन्दोलन, ग्रीनपार्टी आदि ने पारिस्थितिक सौंदर्यशास्त्र के विकास को नया रास्ता प्रदान किया है।

पारिस्थितिक सौंदर्यबोध एक समकालीन विचारधारा है। आधुनिक युग की नाशोन्मुख्र जीवन व्यवस्था और विकास योजनाओं के प्रतिरोध के लिए पारिस्थितिक बोध अत्यंत अनिवार्य है। औद्योगिक क्रांति ने मानव और प्रकृति के अटूट संबंध को

तोड दिया। फलस्वरूप मानव प्रकृति के शासक और प्रकृति मानव की दासी बन गयी। प्राकृतिक संसाधनों को मानव अपनी आर्थिक उन्नति का एकमात्र साधन समझने लगा और प्रकृति पर विजय पाने के लिए निरंतर मुठभेड करते रहे। फलस्वरूप कई प्रकार की समस्याएँ सामने आने लगी। कभी-कभी प्रकृति अपने ऊपर किये जानेवाले अत्याचारों के खिलाफ स्वयं अपना आक्रोश सूखा, बाढ, सुनामी, तूफान जैसे प्राकृतिक आपदाओं के रूप में प्रकट करते रहे। इस दुख्रद स्थिति से मुक्ति के लिए एक प्रतिरोध के रूप में ही समाज में पारिस्थितिक बोध का उदय हुआ। पारिस्थितिकवाद की भाषा प्रतिरोध एवं विरोध की ही भाषा है। ऐसी भाषा में विरचित साहित्यिक रचनाएँ पारिस्थितिक सौंदर्यशास्त्र की निर्माण प्रक्रिया और विकास में पृष्ठभूमि तैयार कर रही है।

मानवराशि द्वारा अब यह पहचाना गया है कि हमारे चारों ओर, पेड-पौधे, वन, पशु-पक्षी, झील-झरना, नदी, पहाड आदि सब तत्व सिर्फ मानव की सुविधा बढाने हेतु तथा स्वार्थ पूर्ति के लिए नहीं है। पर्यावरण में हर एक घटक जो कितनी छोटी हो या बडी, सबका अपना महत्व होते हैं। पृथ्वी के घास और कीडों को भी पर्यावरण संतुलन बनाये रख्रने में अपना दायित्व है। इसलिए उन्हें सुरक्षित रख्रना अत्यंत अनिवार्य है। उनमें से एक को छोडकर बनाये जानेवाला दर्शन भी अपूर्ण है। ऐसी पहचान से ही पारिस्थितिक सौंदर्यशास्त्र का उदय हुआ है।

साहित्य में पारिस्थितिक सौंदर्य की अभिव्यक्ति हर एक व्यक्ति के मानसिक चिंतन के अनुरूप ही होता है। इसलिए किसी भी चीज़, वाद, आदर्श, भाव, शब्द में सौंदर्य का उदात्त गुण या अभिव्यक्ति हम देख्र सकते हैं।

पारिस्थितिक वीक्षण से मानव मन में जो सौंदर्यबोध पैदा होता है उसके द्वारा मानव जीवन भी सुंदर हो जाता है। सौंदर्य की अंतः सत्ता से केन्द्रित मानवीय चिंतन से हमारे जीवन में भी आनंद मिलता है। इसके ज़रिये मानव और प्रकृति के बीच आत्मीयतापूर्ण रिश्ते की पुनः सृष्टि संभव है। मानव इस परम सत्य को पहचान पाते हैं कि पृथ्वी हमारी नहीं है, हम पृथ्वी के हैं।

1.11 पारिस्थितिक चिंतन : सृजनात्मक स्तर में

साहित्य, समय और समाज के साथ चलते उन्नत भविष्य के सृजन का दूसरा नाम है, जो लेखक के निजी अनुभवों का सीमित दर्पण है। साहित्यकार के मन में मुख्यतः बाह्य जगत की आघात से उत्पन्न अनुभूतियों को वे अपनी लेखनी द्वारा अभिव्यक्त करते हैं। अर्थात् इस ब्रह्मांड में जो कुछ मौजूद है, वे सब साहित्य के विषय बन जाते हैं।

समकालीन साहित्यकार समय के प्रति जागरूक होते हैं। वे अपनी सृजनात्मक प्रतिभा द्वारा समसामयिक जीवन की समस्याओं एवं जटिलताओं का समाधान ढूँढने में सक्षम रहते हैं। इसलिए आधुनिक युग की प्रायः सभी समस्याएँ साहित्य के विषय बन जाते हैं। वैसे पारिस्थितिक समस्याएँ साहित्य का एक अभिन्न हिस्सा बन गयी है, जो 'पारिस्थितिक विमर्श' नाम से जाना जाता है। पारिस्थितिक विमर्श दरअसल प्रकृति की चेतावनियों को सुनकर मानव द्वारा अपनी गलतियों को सुधारने तथा प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण, समन्वयात्मक संबंध स्थापित करने की चेतना का नाम है।

विज्ञान और सूचनाप्रौद्योगिकी में निपुण आधुनिक मानव, प्रकृति से प्यार करके, एक सुदृढ संबंध जारी रखकर जिये आदिम मानव से बहुत दूरी पर है। आधुनिक मानव सिर्फ तकनीकी और सूचनाप्रौद्योगिकी की नयी जगत में उन्मत्त होकर अपनी जिंदगी में और भी ज्यादा सुख-सुविधाएँ बढाने की कोशिश में है। इसके लिए वह प्रकृति का लगातार शोषण करते रहे। फलस्वरूप हमारी स्वच्छ एवं निर्मल प्रकृति दूषित होने लगी, वायु-जल प्रदूषण दिन-ब-दिन बढते रहे, सूखा, भूकंप, बाढ जैसी विभीषिकाएँ आम बात बन गयी हैं।

प्रकृति पर मानव के हस्तक्षेप की खतरनाक परिणति है आधुनिक युग की सारी पारिस्थितिक समस्याएँ। इसलिए उसके बारे में जनता को जागरूक करते हुए तत्संबंधी अवबोध जगाकर उसे रोकना अत्यंत अनिवार्य है। इसके लिए विश्वभर में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कई कार्यक्रम हो रहे हैं। पर्यावरण संरक्षण के लिए कई संस्थाएँ कार्यरत हैं और पर्यावरण समस्याओं के विरुद्ध कई आन्दोलन भी हो रह हैं। साहित्य के ज़रिये भी प्रकृति की रक्षा के लिए तीव्र प्रयत्न हो रहे हैं। लेखक अपनी लेखनी को हथियार के रूप में मानकर अपनी क्षमता द्वारा उस महाविपत्ति को रोकने केलिए लगातार कोशिश कर रहे हैं।

1.11.1 पारिस्थितिक बोध : पाश्चात्य दृष्टिकोण

पाश्चात्य देशों में पारिस्थितिक समस्याओं की चर्चा सन् 1960 से ही हो रही थी। सन् 1962 में रेचल कारसन द्वारा रचित 'मौन वसंत' (silent spring) नामक रचना ने पाश्चात्य जनमानस में पारिस्थितिक अवबोध का बीजारोपण किया। इसलिए ही 'मौन वसंत' पारिस्थितिकी का बाइबिल नाम से जाना जाता है।

साहित्य के क्षेत्र में पारिस्थितिक बोध का पहला कदम कविता के ज़रिये ही हुआ था। अठारहवीं सदी के पोप, जॉनसेन, ड्राइडन,ब्लेक, वेड्सवर्थ, षेल्ली, कीट्स जैसे कवियों ने अपनी रचनाओं में प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन मार्मिक ढंग से किया है। लेकिन कारसन के 'मौन वसंत' को ही एक विमर्श के रूप में पारिस्थितिक चर्चा का प्रथम प्रयत्न माना जाता है। बाद में सन् 1964 के दौरान जार्ज पेकिन्स ने अपनी रचना Man and Nature में यह आशंका प्रकट की है कि प्रकृति में मानव द्वारा किये जानेवाले अप्राकृतिक मुठभेड ख़तरनाक पारिस्थितिक समस्याओं का कारण बन जाएगा। इसके बाद ब्रिटीश मार्क्सिस्ट आलोचक रेयमंड विलियम का The country and the city (1973) और जोसफ मीकेर्स का The comedy of survival (1974) आदि कई रचनाएँ इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। साहित्य में 'इको क्रिटिसिज़्म' शब्द का प्रथम प्रयोग विलियम रूर्कोट ने अपनी रचना Literature and Ecology : An experiment in Eco-Criticism (1978) में ही किया था। सन् 1996 में शेरिल ग्लोफेल्टी द्वारा संपादित पुस्तक है 'Eco-Criticism Reader', जो पारिस्थितिक दर्शन से जुडे एक समीक्षात्मक ग्रन्थ है। जिसका मुख्य प्रतिपाद्य प्रकृति और संस्कृति है।

- **मौन वसंत (Silent Spring), Rachel Carson (1962)**

समुद्र जीवी वैज्ञानिक रेचल कारसन की रचना 'मौन वसंत' का प्रकाशन सन् 1962 सितंबर 27 में ही हुआ। प्रस्तुत रचना के द्वारा लेखिका हमें यह बताना चाहती हैं कि खेतों में कीटों के नाश के लिए व्यापक रूप से प्रयुक्त किये जानेवाले डी.डी.टी नामक रासकीटनाशक सिर्फ कीटों को ही नहीं बल्कि संपूर्ण जीव-जंतुओं और उनकी आवास व्यवस्था के लिए भी हानिकारक है। 'मौन वसंत' के प्रकाशन

के पहले ही कारसन ने डी.डी.टी की यह विनाशकारी शक्ति के बारे में न्यूयोरकर मैगसिन में लिखी थी। उनके अनुसार कीटनाशकों का बुरा असर मिट्टी में सीमित नहीं रहता, उसमें पृथ्वी के सभी तत्वों का नाश करने की ताकत है।

कारसन ने अपनी रचना में यह आशंका व्यक्त की है कि विज्ञान हथियार बन गया है, जो मानव को मृत्यु वारंट दे रहा है। डी.डी.टी के उपयोग से खेती की रक्षा हो जाय, जो जीवजंतुओं का संरक्षण करें, ये सब झूठे वादे हैं। यह सिर्फ हमारी प्रकृति को ही नहीं मानव कुल का भी नाश करने लायक शक्तिशाली ज़हर है। वर्षों पहले रेचल कारसन द्वारा दी गयी ये चेतावनी आज बिल्कुल सही सिद्ध हुई है।

'नदी की मृत्यु हो रही है' कार्सन का यह वाक्य उस समय सिर्फ एक आलंकारिक भाषा के रूप में ही समाज ने देखा। लेकिन सन् 1950 में कानडा की मिरमिची नदी में हुए परीक्षणों के उपरांत नदी में विलीन डी.डी.टी की मात्रा उस नदी के नाश का कारण बन गया।

अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक उपनिवेशीकरण के बारे में सामान्य जनता अवगत होने के पहले ही, केवल आर्थिक उन्नति को लक्ष्य करनेवाली विकास योजनाओं पर खिल्ली उठाकर सन् 1962 में रेचल कार्सन ने अपनी रचना की प्रस्तुति की। इसमें उन्होंने खुले रूप में बताया है कि मुनाफे का लालच सर्वनाशा की ओर ही हमें ले जाते हैं। इसलिए उन्होंने हमें आह्वान किया है कि- आखें खोलकर अपनी चारों ओर देखो, और हरी-भरी पृथ्वी और प्रकृति से प्यार करो। रासयनिक पदार्थ, कीटनाशकों का प्रभाव, प्रकृति पर बढते मानव का हस्तक्षेप आदि कई मुद्दों के बारे में 'मौन वसंत' ने बातें की हैं। लेकिन पहले-पहले कार्सन की चेतावनियों को लोगों ने नज़र अंदाज़ किया। धीरे-धीरे उसका प्रभाव अमेरिका में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने को सक्षम सिद्ध

हुआ। इसके फलस्वरूप सन् 1972 में अमेरिका में DDT पर रोक लगा दी और अन्य कीटनाशकों के उपयोग में नियंत्रण लगा दिया।

पारिस्थितिक संरक्षण में रेचल कार्सन के योगदान को मानते हुए उन्हें मृत्युपरांत सम्मान के रूप में अमेरिका के सबसे बडे नागरिक सम्मान 'प्रसिडेन्शियल मेडल ऑफ फ्रीडम' से सम्मानित किया गया है।

1.11.2 हिन्दी साहित्य में पारिस्थितिक चिंतन

प्रकृति और मानव का अटूट संबंध हिन्दी साहित्य में पुराने ज़माने से ही हम देख रहे हैं। पहले-पहले वह एक आत्मीय रिश्ता था, लेकिन धीरे-धीरे समकालीन साहित्य पर आते-आते यह संबंध एक शोषणापरक मानसिकता पर आधारित बन गये। फलस्वरूप साहित्य में 'पारिस्थितिक विमर्श' नामक एक नई विचारधारा उभर आई। समकालीन साहित्यकार प्रकृति पर मानव के बढते हस्तक्षेप और निर्मम व्यवहार के विरुद्ध अपनी रचनाओं द्वारा आक्रोश प्रकट करते रहे। वे बढती पारिस्थितिक समस्याओं के बारे में सामान्य जनता को जागरूक करके तज्जन्य अवबोध प्रदान करना अपना कर्तव्य माना। इसका परिणाम है साहित्य के प्रायः सभी विधाओं पर विशेषकर कविता, कहानी, उपन्यास में मुखरित पारिस्थितिक चर्चाएँ।

समकालीन कविता का प्रमुख स्वर प्रतिरोध का है। आधुनिक युग में विकास एवं प्रगति के नाम पर प्रकृति के साथ अत्याचार हो रहे हैं। मानव की ऐसी प्रवृत्तियों द्वारा पारिस्थितिक असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो रही हैं। समकालीन कवि अपनी कविता के माध्यम से मानव के हस्तक्षेपों के प्रति अपना विद्रोह प्रकट करते हैं।

छायावादी युग की कविता में प्राकृतिक सौंदर्य का मोहन रूप ही हम देख्र सकते हैं। पंत, निराला आदि कवियों की रचनाओं में प्राकृतिक सौंदर्य वर्णन अत्यंत सराहनीय है। हिन्दी कविता में प्रकृति के प्रति पुरानी एवं नयी दृष्टि बिल्कुल भिन्न है। समकालीन कविता में प्राकृतिक सौंदर्य चित्रण के स्थान पर पारिस्थितिक संकट ही उभर आयी है। इसके उदाहरण हैं- रामदरश मिश्र की 'आदत', धर्मवीर शर्मा की 'दूषित पर्यावरण', अरुण कमल की 'इस श्मशान पर', ज्ञानेद्रपति पति की 'रेत के द्वीप पसर आये हैं', रामकुमार आत्रेय की 'खुला दरवाज़ा', 'मिट्टी की गन्ध', 'पेड का दुःख', सूरजप्रसाद पचौरी की 'बाढ 2005', न्याज़ हिरदेपुरी की 'सुनामी', शैल रस्तोगी की 'एक उदास आशा', 'सुदूर जंगल में', निर्मला पुतुल की 'जंगल, नदी, पहाड और गुमसुम बूढी पृथ्वी का दुःख' आदि। इन सारी कविताओं में नव उपनिवेशवादी परिवेश में पेड-पौधे, जीव जंतु, नदी-नाला तथा सभी प्राकृतिक तत्वों के साथ मनुष्य के बढते हस्तक्षेप को व्यक्त किया गया है। मानव की इन प्रवृत्तियों द्वारा पारिस्थितिक संतुलन ख्रतरे में पड गया है।

समकालीन हिन्दी कहानी साहित्य में पारिस्थितिक चिंतन को सशक्त रूप में अभिव्यक्त किया है। राजेश जोशी की कहानी 'कपिल का पेड' में मानव और प्रकृति के पारस्परिक संबंध एवं पारिस्थितिक समस्याएँ आदि का चित्रण किया गया है। जलवायु परिवर्तन पर भी इसमें चर्चा की है।

वैश्वीकरण, शहरीकरण आदि विषय को आधार बनाकर, ज्ञान प्रकाश द्वारा लिख्री गयी कहानी है 'पुलिया'। जिसका प्रकाशन नया ज्ञानोदय पत्रिका में ही हुआ।

विकास के नाम पर होनेवाले प्राकृतिक तत्वों के विनाश को चित्रित करनेवाली कहानी है राजेश जोशी की 'मैं हवा पानी परिंदा कुछ नहीं'। पर्यावरण संतुलन बनाये रखने में सारे प्राकृतिक तत्वों का अपना महत्व होता है। लेकिन मानव अपनी सुख-सुविधा के लिए इन तत्वों पर अधिकार स्थापित करके उनका समूल विनाश कर रहे हैं।

पर्यावरण प्रदूषण एवं शहरीकरण आदि से उत्पन्न पारिस्थितिक संकट को आधार बनाकर पंखुरी सिन्हा द्वारा लिखी गयी कहानी है 'तालाब कहो या पोखर'।

एस.आर. हारनोट की कहानी है 'लाल होता दरख्त'। पुराने जमाने में प्रकृति को देवता मानकर उसकी पूजा करते थे। लेकिन आधुनिक युग में उपभोक्तावाद, बाज़ारीकरण आदि के जाल में फँसकर मानव धरती का अंधा दोहन कर रहे हैं। यही कहानी का प्रतिपाद्य है।

उदय प्रकाश की एक चर्चित कहानी है 'मैंगोसिल'। प्रस्तुत कहानी में एक अज्ञात बीमारी के बारे में लेखक बताते हैं। जो एक लाइलाज रोग है, जिसमें बच्चों का सिर बडे हो जाते हैं। केरल के कासरगोड जिले में ऐसा रोग हम देख सकते हैं। अधिक उपजाऊ एवं फल की प्राप्ति के लिए खेती में जहरीला कीटनाशक एन्डोसलफान का उपयोग कर रहा है। इसके कारण ही वहाँ इस अज्ञात बीमारी फैल गयी है।

इनके अतिरिक्त स्वयं प्रकाश की 'बली', 'कहाँ जाओगे बाबा', 'जंगल का दाह', संजीव की 'आरोहण' रवीन्द्र कालिया की 'सुंदरी', चित्रा मुद्गल की

'जिनावर और जंगल', सत्य नारायण की 'डाकण' आदि कहानियों में भी पारिस्थितिक बोध देख्र सकते हैं।

पर्यावरण संकट को आधार बनाकार कई हिन्दी नाटकों की रचना हुए हैं। इसका उदाहरण हैं- राजेश जैन के 'चिमनी चौगा', 'कोयला चला हंस की चाल', डॉ. अज्ञान का 'इक्कीसवीं सदी', चिरंजीत के 'नया मवंतर', धरती के लाल', भगवान सिंह का 'शकुन्तला का द्रोह', रेख्रा जैन का 'वन महोत्सव' विजेंद्र का 'क्रौंचवध' आदि।

राजेश जैन के 'चिमनी चोगा' का मुख्य विषय ध्वनि प्रदूषण है। इसमें ध्वनि प्रदूषण का कारण, पर्यावरण और मानव पर उसका प्रभाव आदि पर विचार किया है। उनका एक सशक्त पारिस्थितिक नाटक है-'कोयला चला हंस की चाल'। प्रस्तुत नाटक में कोयला खनन से उत्पन्न पारिस्थितिक समस्याओं का चित्रण किया गया है, जो सिर्फ वर्तमान पर केन्द्रित नाटक नहीं, बल्कि इसमें भविष्य के प्रति आशंका भी नाटककार व्यक्त किये हैं।

मोटर वाहनों और कारख्रानों आदि से निकलने वाले विषैली धुआ प्रकृति पर कैसा दुष्प्रभाव पडता है, इसको आधार बनाकर लिख्रा गया नाटक है चिरंजीत का 'नया मवंतर'। इसमें प्राकृतिक संसाधनों का दुरुपयोग, वृक्षों की कटाई आदि समस्याओं की चर्चा की गयी है।

भगवान सिंह का 'बिन पानी सब सून' का मुख्य विषय जल प्रदूषण है। नाटक में जल संरक्षण की आवश्यकता के बारे में व्यक्त करके उसके प्रति जनता को जागृत करने का प्रयास किया गया है।

'भोपाल गैस त्रासदी' को आधार बनाकर प्रकाशित नाटक है त्रिपुरी शर्मा का 'बांझ घाटी'।

चिरंजीत का 'धरती के लाल' में अम्ल वर्षा ही मुख्य विषय है। आधुनिक युग में कल-कारखानों एवं मोटर गडियों से निकलनेवाली काली विषैली धुआ ही अम्ल वर्षा का कारण है। वायु प्रदूषण से जीव-जंतु, पेड-पौधों का नाश हो रहे हैं।

वन संरक्षण पर आधारित नाटक है 'भगवान सिंह' का 'शकुन्तला का द्रोह'। प्रस्तुत नाटक में वन विनाश, पृथ्वी में वृक्षों का महत्व, वन संरक्षण की आवश्यकता आदि पर चर्चा की हैं। इसी दिशा में आनेवाला और एक नाटक है रेखा जैन का 'वन महोत्सव'। विजेंद्र का काव्य नाटक 'क्रौंचवध' में भी जंगल शोषण ही मुख्य विषय है। इसमें लेखक बढते पर्यावरण प्रदूषण के प्रति अपनी आशंका व्यक्त किये हैं।

इस प्रकार नाटक विधा में पर्यावरण प्रदूषण एक गंभीर समस्या के रूप में प्रस्तुत करते हुए उसे रोकने का प्रयास किया जा रहा है।

हिन्दी में पर्यावरण विषय पर आधारित लिखे गये अनेक उपन्यास मिलते हैं। प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' भारत का प्रथम पारिस्थितिक उपन्यास माना जाता है। इसके अलावा संजीव के 'सावधान! नीचे आग है', 'पाँव तले की डूब', 'धार', 'किसनगठ के अहेरी', वीरेन्द्र जैन के डूब, पार, कमलेश्वर का अनबीता व्यतीत, सुभाष पन्त का 'पहाड चोर', श्री प्रकाश मिश्र का 'जहाँ बांस फूलते है', मनमोहन पाठक का 'गगन घटा धहरानी', रणेन्द्र का 'ग्लोबल गाँव के देवता' आदि उपन्यास इसी दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है।

प्रेमचंद ने अपने उपन्यास 'रंगभूमि' में वर्षों पहले ही पर्यावरण समस्या का चित्रण किया था। 'रंगभूमि' भारतीय जन जीवन का रंगमंच है। जिसमें साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा प्रकृति पर किये जानेवाले अत्याचार का चित्रण किया गया है। औद्योगीकरण की समस्या ही रंगभूमि का मुख्य विषय है।

वीरेन्द्र जैन द्वारा लिखे गये उपन्यास हैं 'डूब' और 'पार'। 'डूब' का प्रतिपाद्य विषय उत्तर प्रदेश के टिहरी डैम प्रोजक्ट है। हमारे देश में आज़ादी के बाद बाँधों का निर्माण तेज़ी से शुरू हुआ, जिससे हमारी नदियों का नाश होने लगा। इसके अलावा बाँधों के आसपास की सारी संपत्ति नष्ट हो जाती हैं। बाँधों के निर्माण से काफी बडा भूभाग व्यर्थ हो जाता है और बाढ, भूकम्प आदि आपदाएँ तथा मलेरिया जैसी महामारी का कारण बनता है। इससे पर्यावरण संतुलन बिगड जाते है। 'पार' उपन्यास का मुख्य विषय है वनों का संरक्षण की आवश्यकता। जंगलों की अंधाधुंध कटाई आदिवासी जीवन पर विपरीत प्रभाव डालता है। पर्यावरण संतुलन बनाये रखने में वनों का महत्वपूर्ण स्थान है।

नासिरा शर्मा का उपन्यास 'कुइयाँजान' में पानी की समस्या ही मुख्य विषय है। पानी संकट को दूर करने के लिए हौज का निर्माण अनिवार्य है। यही उपन्यास का संदेश है। नदी जोडने से उत्पन्न समस्या पर भी इसमें चर्चा की है। लेखिका के अनुसार नदी जोडने से एक नदी की समस्याएँ दूसरी नदी को भी मिलती है और दोनों नदी गन्दी हो जाती है।

पर्यावरण समस्याओं पर लिखनेवाले साहित्यकारों में संजीव का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके 'सावधान! नीचे आग है' उपन्यास में कोयला खदान से उत्पन्न

पारिस्थितिक समस्याएँ ही प्रमुख विषय है। 'धार' उपन्यास में तेजाब की फैक्टरी तथा खदानों से उत्पन्न पारिस्थितिक समस्याओं पर चर्चा की है।

पहाडों का उत्खनन, जंगलों का नाश आदि से उत्पन्न पारिस्थितिक समस्या को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास है सुभाष पन्त का 'पहाड चोर'।

युरेनियम खनन पर आधारित उपन्यास है महुआमाजी का 'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ'।

इस प्रकार तेजिन्दर का 'काला पादरी', मनमोहन पाठक का 'गगन घटा घहरानी', रणेन्द्र का 'ग्लोबल गाँव के देवता', राजेश जोशी का 'दावानल', कमलेश्वर का 'अनबीता व्यतीत' आदि कई उपन्यासों में पारिस्थितिक संकट ही मुख्य विषय है। इसके बारे में आनेवाले अध्याय में हम गहराई से विचार करेंगे।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समकालीन हिन्दी साहित्य पारिस्थितिक संकट पर गहराई से विचार कर रहे हैं। विकास के नाम पर प्रकृति का निरंतर शोषण करनेवाले आधुनिक मानव संकुचित मानसिकता पर हिन्दी साहित्य तीव्र प्रहर डालते हैं।

1.11.3 मलयालम साहित्य में अभिव्यक्त पारिस्थितिक बोध

केरल में पारिस्थितिक चर्चा की शुरूआत सैलेंडवाली आन्दोलन से ही हुई। इससे प्रेरणा पाकर मलयालम साहित्य में भी 'पारिस्थितिक संकट' एक प्रमुख विषय बन गया। सन् 1979 में एन.वी कृष्णवारियर, सुगतकुमारी, ओ.एन.वी. अय्यप्पनिक्कर, विष्णुनारायण नंपूतिरी, ओ.के. वेलायुधन नायर आदि के नेतृत्व में 'प्रकृति संरक्षण समिति' का निर्माण हुआ। सन् 1983 में समिति द्वारा प्रकाशित

'वनपरवम' नामक कविता संग्रह मलयालम की सबसे पहली 'हरित साहित्यिक कृति' बन गयी।

पर्यावरण तथा पारिस्थितिक संकट को आधार बनाकर मलयालम साहित्य में बहुत सारी कविताओं का प्रकाशन हुए हैं। इनमें प्रमुख हैं- कुन्निरामन नायर की 'कालवर्षमे नन्दी', इडश्शेरी की 'कुट्टिप्पुरम पालम', वैलोप्पिल्ली की 'जलसेचनम', 'युग परिवर्तनम', 'सर्प्पक्काडु', ओलप्पमन्ना की 'उडकुडम्', एन.एन. कक्काड की 'वेरुते', 'मलयिडिच्चिल', 'इता आश्रममृगम कोल्लु! कोल्लु', अय्यप्प पनिक्कर की 'मरणत्तिनप्पुरम्', 'आ मरम् ई मरम्', 'काडेविडे मक्कले', 'मर्त्य पूजा', 'इरुपत्तियोन्नु', 'ओरु मरम वेट्टुमनेरम', ओ.एन.वी की 'भूमिक्कोरु चरमगीतम', 'कालिंदी', 'पोखरान', कृष्णवारियर की 'बाकी वल्लतुमुण्डो', सुगतकुमारी की 'मरत्तिनु स्तुति', 'सैलेंडवाली' आदि।

मलयालम के प्रमुख पारिस्थितिक उपन्यास हैं- इ.एम कोवूर का 'मलकल', बषीर का 'भूमियुडे अवकाशिकल', एस.के. पोट्टक्काड़ का 'विषकन्यका' आदि।

ओ.वी. विजयन की 'रेणुका', 'धर्मपुराणम', 'काट्टुकोषियुडे अनुग्रहम', अम्मनम् जॉन की 'क्रिसमस मरत्तिन्टे वेरुकल', 'वीडु' आदि परिस्थितिक संकट के आधार पर लिखी गयी कहानियाँ हैं।

उपन्यासों में तोमस का 'विषभूमिकळिल मयन्नुन्नवर', बालकृष्णन मान्गाड का 'भूमियुडे कन्नु', अंबिकासुनत मान्गाड का 'एनमकजे' आदि भी प्रमुख हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि समकालीन साहित्य पारिस्थितिक संकट पर गहराई से विचार करते हैं। विकास के नाम पर प्रकृति का शोषण करनेवाले मानव यह पहचान नहीं पाते हैं कि वह अपना विनाश ही कर रहे हैं। आधुनिक मानव के अविवेकपूर्ण क्रिया-कलापों से आज पृथ्वी का संतुलन बिगड रहे हैं। विकास की प्रवृत्तियाँ पृथ्वी में जीवन के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं। इसलिए पर्यावरण समस्याओं के प्रति जनता को जागरूक करने के लिए विश्वभर में कई प्रयत्न आयोजित किये जा रहे हैं। इसके लिए कई संस्थाएँ कार्यरत हैं और कई आन्दोलन भी चल रहे हैं। इनके समान प्रमुख है साहित्य के द्वारा किये जानेवाला प्रयत्न। मानव जीवन में साहित्य का बहुत बडा प्रभाव होते हैं। इसलिए ही साहित्यकार पर्यावरण समस्या के बारे में जनता को जागरूक करके उनमें तत्संबंधी अवबोध प्रदान करना अपनी रचनाधार्मिता मानते हैं। प्रकृति की रक्षा मानव जाति की रक्षा है। विश्व का इतिहास इसका गवाह है कि साहित्य से समाज में बडे-बडे परिवर्तन हुआ है। हम कामना करते हैं कि परिस्थिति के संदर्भ में भी यह प्रयत्न सफल रहें।

संदर्भ ग्रन्थ

1. संजय दत्ता- पर्यावरण शिक्षा, पृ.20
2. वही, पृ.4
3. वही, पृ.20
4. वही, पृ.20
5. वही, पृ.75
6. वही, पृ.34
7. वही, पृ.34
8. वही, पृ.212
9. वही, पृ.225
10. वही, पृ.225

दूसरा अध्याय

अस्स्योत्तर हिन्दी उपन्यास : एक सामान्य परिचय

साहित्य समाज जीवन का दर्पण है, इसमें सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति ही मिलता है। साहित्यकार अपनी रचनाओं के सहारे समाज को दिशा-निर्देश तथा पथ-प्रदर्शन देने का कार्य करते हैं। इसलिए ही साहित्य को समाज परिवर्तन का साधन तथा सामाजिक प्रबोधन का माध्यम माना जाता है। साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय एवं ख्यातिप्राप्त विधा है - उपन्यास। बहुत कम अवधि में इतनी व्यापक प्रशस्ति तथा प्रगति अन्य कोई साहित्यिक विधा को उपलब्ध नहीं हुई है। पहले-पहले साहित्यिक रचनाओं का उद्देश्य केवल मनोरंजन प्रदान करना था। लेकिन धीरे-धीरे परिस्थितियों के अनुसार साहित्य के उद्देश्य में परिवर्तन आने लगे। और उसमें सामाजीक यथार्थ का चित्रण करने लगे। अब, तत्कालीन समय के जटिल तथा वैविध्यपूर्ण मानव जीवन को उसकी यथार्थवादिता के साथ समग्र रूप से चित्रित करने में उपन्यास विधा समर्थ सिद्ध हुई है।

हिन्दी साहित्य में आधुनिककाल में ही गद्य साहित्य का अभूतपूर्व विकास हुआ। इसलिए आधुनिककाल को गद्यकाल भी कहा जाता है। गद्यकाल में उपन्यास विधा की गणना गद्यकाव्य के अंतर्गत की जाती है। गद्यकाव्य के मुख्यतः दो भेद हैं- दृश्यकाव्य और श्रव्य काव्य। दृश्यकाव्य में रूपक, उपरूपक आदि आ जाते हैं और श्रव्यकाव्य के अंतर्गत आनेवाली विधाएँ हैं- उपन्यास, गल्प, आख्यायिका आदि।

विश्व की प्रायः सभी भाषाओं में कथा के अनेक रूप मिलते हैं। प्राचीनकाल में कथा के दो रूप थे जो है मौखिक रूप तथा लिखित रूप। भाषा तथा साहित्य के विकास के साथ धीरे-धीरे इन कथाओं में भी परिवर्तन होने लगे, और साहित्य में 'उपन्यास' नामक एक विधा का जन्म हुआ। आधुनिककाल में मुद्रण कला के आविष्कार से उपन्यास विधा का और भी एक विकसित रूप हमारे सामने आयी।

क्यों कि उपन्यास दीर्घ आकार के होते हैं। लघु कथाओं के समान श्रोताओं को बहुत देर तक किसी के समीप बैठकर उसे सुनना उतना आसान कार्य नहीं है। आधुनिक युग में उपन्यास अत्यंत नवीन एवं सशक्त साहित्यिक माध्यम बन गया है।

2.1 उपन्यास शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ

उपन्यास शब्द मूलतः संस्कृत भाषा का है। हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में उपन्यास शब्द का आगमन संस्कृत से ही माना जाता है। संस्कृत साहित्य में इसका अर्थ है- कल्पित कथा, परिकथा, उपकथा, मिथ्या कथा आदि। हिन्दी में 'उप+ न्यास' इन दोनों शब्दों के योग से ही उपन्यास शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। इनमें 'उप' का अर्थ है समीप और 'न्यास' का अर्थ है वस्तु। अर्थात् समीप रखी हुई वस्तु। अतः उपन्यास एक ऐसी रचना है जिसे हमें अपने जीवन के निकट की वस्तु प्रतीत होता है। अर्थात् मानव जीवन के निकटतम चित्र को प्रस्तुत करनेवाला माध्यम है उपन्यास।

उपन्यास का अंग्रेज़ी पर्यायवाची शब्द है नोवेल। जो इटालियन शब्द 'नोवेला' से बना है, जिसका अर्थ है समाचार। अर्थात् नोवेल में दैनिक जीवन की समाचार या घटनाओं को चित्रित करते हैं।

2.2 उपन्यास की परिभाषा

किसी भी साहित्यिक विधा को पूर्ण रूप से परिभाषित करना सरल कार्य नहीं है। फिर भी अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा उपन्यास को परिभाषाबद्ध करने का प्रयास हुआ है। उनमें से कुछ हैं-

- फ्रेंच उपन्यासकार स्तान्दाल के अनुसार- "उपन्यास एक दर्पण है, जो सडक के किनारे-किनारे चल रहा है। मतलब है उपन्यास संपूर्ण मानव जीवन से जुडे हुए हैं।[1]
- दि न्यू पिकचर्ड इनसाइक्लोपीडिया में उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार दिया है- "उपन्यास या नोवेल दीर्घ आकार की गद्य में रचित उस कल्पित कथात्मक रचना है, जिसमें जीवन के यथार्थ स्वरूप की परिचायक कथा तथा पात्र सर्जित किये गये हो।"[2]
- इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में उपन्यास के बारे में इस प्रकार बताया है- "उपन्यास में मानव जीवन के सत्य का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत किया जाता है।"[3]
- रोल्फ फॉक्स के अनुसार- "उपन्यास काल्पनिक गद्यकथा मात्र नहीं होता है। वह मानव जीवन का गद्य है, मानव के समग्र व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति देने में प्रयत्नशील प्रथम कला रूप है।"[4]
- आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के अनुसार- "भारत तथा पश्चिमी देशों में उपन्यास आधुनिक युग की देन है तथा उसके आविर्भाव नवीन युग के आगमन का सूचक है।"[5]
- गुलाबराय का मत है- "उपन्यास कार्य-कारण श्रृंखला में बाँधा हुआ वह गद्यात्मक कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ जीवन का प्रतिनिधित्व करनेवाले व्यक्तियों से संबंधित वास्तविक या

काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्‌घाटन किया जाता है।"[6]

- उपन्यास सम्राट प्रेमचंद जी ने उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझा है। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।[7]

- बाबू ब्रजरत्नदास के विचार से "उपन्यास मानव जीवन के छोटे या बडे चित्र हैं और उनमें जीवन की ही व्याख्या की जाती है। उपन्यासों में जीवन की इन्हीं सब अवस्थाओं में से एक या अनेक का चित्रण होता है और उनमें से किसी एक की प्रमुखता होते हुए भी जीवन की साधारण बातों की उपेक्षा नहीं की जा सकती क्यों कि चित्र को पूर्ण करने के लिए सभी की आवश्यकता होती है।"[8]

उक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि संपूर्ण मानव जीवन ही उपन्यास का क्षेत्र है। उसमें मानव जीवन से जुडे हुए समस्त विषयों जैसे ज्ञान, विज्ञान, कला, संस्कृति, राजनीति, धर्म आदि का समावेश है। मानव जीवन के विविध चित्र जिस प्रकार उपन्यास में मिलता है उतना अन्य किसी साहित्यिक विधा में नहीं। इसलिए ही उपन्यास 'मानव जीवन की आलोचना' कहा जाता है। हमारे वास्तविक जीवन से इतने मिले-जुले रहने के कारण उपन्यास को शीघ्र ही साहित्य जगत् में चिरप्रतिष्ठा मिली। आज समस्त साहित्यिक विधाओं में उपन्यास अत्यंत लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण विधा बन गयी है।

2.3 हिन्दी उपन्यास : विकास यात्रा

हिन्दी साहित्य के अन्य गद्य विधाओं के समान उपन्यास का विकास भी भारतेंदु युग में ही हुआ था। भारतेंदु युग के उपन्यासों में औपन्यासिक तत्वों एवं सामाजिक यथार्थ का अभाव था। उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद जी का आगमन एक महत्वपूर्ण कदम था। इसलिए हिन्दी उपन्यास के लंबे इतिहास का काल-विभाजन प्रेमचंद जी को आधार बनाकर ही हुआ है-

1. पूर्व प्रेमचंदयुगीन उपन्यास
2. प्रेमचंदयुगीन उपन्यास
3. प्रेमचंदोत्तरयुगीन उपन्यास

2.3.1 पूर्व प्रेमचंदयुगीन उपन्यास

हिन्दी साहित्य में उपन्यास रचना की प्रेरणा बंगला साहित्य से ही प्राप्त हुई है। हिन्दी के प्रथम लक्षणयुक्त उपन्यास के बारे में विद्वानों के बीच काफी मतभेद है। डॉ. गोपालराय एवं माताप्रसाद आदि कुछ विद्वानों के अनुसार हिन्दी में उपन्यास शब्द का प्रथम प्रयोग सन् 1871 में विरचित एक अप्रकाशित रचना 'मनोहर उपन्यास' में हुआ था। हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जैसे कुछ आलोचकों ने श्रद्धाराम फुल्लौरी के 'भाग्यवती' (1873) को ही हिन्दी का पहला उपन्यास माना है। कुछ लोग 'देवरानी जेठानी की कहानी' (1870) 'वामा शिक्षक' (1872) आदि को हिन्दी के पहले उपन्यासों में गिनते हैं। लेकिन इन सब उपन्यासों में औपन्यासिक तत्वों का अभाव है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने लाला श्रीनिवासदास कृत 'परीक्षागुरु' को

पहला मौलिक उपन्यास माना है। इस समय के उपन्यासों में समाज के यथार्थ चित्रण से अधिक सुधारवादी प्रवृत्ति एवं उपदेशात्मकता ही देख सकते हैं।

पूर्व प्रेमचंदयुगीन उपन्यास साहित्य को मुख्यतः तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है- सामाजिक, एतिहासिक और घटनात्मक। समाज की विसंगतियों का विरोध करके आदर्श समाज का निर्माण ही सामाजिक उपन्यासों का लक्ष्य था। ये उपन्यास उपदेशात्मक होते हैं। इस श्रेणी में आनेवाले उपन्यास है- 'परीक्षागुरु', बालकृष्णभट्ट के 'नूतन ब्रह्मचारी', 'सौ अजान एक सुजान', ठाकुर जगमोहन सिंह का 'श्यामास्वप्न', राधाकृष्णदास का 'निस्सहाय हिन्दू' आदि।

पूर्व प्रेमचंद युग में ऐतिहासिक उपन्यास बहुत कम ही मिलते हैं। इस युग के ऐतिहासिक उपन्यासकार थे किशोरीलाल गोस्वामी। इनके 'तारा', 'कनक कुसुम', 'लवंगलता' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इस धारा के अन्य रचनाएँ हैं- गंगा प्रसाद गुप्त के 'नूरजहाँ', 'हम्मीर', 'वीर पत्नी', ब्रजनंदन सहाय का 'लाल चीन' और मिश्रबंधुओं का 'वीरमणि' आदि।

इसके साथ-साथ इस युग में तिलस्मी- ऐयारी, जासूसी उपन्यासों की परंपरा भी चलती थी। इन उपन्यासों का उद्देश्य पाठकों को मनोरंजन प्रदान करना मात्र था। ये केवल कल्पनात्मक थे, इनमें साहित्य का गुण बहुत कम थे। फिर भी ये उपन्यास जनता के बीच ऐसा धूम मचा था कि इसे पढ़ने के लिए लाखों लोग हिन्दी सीखने तक तैयार हुई थी। तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास लेखन में देवकी नंदन खत्री का नाम उल्लेखनीय हैं। उनके द्वारा लिखा गया उपन्यास हैं 'चंद्रकांता' और

'चन्द्रकान्ता संतती'। जासूसी उपन्यास लेखकों में गोपालराम गहमरी का नाम महत्वपूर्ण हैं।

इसके अतिरिक्त इस युग में बंगला और मराठी से अनूदित कई उपन्यास भी मिलते हैं। भारतेंदु जी के 'राजसिंह', 'पूर्ण प्रकाश चन्द्रप्रभा' आदि ऐसे अनूदित उपन्यास हैं।

पूर्व प्रेमचंदयुगीन उपन्यास निर्माणात्मक अवस्था के उपन्यास हैं। इनमें सृजनात्मक तत्वों का अभाव था। औपन्यासिक तत्वों की दृष्टि से भी उपन्यास अप्रभावी हैं। हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद जी का आगमन उपन्यास विधा को एक नया मोड प्रदान किया। डॉ. गणेशन के शब्दों में- "हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद के पदार्पण करने तक का हमारा उपन्यास साहित्य चितंन रहित, काल्पनिक, अवास्तविक, रहस्यमय तथा विवेकहीन रहा है।"[9] असाधारण प्रतिभा के धनी प्रेमचंद जी ने अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों से धीरे-धीरे अपने को मुक्त किया।

2.3.2 प्रेमचंदयुगीन उपन्यास

यह युग हिन्दी उपन्यास के सुवर्णकाल ही माना जाता है। प्रेमचंद जी इस काल के केन्द्रीय उपन्यासकार थे। इन्होंने अपने उपन्यासों को मनोरंजन के दायरे से निकालकर सामाजिक यथार्थ एवं व्यक्ति से जोडा। वे गाँधीजी के आदर्शों से बहुत प्रभावित थे। इसलिए ही उनकी रचनाओं में गाँधीवादी विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है। इन्होंने 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'वरदान', 'प्रतिज्ञा', 'रंगभूमि', 'निर्मला', 'कायाकल्प', 'गबन', 'कर्मभूमि', 'गोदान' और 'मंगलसूत्र' (अपूर्ण) आदि अपने उपन्यासों से हिन्दी साहित्य जगत को समृद्ध बना दिया। इनके उपन्यासों

में दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, वेश्याओं की समस्या, गाँवों की सुधार, साम्प्रदायिकता, शिक्षा के क्षेत्र में उन्नति, देशप्रेम, किसान- मज़दूर लोगों की समस्या आदि सामाजिक मुद्दों पर विचार किये हैं।

प्रेमचंद जी के बाद इस युग के दूसरा महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं जैनेन्द्र कुमार। इन्होंने अपने चारों ओर के गाँवों, नगरों एवं गलियों को उपन्यास का विषय वस्तु न चुनकर व्यक्ति जीवन में उठनेवाली मनोवैज्ञानिक समस्याओं को अपना विषय बनाया। ऐसे उपन्यास के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक उपन्यास नामक एक नवीन विधा का जन्म हुआ। इसी दिशा में आनेवाले जैनेंन्द्र जी के उपन्यास हैं- 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र' आदि।

इस युग में छायावादी कवियों ने भी उपन्यास लिखे थे। प्रसाद जी द्वारा लिखे गये उपन्यास हैं-'कंकाल', 'तितली','इरावती'। इनमें 'इरावती' अधूरा उपन्यास है।

प्रेमचंद युग के एक प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकार थे वृन्दावनलाल वर्मा। इन्होंने अपने उपन्यासों में ऐतिहासिक कथाओं के माध्यम से आधुनिक समस्याओं पर भी चर्चा की हैं। 'गढकुंडार', 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' आदि इनके प्रमुख उपन्यास हैं।

इस युग के अन्य उपन्यासकारों में विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचेन शर्मा उग्र, सियाराम शरण गुप्त आदि का नाम उल्लेखनीय हैं।

2.3.3 प्रेमचंदोत्तरयुगीन उपन्यास

प्रेमचंद जी ने अपने परवर्ती युग के उपन्यासों के बारे में कहा है कि- "यों कहना चहिए कि भावी उपन्यास जीवन चरित होगा, चाहे किसी बडे आदमी का या छोटे आदमी का....।"[10]

प्रेमचंदयुग के बाद उपन्यास के क्षेत्र में अनेक नई प्रवृत्तियाँ आने लगीं। इनमें प्रमुख थे-मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति और मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित प्रगतिवादी धारा। मनोवैज्ञानिक उपन्यास लेखन की शुरूआत जैनेंद्र जी द्वारा प्रेमचंद युग में ही हुई थी। इस प्रवृत्ति को अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी आदि उपन्यासकारों ने आगे बढाया। इलाचन्द्र जोशी के 'प्रेत और छाया', 'मुक्तिपथ', 'जहाज़ का पंछी' आदि इस धारा के अंतर्गत आनेवाले प्रमुख उपन्यास हैं। अज्ञेय जी के 'शेखरः एक जीवनी', 'नदी के द्वीप' आदि उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक भाव सशक्त रूप में देखा जा सकता है।

इस युग में प्रगतिवादी धारा के प्रमुख प्रवर्तक थे यशपाल। उनके 'दादा कॉमरेड', 'देश-द्रोही', 'मनुष्य के रूप', 'झूठा-सच' आदि महत्वपूर्ण प्रगतिवादी उपन्यास हैं। अन्य प्रगतिवादी लेखकों में राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, नागार्जुन आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

इसके अलावा इस युग में आँचलिक उपन्यास नामक एक विधा ज़ोर की चर्चा का विषय बन गया। इसके प्रवर्तक थे फणीश्वरनाथ रेणु। इनका 'मैला आँचल' हिन्दी का पहला आँचलिक उपन्यास है। आँचलिक उपन्यास किसी अंचल विशेष पर आधारित होते हैं। किसी अंचल विशेष के रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज़, पर्व-त्योहार, भाषा-बोली सभी बातों का चित्रण इन उपन्यासों में मिलते हैं। इस श्रेणी के अन्य उपन्यास हैं- नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', अमृतलाल नागर का 'बूँद और समुद्र', उदयशंकर भट्ट का 'सागर लहरें और मनुष्य' आदि।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उत्तर प्रेमचंद युग में उपन्यास साहित्य समृद्धि तथा विकास के शिखरों को छूने का प्रयत्न किया है।

हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा से समझ सकता है कि उपन्यास रचना के आरंभिक काल में उसका मूल उद्देश्य उपदेशात्मकता और मनोरंजन था। धीरे-धीरे काल के परिवर्तन के साथ-साथ उपन्यास रचना के उद्देश्य में भी परिवर्तन आने लगा। भारतेंदु युग से हम हिन्दी उपन्यासों के उद्देश्य में एक महत्वपूर्ण मोड़ देख सकते हैं। भारतेंदु युग सामाजिक जागरण का युग था। भारतेंदु का उद्देश्य अपनी रचनाओं द्वारा पाठकों को केवल मनोरंजन प्रदान करना नहीं था वरन् तत्कालीन सामाजिक तथा राष्ट्रीय व्यवस्थाओं के प्रति चेतना जगाना भी था। इसे भारतेंदु युग की विशिष्ट चिन्ता के रूप में माना जा सकता है। भारतेंदु जी ने 'पूर्ण प्रकाश चन्द्रप्रभा' नामक हिन्दी का पहला सामाजिक उपन्यास प्रस्तुत किया, जो मराठी उपन्यास का अनुवाद है, जिसके द्वारा ही उस समय के अन्य लेखकों का ध्यान उपन्यास के सामजिक उद्देश्यों की ओर आकर्षित किया गया। इसके उपरांत उपन्यास में समाज सुधार की भावना प्रमुख विषय बन गयी।

इसके बाद उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद जी का आगमन हुआ और यह उपन्यास विधा को एक नया मोड प्रदान किया। प्रेमचंद युग का आविर्भाव तब हुआ जब सामंतवाद का अंत और पूँजीवाद का उदय हो रहा था। तत्कालीन समाज में अनेक प्रकार की समस्याएँ विद्यमान थी जिन्हें प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों का विषय बनाया। ऐसे उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ और व्यक्ति का चित्रण आने लगे। आज़ादी के बाद के उपन्यासों में स्वाधीन भारत की विकट परिस्थितियाँ ही देख सकते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व संपूर्ण भारतीय जनता के सामने सिर्फ एक ही लक्ष्य था-स्वतंत्रता प्राप्ति। अपनी सारी समस्याओं के हल के रूप में वे देश की स्वतंत्रता को ही देखते थे। लेकिन आज़ादी के बाद जनता का सपना साकार नहीं हो सका। उनकी सारी आशाएँ निराशा में बदल गयीं। आज़ादी से सिर्फ सत्ता ही बदल गई है, परिस्थितियों में कोई बदलाव नहीं आया। शासक बदल गये लेकिन शोषित वैसे के वैसे ही रह गये। शासक वर्ग दायित्व को भूलकर व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ती के लिए प्रयत्नरत रहे। बढती जनसंख्या तथा बेरोज़गारी ने नया संकट पैदा किया। जातिवाद, स्त्रीयों पर अत्याचार, मूल्यहीनता, भ्रष्टाचार, सांप्रदायिक विद्वेष दलित शोषण, प्रकृति पर अत्याचार आदि रोज़ नई- नई समस्याएँ उभरने लगीं। इन सबका प्रभाव साहित्य पर भी पडा। साथ ही साथ विदेशों में होनेवाले विभिन्न प्रकार के आन्दोलनों का प्रभाव भी भारतीय जनमानस पर पडा है, उनका भी चित्रण साहित्य में हम देख सकते हैं। इस प्रकार सन् 1960 के बाद के जो साहित्य है वह अपने पूर्ववर्ती काल से बिलकुल अलग है। इस प्रकार परिवर्तित साहित्य ही समकालीन साहित्य नाम से जानने लगे।

आज के उपन्यासों में मानव जीवन के विभिन्न परिवेशों तथा सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि सभी समस्याएँ प्रस्तुत की जाती हैं। इन सारी समस्याओं या विषमताओं का आधार समसामयिक सामाजिक परिस्थितियाँ ही है। लेखक अपना रचनाकर्म चाहे वह सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक किसी भी प्रकार के हो कोई न कोई विशिष्ट उद्देश्य से किया जाता है। इसलिए ही मानव जीवन की हर पहलू को हम उपन्यास में देख सकते हैं। इसी दृष्टि से देखें तो हम कह सकते हैं कि उपन्यास एक समर्थ साहित्यिक विधा है। किसी उपन्यास में

उठायी गयी समस्याएँ और उनके प्रति लेखक का दृष्टिकोण जितने गहन स्तर पर सत्य का स्पर्श करेंगे उस कृति की सफलता भी उतनी अधिक होंगी।

2.4 समकालीन हिन्दी उपन्यास

समकालीन साहित्य समकालीन जीवन यथार्थ को उसकी पूरी गहराई एवं समग्रता के साथ प्रस्तुत करते हैं। 'समकालीन' शब्द का अर्थ है एक ही समय में घटित होनेवाली घटनाएँ तथा अनुभूत होनेवाली अनुभूतियाँ। हिन्दी में समकालीन, समसामयिक दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। अंग्रेज़ी में समकालीन शब्द का पर्याय है Contemporary, जिसका अर्थ है अपने समय का। अर्थात् जिस समय की चर्चा हम करते हैं उस समय के सब के सब समकालीन या समसामयिक है। हिन्दी में समकालीन शब्द सम+कालीन के योग से बना है। इनमें 'सम' का अर्थ है प्रायः एक ही या एक साथ और 'कालीन' का अर्थ है काल या समय में। अर्थात् समकालीन शब्द एक ही समय में रहने या होनेवाले रचनाकारों का बोध कराता है, जो रचना किसी कालखंड या समय विशेष में व्याप्त स्थितियों, विसंगतियों एवं समस्याओं को प्रस्तुत करता है और उन समस्याओं से मुक्ति की कामना करता है वही रचना समकालीन माना जाता है।

2.5 समकालीनता

समकालीनता शब्द का अर्थ है एक ही समय में रहना या होना। लेकिन एक ही काल में पैदा होना और साथ-साथ साहित्य सृजन करना समकालीनता की शर्त नहीं है। समकालीनता अपनी काल के केन्द्रीय महत्व रखनेवाली समस्याओं को अच्छी तरह समझने से ही उत्पन्न होती है। स्वचेतना और संवेदनशीलता दोनों उसका

अनिवार्य शर्त हैं। क्योंकि किसी भी व्यक्ति को अपने समय की स्थिति को जानने-समझने के लिए स्वचेतना और संवेदनशीलता मदद करती हैं। वैसे साहित्यकार अपने युग की विसंगतियों पर अपना विद्रोह प्रकट करते हैं और उनसे मुक्ति की कामना करता है। समकालीन रचनाओं में युगबोध अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है। समकालीनता मानव को एक सुन्दर भविष्य के प्रति जागरूक करती है।

2.5.1 समकालीनता की परिभाषा

अनेक विद्वानों द्वारा 'समकालीनता' की विभिन्न परिभाषाएँ प्रस्तुत की गयी हैं-

- डॉ. जितेन्द्र वत्स के अनुसार- "समकालीनता एक काल में साथ-साथ जीना नहीं है। समकालीनता अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों में भी केन्द्रीय महत्व रखनेवाली समस्याओं की समझ से उत्पन्न होती है।"[11]

- विश्वंभरनाथ उपाध्याय का मत है- "समकालीनता वस्तुतः स्थितियों, व्यक्तियों और शक्तियों के क्रूर विश्लेषण में ही है। सत्य, दंभ, षड्यंत्र, सनक और लोभ तथा भोगविलास के ऊपर जो लोग और तबके शांति, जनतंत्र, परिष्कृति, प्रयोग, आधुनिकता तथा अन्य मुखौटे लगाते हैं उन्हें कठोर कचोटक स्वरों में आम आदमी की बोली में नोंच फेंकना ही समकालीनता है।"[12]

- डॉ. अमरसिंह वधान लिखते हैं-"स्थितियों और उनकी उत्तरदायी शक्तियों की वास्तविकता का बोध समकालीन बोध की आवश्यक शर्तें है।"[13]

- डॉ. बलदेव वंशी के अनुसार- "समकालीनता वह चेतना है जो सामयिक संदर्भों, दबावों और तकाजों के तहत विशिष्ट स्वरूप धारण करती है। इसमें कोई शक नहीं कि समकालीनता अपने देश-काल के विशिष्ट संदर्भों से ही स्वरूप लेती है उसके बिना उसकी स्थिति संभव नहीं है।"[14]

इन परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि समकालीनता अपने काल की विसंगतियों एवं विद्रूपताओं के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। अपनी समय की समस्याओं के साथ मुठभेड करते हुए रचनाकार समकालीनता को स्वयं अर्जित करता है। रचनाकार सूक्ष्मद्रष्टा होते हैं। साधारण लोगों की अपेक्षा वे अधिक संवेदनशील होते हैं। समाज में फैली हुई विसंगतियों एवं उनमें फँसकर तडपनेवाले आम आदमी को सबसे पहले वे ही समझते हैं। इन्हें वे अपनी क्षमता द्वारा साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करके इन सामाजिक समस्याओं के प्रति रचनाकार अपना विद्रोह प्रकट करते हैं। रचनाकार के सामने वर्तमान की जटिलताएँ हैं, पीछे अतीत के अनुभव होते हैं और आगे एक सुंदर भविष्य की आकांक्षा है। इनसे उत्पन्न एक दृष्टिकोण ही समकालीनता है।

2.6 आधुनिकता

समकालीनता और आधुनिकता एक नहीं है। समकालीनता अपने समय के प्रति जागरूकता है, जो व्यक्ति और युग के संबंधों को व्यक्त करता है। समाज के परिवर्तनों के साथ समकालीनता भी परिवर्तित होती है। अतः परिवर्तन की सही दिशा के साथ अग्रसर होते रहना ही समकालीनता का स्वभाव है।

लेकिन आधुनिकता संपूर्ण समाज की नई गतिविधियों की प्रक्रिया होती है। इन नई गतिविधियों से नये-नये सामाजिक मूल्यों का निर्माण होते हैं, जिन्हें आधुनिक जीवन मूल्य कहा जाता है।

आधुनिकता प्राचीन, एवं मध्यकालीन बोध से भिन्न एक नई मानसिकता है, जिसमें प्राचीन एवं मध्ययुग के संस्कृति, परंपरा, और इतिहास आदि का पुनर्मूल्यांकन होता है, और नये मूल्यों की स्वीकृति होती है। आधुनिकता को वर्तमान से बाँधा हुआ भी नहीं कह सकता और कटा हुआ भी। क्योंकि वर्तमान में जीवित सभी व्यक्ति आधुनिक नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और आधुनिकताबोध' नामक पुस्तक में कहा गया है कि रत्नाकर और गुरुदत्त दोनों आधुनिक युग के कलाकार होते हुए भी आधुनिक नहीं है। लेकिन महात्मा बुद्ध तथा कबीरदास आधुनिक युग के न होते हुए भी आधुनिक थे। इसलिए निसंदेह हम कह सकते हैं कि आधुनिकता एक बदली हुई मानसिकता है।

अन्य कई आन्दोलनों के समान आधुनिकता की शुरूआत भी पाश्चात्य देशों में ही (फ्रांस) हुआ। कला और साहित्य के क्षेत्र में यह एक नया आन्दोलन था। बीसवीं शताब्दी का यूरोप, महायुद्धों एवं उससे उत्पन्न समस्याओं के बीच में था। वहाँ के लोग इन समस्याओं के बीच फँसकर अपने जीवन को निरर्थक एवं विसंगत अनुभव करते थे। सभी प्रकार के मूल्यों का विघटन हुआ। इसका प्रभाव तत्कालीन रचनाओं पर भी पडा था। वैसे पाश्चात्य जगत में साहित्य के क्षेत्र में आधुनिकता का जन्म हुआ।

भारतीय साहित्य में भी आधुनिकता के प्रवेश की अपनी एक अलग परिस्थिति होती है। भारत में इसके मुख्यतः दो कारण हैं। एक है विज्ञान की प्रगति एवं उससे

उत्पन्न बौद्धिक दृष्टिकोण और दूसरा है स्वाधीनोत्तर भारत की विकट परिस्थितियाँ। स्वाधीनोत्तर भारत में आम जनता की सारी आकांक्षाएँ उलट पड गयीं। उनको अपना भविष्य अंधकारमय महसूस हुआ। वैसे समाज में निराशा और विसंगति फैल गयीं। इसका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर भी देख सकते हैं। वैसे भारतीय साहित्य में भी आधुनिकता की शुरूआत हुई।

आधुनिकता जीवन के प्रति यथार्थ दृष्टिकोण है। इसके माध्यम से मानव अपने वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन में अन्तर्निहित मूल्यों की खोज करता है। वरन् आधुनिकता का मतलब अर्द्धनग्न वस्त्र पहनकर सडक पर चलना नहीं है। आधुनिकता कोई बाह्य सजावट या बनावट का उपकरण नहीं है, वह व्यक्ति के भीतर की चीज़ है। आधुनिकता वर्तमान को सजग रूप से भोगने, नये संदर्भ में देखने और जीने की क्षमता है।

2.7 समकालीन उपन्यास

स्वाधीनोत्तर भारत की स्थिति स्वाधीनतापूर्व भारत से ज़्यादा कुछ भिन्न नहीं थीं। सिर्फ सत्ता एवं शासक ही बदल गये, आम जनता की स्थिति में कोई खास बदलाव नहीं आया था। इसके अलावा जातिवाद, सांप्रदायिकता, स्त्रीयों एवं दलितों पर अत्याचार, प्राकृतिक शोषण आदि कई समस्याएँ भी उभर आने लगी थीं। 1960 के बाद भारतीय जनमानस की आकांक्षाओं को तोडनेवाली कई घटनाएँ भी हुईं। सन् 1962 में भारत-चीन मित्रता को समाप्त करके भारत-चीन युद्ध हुआ। 1964 में जवहरलाल नेहरू की मृत्यु हुई। इसी वर्ष में कम्यूनिस्ट पार्टी का विभाजन हुआ। 1965 और 1971 में भारत-पाकिस्तान युद्ध हुआ, जो भारत की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पडा और गरीबी का कारण बन गया। 1967 में बिहार, बंगाल, आंध्राप्रदेश

एवं असम में नक्सलवादी आन्दोलन हुआ। 1975 में आपातकाल की घोषणा की। 1984 में भोपाल गैस त्रासदी हुई। इस प्रकार 1960 के बाद देश एवं समाज में हुए इन परिवर्तनों का प्रभाव साहित्य पर भी पडा। वैसे परिवेश एवं परिस्थितियों के कारण साहित्य का लक्ष्य रस निष्पत्ति से हटकर बौद्धिक चिंतन बन गया। लघु मानव साहित्य के केन्द्र में आ गये। रचनाकार तत्कालीन जटिलतापूर्ण परिस्थितियों के प्रति पूर्णतः विद्रोही बन गये। 1960 के बाद के इस परिवर्तित साहित्य 'समकालीन साहित्य' नाम से अभिहित किये जाने लगे। समकालीन उपन्यासों में भी मानव के इस बदले हुए जीवन प्रमुख विषय बनकर आया है।

इस प्रकार काल और परिवेश के परिवर्तनों के साथ साहित्य की प्रवृत्तियों में भी बदलाव आने लगा। साहित्यकार भी अपने समय के इस परिवर्तित परिवेश को अपनी लेखनी द्वारा रेखांकित करते रहे। इस प्रकार परिवेश में जब सामाजिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक, तकनीकी आदि स्थितियाँ बदलने लगीं तभी साहित्य में भी उनकी छवि देखने लगीं। साहित्य की विधाओं में 'उपन्यास' तत्कालीन समस्याओं को अधिक तीव्रता से प्रस्तुत करने में सफल होते रहे। 1960 से लेकर इक्कीसवीं शती में आते ही उपन्यास के कथ्य की विस्तृति आश्चर्यचकित करती है। आज जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जिस पर उपन्यास रचना न हुई हो। इसका सबसे बडा कारण यह भी है कि उपन्यास लिखनेवालों में समाज के हर क्षेत्र के लोग आ रहे हैं। अर्थात् उनमें डॉक्टर, पत्रकार, अध्यापक, चित्रकार, शासक, आदि कई क्षेत्र से लोग आज उपन्यास रचना में संलग्न हैं। वैसे आज के उपन्यासों में समाज के कई ज्वलंत समस्याओं एवं प्रश्नों पर विमर्श रचा जाता है। उपन्यास के कथ्य के सभी पक्षों पर बात करना संभव नहीं है। फिर भी यहाँ गाँवों के बदलते रूप, मध्यवर्ग, शहरीकरण,

स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, पारिस्थितिक विमर्श, वृद्ध विमर्श, मीडिया विमर्श आदि कई मुद्दों के बारे में संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया गया है।

2.7.1 समकालीन उपन्यास : प्रवृत्तियाँ

2.7.1.1 बदलते ग्रामीण जीवन का चित्रण

हमारे देश की आबादी के लगभग आधे से ज़्यादा प्रतिशत लोग गाँवों में ही रहते हैं, जो कृषि, पशुपालन, जंगल आदि के सहारे अपना जीवनयापन करते हैं। आर्थिक दृष्टि से वे गरीब हैं और शिक्षा तथा अन्य सुख-सुविधाओं से वंचित हैं। आज़ादी के पूर्व इनकी स्थिति अत्यंत शोचनीय थी। देश स्वतंत्र होने के बाद भी इनके जीवन में कोई ख़ास बदलाव नहीं आया। क्योंकि पुराने ज़मींदार और भूमिपतियाँ राजनीति में शामिल रहकर इनका शोषण करते थे। धीरे-धीरे ये लोग अपने अधिकारों एवं न्याय के लिए संघर्ष करने लगे। फलस्वरूप उनके जीवन में परिवर्तन आने लगा। सदियों से स्थापित सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने में इनका संघर्ष सहायक बन गया। साथ-साथ विज्ञान के विकास के कारण भी इनके विचारों में, आपसी संबंधों में, रहन-सहन में परिवर्तन होते रहे। ग्रामीण दलित एवं स्त्री अपने प्रति होनेवाले अत्याचारों के विरुद्ध लड़ने लगे। ग्रामीण परिवार की नारी शोषण से त्रस्त है। निर्धनता, अशिक्षा, दांपत्य जीवन का विघटन, प्रेम एवं विवाह, अविवाहित जीवन, दहेज प्रथा, अवैध संतान आदि ग्रामीण स्त्री की समस्याएँ हैं। आज ग्रामीण स्त्री शिक्षा एवं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होती है। इसलिए ही वह उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए गाँव से बाहर भी जाने लगी है।

आज ग्रामीण लोगों का दृष्टिकोण भौतिकवादी होने लगे हैं और उनके जीवन मूल्यों में भी परिवर्तन हो रहे हैं। उनमें स्वार्थपरता, दिखावे का प्रेम, व्यक्तिवादी

भावना, नये-पुराने संस्कारों का द्वंद्व और शहरी संस्कृति का प्रभाव आदि परिलक्षित होते हैं। वे अपने संबंधों एवं परंपराओं से अलग होकर आत्म केन्द्रित बन गये हैं।

अब ग्रामीणों में पहले की अपेक्षा शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण बदल गया है। वे शिक्षा के महत्व को समझने लगे हैं। आज वे अपने बच्चों को शहर भेजकर पढाते हैं। ग्रामीण नारी भी शोषण से मुक्ति प्राप्त करने के लिए और अपने व्यक्तित्व को सही रूप में विकसित करने के लिए शिक्षा ही उचित मार्ग पहचाना और उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए शहर जाकर पढने लगी।

सरकार भी गाँवों की प्रगति लक्ष्य करके कई योजनाएँ बनायी हैं। भारतीय गाँव की इस यथार्थ को तथा बदलाव को तत्कालीन रचनाकार ने अपनी रचना के विषय के रूप में स्वीकार किया है। नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' (1948) से लेकर भगवानदास मोरवाल के 'काला पहाड' (1999) तक के अनेक उपन्यास इसका उदाहरण हैं। इन उपन्यासों में ग्रामीणों का दयनीय जीवन, ज़मीन्दारों एवं भूमिपतियों द्वारा उनका शोषण, निर्धनता, अशिक्षा, बेरोज़गारी, अंधविश्वास, जातिप्रथा, पारिवारिक कलह, स्त्रीयों की दुर्दशा, आदि के साथ-साथ ग्रामीण जीवन में आये बदलाव, अपने अधिकारों एवं सशक्तीकरण की लडाई में आगे बढनेवाली स्त्री एवं दलित वर्ग, गाँवों में विज्ञान एवं औद्योगीकरण का प्रभाव, विकास के नाम पर गाँवों का विनाश करनेवाली पूँजीवादी संस्कृति, गाँवों में मीडिया, सरकारी योजनाओं का प्रभाव आदि कई मुद्दों का चित्रण किया गया है। मन्नू भण्डारी का 'महाभोज', ज्योतिष जोशी का 'सोन बरसा', मैत्रेयी पुष्पा का 'चाक', रामदरश मिश्र का 'सूखता तालाब', वीरेन्द्र जैन के 'डूब', 'पार', संजीव का 'सावधान ! नीचे आग है' आदि कई उपन्यास इसका उदाहरण हैं।

2.7.1.2 मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण

उपन्यास और मध्यवर्ग का घनिष्ठ संबंध है। इसलिए उपन्यास को मध्यवर्ग का महाकाव्य भी माना जाता है।[15] समाज के उच्च तथा निम्न वर्ग के बीच का जो वर्ग है उन्हें मध्यवर्ग कहा जाता है। अर्थात् मध्यवर्ग से मतलब समाज के उन लोगों से होता है जो न अमीर हो और न गरीब।

मध्ययुग के अंतिम चरण में यूरोप में जो नवजागरण हुआ उसके फलस्वरूप घटित हुए विभिन्न आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों से एक नये सामजिक वर्ग का उदय हुआ वह है मध्यवर्ग। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में केवल दो वर्ग ही रहते थे- उच्चवर्ग और निम्न वर्ग। जीवन की सुख्र-सुविधाओं एवं ख्रुशियों से वंचित निम्न वर्ग सदा उच्चवर्ग के शोषण के शिकार थे। सारी सुख्र-सुविधाओं से भरे विलासपूर्ण जीवन बितानेवाले थे उच्चवर्ग। उन्नीसवीं शताब्दी में देश में एक ओर अंग्रेज़ों का शासन मज़बूत हो गया तो दूसरी ओर शिक्षा का प्रसार तथा औद्योगीकरण का विकास हुआ। जिसके साथ ही भारत में मध्यवर्ग का उदय हुआ। यह नवीन मध्यवर्ग आगे चलकर संपूर्ण समाज पर प्रभाव डालने लगे।

मध्यवर्ग का व्यक्ति महत्वाकांक्षी होता है। वह आर्थिक क्षमता, सामाजिक प्रतिष्ठा, उपभोग का दर आदि में अपने से ऊपरवालों को आदर्श मानता है। किंतु उच्चवर्ग के बराबर न होने के कारण वह हमेशा उत्कण्ठित रहता है। मध्यवर्ग के लोग अपनी वर्तमान परिस्थितियों तथा सफलताओं से कभी-भी संतुष्ट नहीं हैं। आर्थिक क्षमता, सुख्र-सुविधाएँ, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि कार्यों में सफलता प्राप्त करके ऊपर उठने की चिंता में वे हमेशा अशांत रहते हैं। अपनी अगली पीढी को अपने से अच्छे सुख्रमय जीवन प्रदान करने की अभिलाषा उनमें होती है इसलिए बच्चों को उच्चतर

शिक्षा दिलाने के लिए वे प्रयत्न करते हैं। अधिकांश मध्यवर्ग स्वार्थी और वैयक्तिक सफलताओं की तुरंत प्रप्ति के मोही होते हैं। इसलिए ही प्रतिस्पर्धा मनोभाव इनमें तीव्र होते हैं। इसी कारण से ही भ्रष्टाचार, अनैतिकता, धोखेबाजी आदि इनके जीवन में देख सकते हैं। आत्म सम्मान की भावना, अहंबोध भी मध्यवर्गीय लोगों के मनोविज्ञान की विशेषताएँ हैं। मध्यवर्गीय व्यक्ति का मन सदैव संघर्षपूर्ण और अशांत होते हैं। ऐसे मध्यवर्ग तत्कालीन साहित्य का भी प्रमुख हिस्सा बन गये हैं खासकर उपन्यास साहित्य में। उपन्यास में भारतीय मध्यवर्ग की सारी खूबियों व कमज़ोरियों को सही रूप में देख सकते हैं। हमारे देश के अधिकांश मध्यमर्ग नगरों और कस्बों में ही रहते हैं। इसलिए नगरों और कस्बों को आधार बनाकर लिखनेवाले उपन्यासों में मध्यवर्ग किसी न किसी रूप में ज़रूर आ जाते हैं।

समकालीन उपन्यास में मध्यवर्ग की आर्थिक समस्याएँ, बेरोज़गारी, जाति व्यवस्था, पुरानी पीढी से नयी पीढी का संघर्ष, निराशा, असफल प्रेम, दांपत्य जीवन की समस्याएँ, अलगाव, अकेलापन आदि मध्यवर्गीय जीवन की विभिन्न समस्याओं का अंकन देख सकते हैं। इस प्रकार नवें दशक तक के हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग केन्द्र के रूप में आ गये हैं। लेकिन उसके बाद के उपन्यासों में मध्यवर्ग आते हैं, पर मुख्य कथ्य के रूप में नहीं।

मध्यवर्गीय जीवन को आधार बनाकर लिखनेवाले उपन्यासकारों में प्रमुख हैं- अमृतलाल नागर, नरेश मेहता, राजेन्द्रयादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश, नासिरा शर्मा, कृष्णा सोबती, मेहरुन्नीसा परवेज़ आदि।

2.7.1.3 शहरीकरण का चित्रण

आज़ादी के बाद हमारे देश में आर्थिक और सामाजिक विकास बहुत तेज़ी से हुआ। इसके फलस्वरूप नगरों एवं महानगरों का भी विकास हुआ। इन नगरों एवं महानगरों को आधार बनाकर लिखे गये कई हिन्दी उपन्यास मिलते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि हमारे अधिकांश लेखक नगरों और छोटे शहरों में ही रहते हैं। उनके भोगे हुए यथार्थ एवं नगरीय जीवन ही उपन्यासों का विषय बना है। उन उपन्यासों में दिल्ली, मुंबाई, कलकता ये तीन महा नगर ही प्रमुख रूप में देख सकते हैं। मानवीय मूल्यों की मृत्यु, भ्रष्टाचार, मनुष्यत्वहीनता, स्वार्थपरता, पैसे की लालच में डूबते लोग, स्त्रियों पर अत्याचार, पर्यावरण विनाश, व्यक्ति की समस्याएँ, अकेलापन, निराशा आदि कई महानगरीय समस्याओं का चित्रण इन उपन्यासों में व्यक्त हुआ है। आज के महानगर शराब और सेक्स में डूबे जनता, ठेकेदारों, दलालों, देह-व्यापार करनेवाली स्त्रियों, फिल्मी दुनिया के सफल और असफल लोग आदि से भरा है। वे इन उपन्यासों के पात्र बनकर हमारे सामने आते हैं।

महानगरीय परिवेश को आधार बनाकर लिखे गये कुछ हिन्दी उपन्यास हैं- कृष्ण सोबती के 'दिलोदानिश' एवं 'समय सरगम', जगदीश चन्द्र के 'मुट्ठी भर काँकर' और 'घासगोदाम', चित्रा मुद्गल का 'एक ज़मीन अपनी' आदि।

2.7.1.4 कला, साहित्य और पत्रकारिता

समकालीन उपन्यासों में कला, साहित्य और पत्रकारिता की जगत की वास्तविकताओं को प्रस्तुत करनेवाले अनेक उपन्यास मिलते हैं। सबसे पहले देवेन्द्र सत्यार्थी ने कला जगत् एवं कलाकार की समस्याओं को आधार बनाकर उपन्यास की

रचना की। उनके द्वारा लिखे गये उपन्यास 'कठपुतली' में नाटक और रगमंच ही प्रमुख विषय बना है। उनके 'दूधगाछ' में संगीत और संगीतकार की कथा है और 'कथा कहो उर्वशी' मूर्तीकार के जीवन पर आधारित है।

आधुनिक युग में कला का व्यावसायीकरण हो गया है। कलाकार कला को बाज़ार की चीज़ मानकर अपनी सुख-सुविधाओं के लिए उसे बेचता है। लेकिन कुछ कलाकार ऐसे भी हैं कि वे अभाव की ज़िन्दगी जीते हुए भी कला के प्रति पूर्णतः समर्पित हैं।

कला के क्षेत्र में नारी की जिन्दगी भी उपन्यास का मुख्य विषय है। मोहन राकेश का 'अंधेरे बन्द कमरा' इसका उदाहरण है। बदीउज्जमा का 'एक चूहे की मौत' (1971), रमेश उपाध्याय का 'हरे फूल की ख़ुशबू' (1991), सुरेन्द्र वर्मा का 'मुझे चाँद चाहिए' (1993), प्रकाश मनु का 'पापा के जाने के बाद' (1998) आदि कला जगत को आधार बनाकर लिखे गये उपन्यास हैं।

हिन्दी में पत्रकारिता जगत् की पृष्ठभूमि पर भी अनेक उपन्यास रचे गये हैं। पत्रकारों की समस्यापूर्ण ज़िन्दगी, तत्कालीन सामाजिक परिवेश से उनका संघर्ष, निराशा, मूल्यहीनता, नये पत्रकारों का शोषण, भ्रष्ट पत्रकारों की स्वार्थता आदि इन उपन्यासों में प्रस्तुत किये हैं। अमृतलाल नागर का 'पीढियाँ', धर्मेन्द्र गुप्त का 'नगर पुत्र हँसता है', शैलेश मटियानी का 'आकाश कितना अनंत है', प्रकाश मनु का 'यह जो दिल्ली है' आदि इसका उदाहरण हैं।

अमृतलाल नागर के 'बूँद और समुद्र' नामक उपन्यास में ही पहली बार लेखकों की निजी ज़िन्दगी का चित्रण हुआ है। लेखकीय जीवन को आधार बनाकर लिखनेवाले उपन्यासों में लेखकों की अन्तरूनी ज़िन्दगी, बाह्य परिवेश से उनका संघर्ष, निराशा, लेखिकाओं की समस्याएँ आदि का चित्रण मिलते हैं। मृदुला गर्ग का 'चितकोबरा', निर्मल वर्मा का 'एक चिथडा सुख', पंकज विष्ट का 'लेकिन दरवाज़ा' आदि कई उपन्यास इसका उदाहरण हैं।

इस प्रकार कला, साहित्य और पत्रकारिता को आधार बनाकर हिन्दी में कई उपन्यास लिखे गये हैं।

2.7.1.5 स्त्री विमर्श

विश्व प्रसिद्ध फ्रेंच लेखिका सीमोन द बुआ के 'द सेकेन्ड सेक्स' नामक पुस्तक के माध्यम से ही पाश्चान्य जगत् में स्त्री विमर्श की शुरूआत हुई। पाश्चात्य जगत में शुरू हुए इस आन्दोलन का प्रभाव हमारे देश पर भी पडा। हिन्दी साहित्य भी इसकी परिधि से बाहर नहीं है। दुनिया की आधी आबादी के अस्तित्व से जुडे हुए आन्दोलन होने के कारण वर्तमान समय में इसका महत्व बढ गया है।

पुरुष सत्तात्मक समाज की गुलामी से पीडित एवं शोषित स्त्री अपनी मुक्ति एवं स्वतंत्रता के लिए आवाज़ उठाने लगी। फलस्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी से स्त्री की स्थिति में परिवर्तन प्रकट होने लगे और उसे यह अनुभव होने लगती है कि वह किसी भी दृष्टि से पुरुषों से कम नहीं है। स्त्री विमर्श वास्तव में स्त्री का पुरुष के विरूद्ध युद्ध नहीं है, बलिक स्त्री को मानवीयता के नियमों की कसौटी पर अपने व्यक्तित्व को खोजना ही स्त्री विमर्श या नारीवाद है। असल में यह एक विचारधारा है जिसने

सदियों से चली आ रही पितृसत्ता को चुनौती दिया और नारी की मुक्ति का मार्ग खोल दिया, जो पुरुष आधिपत्य और पुरुष दमन के खिलाफ आवाज़ उठाती है। रोहिणी अग्रवाल की मान्यता है- "स्त्री विमर्श एक दृष्टि है, जो परंपरा के दबाव, संस्कार एवं पूर्वाग्रह से मुक्त होकर व्यक्ति की पहचान लिंग में नहीं, मनुष्य में प्रस्थापित करने की ऊर्ध्वमुखी चेतना देती है। नारी को स्वयं की पहचान कराना नारी विमर्श है। स्त्री पैदा नहीं होती बनायी जाती है और बनानेवाला होता है- परिवार, शिक्षा प्रणाली, कानून, धर्म, कलाएँ मीडिया।"[16]

इस नारीवादी आन्दोलन का प्रभाव हिन्दी साहित्य में भी हम देख सकते हैं। स्त्री विमर्श को आधार बनाकर अनेक उपन्यास हिन्दी में लिखे गये हैं। इन उपन्यासों में पुरुष द्वारा स्त्री पर अत्याचार, शोषण, उत्पीडन, स्त्री की स्थिति में आये बदलाव, स्त्री शिक्षा आदि का चित्रण गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में सभी स्तर की स्त्री, चाहे वह गरीब, मज़दूर, किसान, निम्न वर्ग, वेश्या, आदिवासी, उच्चवर्ग किसी भी प्रकार के हो, मुख्य पात्र बन गयी हैं। उच्च वर्ग की सुशिक्षित एवं नौकरीपेशा स्त्री की समस्याएँ भी उपन्यास में चित्रित की हैं। स्त्री सुशिक्षित और आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बनने पर भी वे पुरुष के अत्याचारों के शिकार बनती हैं। पुरुष केवल उसे अपनी भोग की वस्तु समझते हैं। पति-पत्नी की समस्याओं को आधार बनाकर लिखे गये कई हिन्दी उपन्यास भी हैं।

समाज में स्त्री की स्थिति को समझकर अनेक पुरुष लेखक उस पर लिखना शुरू किये हैं। स्वयं महिलाओं ने भी इस कथ्य पर लिखना अपना कर्तव्य माना है।

स्त्री विमर्श पर लिखनेवालों में प्रमुख हैं- नासिरा शर्मा, राजी सेठ, चन्द्रकान्ता, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, सुरेन्द्र वर्मा, विष्णु प्रभाकर, चित्रा मुद्गल, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, मेहरुन्नीसा परवेज़ आदि।

2.7.1.6 दलित विमर्श

मराठी भाषा एवं साहित्य में सन् 1960 ई. के आस पास दलित साहित्य का उदय हुआ था। सन् 1980 ई. से हिन्दी साहित्य में भी इसका प्रभाव देखा जा सकता है। बाबा अंबेडकर के चिन्तन से प्रेरणा पाकर ही दलित साहित्य का उद्भव हुआ। बाबा अंबेडकर वर्ण व्यवस्था के विरोधी थे।

दलित शब्द का अर्थ है दबाया हुआ। समाज में बहुत दिनों से सताये हुए जो वर्ग हैं उन्हें दलित कहते हैं। लेकिन परंपरागत वर्ण व्यवस्था में शूद्र और पंचम वर्ण के अंतर्गत आनेवाले समुदाय को ही आज दलित माना जाता है। इनमें आदिवासी वर्ग भी शमिल है।

मनुष्य के रूप में जीने का अधिकार जिनसे छीन लिया गया है उनके दुःख दर्द को पहचानना और उसको अभिव्यक्ति देना दलित साहित्य का मकसद है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासकारों ने हाशिए पर पडे इन लोगों को मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया और वर्ण व्यवस्था, जातिगत भेदभाव, छुआछूत आदि का कटु विरोध किया।

आजादी के बाद भैरवप्रसाद गुप्त और नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में जमींदारों द्वारा दलित वर्ग के शोषण का चित्रण गहरी सहानुभूति के साथ प्रस्तुत किया है। इसके अलावा फणीश्वरनाथ रेणु, उदयशंकर भट्ट आदि अनेक

उपन्यासकारों ने गाँवों में रहनेवाले दलित वर्ग की निर्धनता, अंधविश्वास, निरक्षरता आदि का अंकन अपनी उपन्यासों में किया है। रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ' नामक उपन्यास में ही सबसे पहले एक पूरी दलित जाति के जीवन यथार्थ को चित्रित किया था। शैलेश मटियानी के 'कोई अजनबी नहीं' में दिल्ली की गन्दी बस्तियों में नारकीय जीवन बितानेवाले दलितों का चित्रण किया गया है। इसके अलावा गिरिराज किशोर के 'यथाप्रस्तावित', 'परिशिष्ट', रमेशचन्द्र शाह का 'किस्सा गुलाम', जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर', मदन दीक्षित का 'मोरी की ईंट', तेजिन्दर का 'उस शहर तक' आदि कई दलित उपन्यास हिन्दी में प्रकाशित हुए हैं।

दलित साहित्य के संबंध में आज उठायी गयीं एक समस्या है कि केवल दलित द्वारा लिखे जानेवाले साहित्य ही दलित साहित्य है? दलित वर्ग के कुछ लेखकों का मानना है कि दलितों द्वारा दलितों के लिए लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है, जो स्वानुभूति का साहित्य है। क्योंकि दलित समाज अपने नारकीय जीवन का भोक्ता है, गैर दलित के लिए वह अपने अनुभव का विषय नहीं है। लेकिन गैर दलित लेखकों का मानना है कि जो लेखक दलितों के विषय में सहानुभूति पूर्वक लिखते हैं वह भी दलित साहित्य कहा जा सकता है।

हिन्दी साहित्य के दलित लेखकों में प्रमुख हैं- ओमप्रकाश वाल्मीकी, मोहनदास नैमिशराय, कंवल भारती, डॉ. धर्मवीर आदि। गैर दलित लेखकों में नामवरसिहं, मानेजर पाण्डेय, राजेन्द्र यादव, निर्मला जैन आदि का नाम उल्लेखनीय हैं। दलित उपन्यासों में प्रमुख हैं- जगदम्बा प्रसाद दीक्षित का 'मुर्दाघर' (1974), जगदीश चन्द्र के 'धरती घन न अपना' (1972), 'नरक कुंड में वास' (1994),

गोपाल उपाध्याय का 'एक टुकडा इतिहास' (1975), शैलेश मटियानी का 'सर्पगंधा' (1979), जय प्रकाश कर्दम का 'छप्पर' (1994) आदि।

2.7.1.7 सांप्रदायिकता का चित्रण

सांप्रदायिकता का संबंध धर्म, जाति अथवा समूह की अस्मिता से है। जिसका अर्थ है संप्रदायवाद, अर्थात् सिर्फ अपने संप्रदाय को सबसे अच्छा मानना और अन्य संप्रदायों के प्रति द्वेष का भाव रखना। विभिन्न संप्रदायों में एक दूसरे के प्रति नफरत एवं हिंसा का भाव देखा जा सकता है। इसके कारण मानव मनुष्यता को भूलकर राक्षस बन जाते हैं और परस्पर लडते हैं। आज यह भारत की एक सबसे बडी समस्या बन गयी है।

भारत अनेक धर्मों और जातियों का देश है। देश की आबादी में हिन्दू धर्म के लोग ही बहुत अधिक हैं बाद में मुसलमान। सदियों से झेल रहे गुलामीपन से मुक्ति पाकर सन् 1947 में भारतीय जनता को आज़ादी मिली। लेकिन अंग्रेज़ों की कूटनीति ने हिन्दू-मुसलमानों के बीच सांप्रदायिक वैमनस्य का बीज बोया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सांप्रदायिकता ने अपना उग्र रूप धारण किया। आज़ाद भारत के नेता ने भी यही सोचा कि अपने लाभ के लिए हिन्दू-मुसलमानों को टकराव की स्थिति में रखना ही अधिक उचित है। इस प्रकार हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के प्रति निकृष्ट भाव रखकर आपस में लडने लगे। यह हमारे सामाजिक विघटन का मूल कारण बन गया। ऐसे सांप्रदायिक दंगे में अनेक व्यक्तियों की मृत्यु हुई, कई बहू-बेटियों की इज़्ज़त लूटी गयी, बलात्कार हुए, खून-खराबा, दंगे-फसाद और आगजनी ने कई परिवारों को तबाह कर दिया। समय बीतने पर धीरे-धीरे ऐसे सांप्रदायिक दंगे में कमी होने लगी फिर भी कहीं-कहीं यह आग दहकती रह जाती।

आज भी हर हिन्दू और मुसलमान आपस में एक दूसरे को शक और नफरत की नज़रों से ही देख रहे हैं।

भारत में सांप्रदायिकता का सबसे भीषण रूप भारत-पाक विभाजन के समय में ही हुआ। भारत-पाक विभाजन एक ऐसा तूफान बनकर आया था, जिससे कई लोगों का घर उजड गये, कई लोग मारे गये, अपाहिज बनाये गये, स्त्री और बच्चों पर अत्याचार हुए। अब भी जब-तब देश में कहीं न कहीं सांप्रदायिक हिंसाएँ भडकती रहती हैं, विभिन्न स्थानों पर दंगे-फसाद होते हैं। हिन्दी उपन्यास में सांप्रदायिकता का तीव्र प्रतिरोधी स्वर मुखरित होता है। हिंदू और मुस्लिम दोनों वर्गों के लेखक सांप्रदायिकता पर तेज़ प्रहार करते हैं। कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान', काशीनाथ सिंह का 'काशी का अस्सी', मोहमद आरिफ का 'उपयात्रा', अनवर सुहेल का 'पहचान', हरीचरन प्रकाश का 'एक गन्धर्व का दुःस्वप्न', भीष्म साहिनी का 'तमस', यशपाल का 'झूठा-सच', नासिरा शर्मा का 'ज़िंदा मुहावरा' आदि अनेक उपन्यासों में सांप्रदायिकता को देश की एक प्रमुख समस्या के रूप में उठाकर उसकी वास्तविकता का अंकन हुआ है। आज धर्मनिरपेक्षता की नींव को और मज़बूत बनाने की आवश्यकता है। इसलिए दोनों समुदायों में भाईचारे एवं समन्वय को स्थापित करना चाहिए। तभी इस सांप्रदायिक दंगे से हमें मुक्ति मिलेगी।

2.7.1.8 पारिस्थितिक विमर्श

प्रकृति और मानव का अटूट संबंध है। पुराने जमाने में मानव प्रकृति के साथ आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करता था। लेकिन धीरे-धीरे वह विकास के नाम पर तकनीकी के ज़रिये प्रकृति पर अत्याचार करना शुरू किया। फलस्वरूप अनेक

प्रकार की पारिस्थितिक समस्याएँ उत्पन्न होने लगीं। प्रकृति की यह दुखद स्थिति को साहित्यकार अनदेखा नहीं कर सकते थे। वैसे साहित्य में पारिस्थितिक विमर्श नामक एक नये आन्दोलन की शुरूआत हुई।

साहित्य के क्षेत्र में पारिस्थितिक विमर्श का आविर्भाव पाश्चात्य जगत में सन् 1962 में रेचल कारसन द्वारा लिखित 'मौन वसंत' (silent spring) से माना जाता है। लेकिन बाद में सन् 1980 के मध्य पारिस्थितिक विमर्श एक नये विमर्श एवं साहित्यिक चर्चा के रूप में आगे बढने लगा। हिन्दी साहित्य में भी इसका प्रभाव देखा जा सकता है। समकालीन हिन्दी साहित्य में पर्यावरण विनाश पर गंभीर चर्चा हो रही है। समकालीन रचनाकार अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रकृति की दुर्दशा, प्रकृति के साथ मानव का निर्मम व्यवहार, प्राकृतिक आपदाएँ आदि के प्रति अपना विद्रोह प्रकट कर रहे हैं। हिन्दी की कविता, कहानी, उपन्यास आदि सभी विधाओं में मुखरित पारिस्थितिक चर्चाएँ इसका उदाहरण हैं।

हिन्दी में पर्यावरण को केन्द्र बनाकर लिखे गये अनेक उपन्यास मिलते हैं। वर्षों पहले उपन्यास सम्राट प्रेमचंद द्वारा लिखा गया उपन्यास 'रंगभूमि' में भी पर्यावरण समस्या पर चर्चा की है। इसलिए ही 'रंगभूमि' को भारत का प्रथम परिस्थितिक उपन्यास माना जाता है। इसके अलावा संजीव के 'सावधान! नीचे आग है', 'धार', 'जंगल जहाँ शुरू होता है', 'किसनगठ के अहेरी', 'पाँव तले की डूब', वीरेन्द्र जैन के 'डूब', 'पार', कमलेश्वर का 'अनबीता व्यतीत', सुभाष पन्त का 'पहाड चोर', श्री प्रकाश मिश्र का 'जहाँ बाँस फूलते हैं', तेजिन्दर का 'काला पादरी' आदि अनेक समकालीन उपन्यास इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

2.7.1.9 बदलते राजनीति

वर्तमान युग राजनीति का युग है। आज राजनीति समाज का महत्वपूर्ण अंग बन गयी है। स्वतंत्रता से पहले संपूर्ण भारतीय जनता ने आज़ादी को ही अपनी समस्याओं का हल माना था। इसलिए वृद्धों से लेकर बच्चों तक के सब लोग किसी भी प्रकार के त्याग सहने के लिए तैयार थे। उन सबके तीव्र प्रयत्न से ही हमें स्वतंत्रता मिली। प्रत्येक व्यक्ति को वोट देने एवं अपने नेताओं का चयन करने का अधिकार मिला। जनता ने एक सुनहले भविष्य का स्वप्न देखा था। लेकिन सारे सपने मात्र सपना ही बनकर रहे। स्वतंत्रता के बाद राजनीति में मूल्यों का ह्रास होने लगा। राजनीतिज्ञ सेवा और त्याग से हटकर स्वार्थी और अवसरवादी हो गए। वे राजनीति को पेशा समझने लगे। नेताओं के चारित्रिक पतन और नैतिक दृढता के अभाव में विघटनकारी शक्तियाँ सिर उठाने लगी। साथ ही साथ राजनीति में भ्रष्टाचार भी होने लगे। आज सभी राजनीतिज्ञों का लक्ष्य सिर्फ सत्ता है। चुनाव जीतने के लिए पैसा का महत्व भी बढ गया। नोट के बल पर चुनाव जीतना वोट हासिल करना राजनेताओं का प्रमुख लक्ष्य हो गया। आज की राजनीति यह सिद्ध कर रही है कि जो जितना भ्रष्ट है उतना ही अधिक सफल। फलस्वरूप शासन तंत्र पर सामंत, पूँजीपति, ज़मींदार आदि का प्रवेश हुआ। चुनाव के पहले मज़दूरों एवं किसानों की बातें करनेवाले नेता बाद में धनवानों एवं भूमिपतियों की वकालत करने लगे। इसप्रकार आज के नेतागण सिर्फ पैसा कमाने के उपाय के रूप में ही राजनीति को देखते हैं और अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते हैं। आज़ादी के समय के नेता देश के लिए जान देने को भी तैयार थे पर आज के नेता देश की लूट ही कर रहे हैं। भ्रष्टाचार रोकने के लिए देश में कई संस्थाएँ कार्यरत हैं। लेकिन आज के राजनीतिज्ञ ही इसका नियंत्रण कर रहे हैं। इसलिए भ्रष्टाचार पूर्ण रूप से रोकना संभव नहीं है।

राजनीति के इस बदलते रूप साहित्य का भी मुख्य विषय बन गया है। हिन्दी उपन्यासों में स्वाधीन संग्राम से लेकर आज तक के राजनीतिक संदर्भ में हुए परिवर्तन, राजनीति की विडंबनाओं एवं विकृतियों का सजीव वर्णन किया है। काशीनाथ सिंह का 'काशी का अस्सी', भगवती चरण वर्मा के 'भूले बिसरे चित्र', 'सीधी सच्ची बातें', 'प्रश्न और मरीचिका', 'सबहि नचावत राम गोसाई', गिरिराज किशोर का 'लोग', यशपाल का 'मेरी तेरी उसकी बात', मृदुला गर्ग का 'अनित्य' आदि उपन्यास इसका उदाहरण हैं।

2.7.1.10 शैक्षिक विमर्श

मानव जीवन में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा ही मानव को यथार्थ मानव बनाती है। किसी भी समाज के निर्माण में वहाँ की शिक्षा पद्धति का महत्वपूर्ण स्थान होता है। एक मनुष्य के चरित्र को लोकहित की दृष्टि से विकसित कराना ही शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। भारत में शिक्षा की परंपरा अति प्राचीन है। प्राचीन भारतीय शिक्षा में चरित्र-निर्माण, ज्ञानोपार्जन एवं आध्यात्मिक उन्नति पर बल देते थे। व्यक्ति के साथ-साथ समाज की उन्नति भी इसका महत्वपूर्ण लक्ष्य था। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शैक्षिक जीवन के क्षेत्र में कई प्रकार के सकारात्मक एवं नकारात्मक परिवर्तन हुए। आज स्थिति यह हो गयी है कि शिक्षा के क्षेत्र की समस्या के कारण छात्र, शिक्षक, जनता सब लेग असंतुष्ट हैं।

आज का विद्यालय मात्र उपाधियों का व्यापार करने की संस्था बन गयी है। अब चाहे विद्यार्थी हो या अध्यापक, कोई भी अपने कर्तव्यों के प्रति चिंतित नहीं। विद्यार्थी केवल उपाधि प्राप्त करने के उद्देश्य से आते हैं। उनमें न नैतिक मूल्यों का

संचार हो पाता है और ना ही उदात्त संस्कारों का विकास। कई अध्यापक तो मात्र पैसा कमाने तथा समाज में अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित करने के उद्देश्य से आते हैं।

आज शिक्षा के क्षेत्र में राजनीति का गहरा असर पडता है। विद्यालयों और कॉलेजों में जितने भी छात्र संगठन हैं, वे किसी न किसी राजनीतिक दल से जुडे हुए हैं। उसके फलस्वरूप कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षा या शिक्षक का महत्व खटकर छात्र नेताओं की प्रमुखता बढ़ गयी है। सिर्फ विद्यार्थियों के बीच में ही नहीं अध्यापकों के बीच भी राजनीति का हस्तक्षेप हुआ है। इसके कारण शिक्षा का क्षेत्र आजकल काफी दूषित हो रहा है। विद्यार्थियों के बीच मुठभेड आम बात बन गयी है।

इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में बढती रही भ्रष्टाचार, गुरुजनों के साथ अनुचित व्यवहार, छात्रों के साथ दुर्व्यवहार, रैगिंग, परीक्षा में नकल की प्रवृत्ति, शिक्षा का व्यापारीकरण, मूल्यहीनता, निम्न वर्ग के छात्रों पर अत्याचार आदि कई समस्याएँ हम देख्र सकते हैं। विद्यार्थियों में कोई उच्चवर्ग का होता है तो कोई निम्न वर्ग का। अकसर यह भी देख्रा जा सकता है कि निम्न वर्ग के छात्रों के साथ भेदभाव किया जाता है। यह भेदभाव केवल छात्रों की ओर से ही नहीं बल्कि अध्यापकों की ओर से भी होता है। इस प्रकार आज शिक्षा संबंधी सारे मूल्य नष्ट हो रहे हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त इस मूल्यहीनता का चित्रण समकालीन उपन्यास का प्रमुख्र विषय बन गया है। साहित्य में शैक्षिक विमर्श का आगमन इसका ही परिणाम है। रमाकान्त का 'जुलूसवाला आदमी', दुष्यन्त का 'छोटे- छोटे सवाल', देवेश कुमार के 'शिख्रर पुरुष', 'गुरुकुल', उदयप्रकाश का 'पीली छतरीवाली लडकी', गिरिराज किशोर का 'परिशिष्ट', श्रवण कुमार गोस्वामी का 'चक्रव्यूह' आदि उपन्यासों में शैक्षिक संबंधी समस्याओं का चित्रण हुआ है।

2.7.1.11 विदेशी परिवेश

समकालीन हिन्दी उपन्यास मात्र हिन्दी परिवेश और पात्रों तक सीमित न रहकर दूसरे राष्ट्रों, वहाँ की संस्कृति, जीवन-रीतियों, आचार-विचार आदि को पाठकों के सामने उजागर किये हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारत के लेखकों को विदेशी राष्ट्रों में भ्रमण करने का अवसर मिलते थे। वैसे उन्हें विदेशी राष्ट्रों की संस्कृति और जीवन मूल्यों की जानकारी मिली। इतना ही नहीं सालों पहले भारत से विदेश जाकर वहाँ बस गये लोगों की ज़िन्दगी को भी वे देख सके थे। इस प्रकार हिन्दी साहित्य में विदेशी पृष्ठभूमि पर कई रचनाएँ मिलने लगीं। विदेशी परिवेश को आधार बनाकर लिखा गया हिन्दी का पहला उपन्यास है निर्मल वर्मा का 'वे दिन'।

विदेशी परिवेश के उपन्यासों के माध्यम से हमारी संस्कृति और विदेशी संस्कृति में अंतर, हमारे देशों से विदेशों में जानेवाले लोगों की जिन्दगी, अमेरिकी औरत का जीवन, मानवीय रिश्तों का टूटन, उपभोगवादी मानसिकता, पारिवारिक विघटन, पैसे के प्रति लालच आदि को हमारे सामने प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया गया है।

विदेशी परिवेश को लेकर लिखे गये उपन्यासों में प्रमुख हैं- सुनीता जैन के 'अपने सफर के साथी', 'बिन्दू', उषा प्रियंवदा के 'रुकोगी नहीं राधिका', 'शेषयात्रा', 'अन्तर्वंशी', नासिरा शर्मा का 'सात नदियाँ एक समन्दर', प्रभा खेतान का 'आओ पेपे घर चलें' आदि।

2.7.1.12 आदिवासी विमर्श

आदिवासी से मतलब है मूल निवासी। किसी भी देश में आदिम युग से ही निवास करने वाले समुदाय ही आदिवासी कहा जाता है, जो हज़ारों वर्षों से जंगल एवं पहाडों में अपनी एक अलग संस्कृति, परंपरा, भाषा, रीति-रिवाज़, वेश-भूषा आदि के साथ जी रहे हैं। प्रकृति इनके जीवन का अभिन्न हिस्सा है, इसलिए इन्हें धरती का पुत्र भी कहा जाता है। स्त्री-पुरुष समानता, अंधविश्वास, राजनीतिक चेतना का अभाव, शराब पीना, जादू-टोनों पर विश्वास, प्रकृति की पूजा, बहु-विवाह, बाल-विवाह आदि आदिवासी समुदाय की विशेषताएँ हैं। लेकिन आज इनकी स्थिति अत्यंत दयनीय एवं शोचनीय है।

आज भी हमारे देश में यदि कोई समुदाय उपेक्षित, अभिशप्त, अशिक्षित, शोषित एवं हाशिये पर है तो वह है आदिवासी समाज। इतने सुख-सुविधाओं से भरे आधुनिक काल में भी वे सबसे अधिक पिछडी एवं दयनीय स्थिति में है। इन सबके अलावा आदिवासी समुदाय सामने करनेवाली सबसे बडी समस्याएँ हैं शोषण, अत्याचार और विस्थापन। स्वयं सभ्य कहलानेवाले आधुनिक मानव द्वारा आदिवासियों का निरंकुश शोषण हो रहा है। इनके शोषण करनेवालों में महाजन, पूँजीपति, सरकारी कर्मचारी, पुलीस अधिकारी आदि सभी वर्ग शामिल हैं। इसके अतिरिक्त विकास के नाम पर सरकार द्वारा भी इनका शोषण ज़ारी है। आज विकास के नाम पर आदिवासियों से उनका जंगल-जल-ज़मीन छीन रहे हैं और इसकी वजह से उनका अस्तित्व ख़तरे में पड गया है। जल-परियोजना, औद्योगीकरण, ख़नन उद्योग, अभयारण्य आदि के नाम पर इनसे ज़मीन छीन रही हैं तदुपरांत वे विस्थापित हो जाते हैं। हम जानते हैं कि इस पृथ्वी से जिन लोगों की संस्कृति ख़त्म हो जाती है

उसके साथ उनकी पहचान भी ख़तम हो जाती है। अर्थात् सरकार की तरफ से ही आदिवासियों की पहचान मिटाने का काम चालू है। अतः आदिवासी जनजीवन की सुरक्षा आज मुख्य मुद्दा बन गया है।

पिछले कुछ दशकों से सामाजिक कार्यकर्ताओं और प्रतिबद्ध लेखकों का ध्यान आदिवासियों पर पडा है। अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष करनेवाले इन लोगों के लिए वे आवाज़ उठाने लगे। फलस्वरूप साहित्य में 'आदिवासी विमर्श' नामक नये विमर्श का उदय हुआ। सन् 1980 के बाद समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों ने आदिवासी जीवन को केन्द्र में रखकर बहुत ही सशक्त एवं महत्वपूर्ण उपन्यासों की रचना की है। वैसे समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन की व्यथा- पीडा, उत्पीडन, शोषण, संघर्ष आदि ज्वलंत समस्याओं की अभिव्यक्ति मिली है। आदिवासी जीवन को आधार बनाकर लिखे गये हिन्दी उपन्यासों में प्रमुख हैं- 'जंगल जहाँ शुरू होता है', 'पाँव तले की डूब', 'जंगल के फूल', 'काला पादरी', 'ग्लोबल गाँव के देवता', 'डूब', 'पार' आदि।

2.7.1.13 इतरलिंगीय विमर्श

मानव में ऐसा एक समुदाय है जिनके जननांग अस्पष्ट होते हैं, उन्हें किन्नर यानी हिजडा कहा जाता है। अर्थात इन लोगों का जननांग न तो स्पष्ट रूप से स्त्री का होता है और न ही पुरुष का। असल में हिजडा उर्दू शष्द है जिसका अर्थ है घर-परिवार एवं समाज से अलग होना। मानव होने के बावजूद भी अपनी शारीरिक विकलांगता के कारण अनादि काल से ही उपेक्षित, शोषित एवं वंचित समुदाय है हिजडा समुदाय।

हिजडा अथवा किन्नर शब्द सुनते ही हमारे मन में ऐसे एक मानव की छवि आ जाती है कि जिसकी इठलाती चाल होती है, गहनों, चमकीले कपडे, चेहरे पर बहुत सारे मेकअप से सजाया हुआ है। ऐसे लोग दूकानों व घरों में भीख माँगते हैं, बच्चों के जन्म तथा विवाह आदि कार्यक्रमों में नाच-गाकर पैसा कमाते हैं। अगर इनकी मूँहमाँगी पैसा न दिये तो गाली देते हैं और बद्दुआ देते हैं। माना जाता है कि इन लोगों की दुआ का असर भी बहुत अधिक होता है। इसलिए लोग इन्हें डरते हैं।

"किन्नर अथवा हिजड़ों की कई श्रेणियाँ होती हैं, जो हिजडा जन्म से ही अपूर्ण लिंगी होते हैं उन्हें बुचरा कहा जाता है। जो किसी कारणवश स्वयं को हिजडा बनने के लिए समर्पित कर देते हैं उन्हें नीलिमा कहते हैं। कुछ हिजडें तन के स्थान पर मानसिक तौर पर स्वयं को विपरीत लिंग अथवा अकसर स्त्री-लिंग के अधिक निकट महसूस करते हैं वह मनसा कहलाते हैं। शारीरिक कमी तथा नपुंसकता आदि यौन विकारों के कारण जो हिजडा बनने पर विवश होते हैं वह हंसा कहलाते हैं। धन कमाने के लिए बहुत सारे लोग हिजडे का स्वांग धारण कर लेते हैं अर्थात् नकली होते हैं वह अबुआ कहलाते हैं।"[17]

हिजडों के प्रति सामान्य मानव के मन में अजीब सा भाव ही होता है और उन्हें डर लगते हैं। समाज उन्हें घृणा की नज़रों से ही देखते हैं और अछूतों जैसा व्यवहार करते हैं। मानव के रूप में हिजडों को मान्यता देने के लिए हिचकते हैं। लोग इन्हें आस पास देखना भी पसंद नहीं करते। परिवार में भी इन्हें कोई मान्यता नहीं देते। अगर किसी परिवार में ऐसे बच्चे का जन्म हुआ तो अपमान जनक मानता है और उन्हें हिजडों के लिए सौंप देता है। शिक्षा की दृष्टि से भी इनकी स्थिति अत्यंत दयनीय होती है। अधिकांश किन्नर निरक्षर होते हैं। वे सामाजिक व आर्थिक

तौर पर असुरक्षित और निस्सहाय होते हैं। इसलिए ही वे जीवन बिताने के लिए भीख माँगने तथा यौनवृत्ति करने को मज़बूर बन जाते हैं।

हाल के दशकों में वे अपने अधिकारों व अस्तित्व के लिए संघर्ष करने लगे हैं। किन्नरों का राजनीति में आने से स्वयं किन्नर समाज भी जागरूक हुआ है। जगह-जगह पर वे अपने अधिकारों के लिए संघर्ष व सम्मेलन का आयोजन कर रहे हैं। इन सबके परिणाम स्वरूप भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इन्हें 'तृतीय लिंगी' की मान्यता दी गयी है।

कला और साहित्य के क्षेत्र में अब भी किन्नर समाज उपेक्षित ही रह गयी है। इधर हाल ही में साहित्य के क्षेत्र में इनकी चर्चा हो रही हैं। हिन्दी उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में इनके बारे में लिखना शुरू किया है। किन्नरों पर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में प्रमुख हैं- प्रदीप सौरभ का 'तीसरी ताली', निर्मला भुराडिया का 'गुलाम मंडी', चित्रा मुद्गल का 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा', नीरजा माधव का 'यमदीप', गिरिजा भारती का 'अस्तित्व' आदि।

2.7.1.14 वृद्ध विमर्श

कहा जाता है कि वृद्धावस्था एक व्यक्ति के जीवन का सुवर्ण काल है। यह इसलिए है कि जीवन की इस अंतिम चरण में व्यक्ति हर दायित्व और जिम्मेदारियों से मुक्त होकर, मनपसंद कार्य करते हुए मृत्यु प्राप्त करते हैं। वृद्धावस्था में लोग अपने जीवन में बीती हुई कठिनाइयों और दुःखों को भूलकर अपने परिवार, बाल-बच्चों के साथ सुखमय जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। लेकिन आज वृद्धावस्था एक सबसे बडी समस्या बन गयी है, स्वयं वृद्धों के लिए भी और शेष समाज के लिए भी। आज हम देखते हैं कि अधिकांश वृद्धजन दुःखी और असहाय है। वृद्धावस्था

में उनकी इच्छा थी कि सुख व स्वस्थ जीवन व्यतीत करें, संतान उनके देखभाल करें और समाज में आदर और सम्मान मिलें। लेकिन उन्हें हर तरफ से हताशा और पीडाएँ ही मिल रही हैं। आधुनिक युग के बढ़ते भौतिकवाद, भोगवादी संस्कृति, शहरीकरण, नैतिक मूल्यों का पतन, संयुक्त परिवार का टूटन, अणु परिवारों का आगमन आदि ने बूढों के जीवन को बिगाड दिया है। आधुनिकता से उत्तर आधुनिकता की ओर बढने वाले मानव माँ-बाप को अपने जीवन में एक बाधा मानते हैं और उनकी उपेक्षा करते हैं। नव-जीवन शैली में कुलीन या आभिजात्य समाज के पुत्र विदेश या देश में या अपने नगर से बाहर या कहीं दूर जाकर अपनी गृहस्थी चलाते हैं। माँ-बाप का देखभाल करने में उनके पास समय नहीं हैं। गाँवों में भी वृद्धों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। गाँवों में रहनेवाले बुजुर्ग अपने ही संतानों के कारण अपमानित और दुखित होते हैं। ज़मीन- संपत्ति आदि के लिए माँ-बाप की हत्या भी आम बात बन गयी है। कभी-कभी उनसे संपत्ति, भूमि आदि हडपकर उन्हें धक्के मारकर घर से बाहर निकालते हैं। फलस्वरूप वृद्धों को अकेला जीवन व्यतीत करना पडता है या वृद्धाश्रम का सहारा लेना पडता है।

देश में बढती वृद्ध समस्या को कम करने के लिए, संतानों द्वारा उपेक्षित वृद्धों के संरक्षण के लिए सरकार और विभिन्न स्वयं सेवी संस्थाओं ने वृद्धाश्रम खोला है और वृद्धों को आवास, भोजन आदि दे रहे हैं। आज बूढों को वृद्धाश्रम में ले जाना एक सामान्य प्रवृत्ति बन चुकी है। इसका मुख्य कारण है हमारे जीवन शैली में आए परिवर्तन। अपमान एवं निराशा के कारण से स्वयं वृद्धाश्रम में चले जानेवाले कई लोग भी हैं।

आज बढती रही वृद्धों की इस दुर्दशा की चर्चा साहित्य पर भी हो रही है। साहित्य के क्षेत्र में वृद्ध विमर्श का उदय भी इसकी वजह से ही हुआ। हिन्दी

उपन्यास में कहीं-कहीं वृद्धों के जीवन की बहुविध यथार्थ का चित्रण देखा जा सकता है। लेकिन पहले-पहले जिसमें वृद्ध समस्याओं की चर्चा बहुत कम थी। मगर इक्कीसवीं शताब्दी तक आते-आते उपन्यास में वृद्ध समस्या पर भी चर्चाएँ होने लगीं। वृद्ध लोगों के जीवन पर आधारित हिन्दी उपन्यासों में प्रमुख हैं- ममता कालिया का 'दौड', निर्मल वर्मा का 'अंतिम अरण्य', चित्रा मुद्गल का 'गिलिगडु', कृष्णा सोबती का 'समय सरगम', रवीन्द्र वर्मा का 'आख़िरी मंज़िल' आदि।

2.7.1.15 प्रवासी विमर्श

समकालीन साहित्य की एक नयी प्रवृत्ति है प्रवासी विमर्श। प्रवासी भारतीयों के संवेदनापूर्ण मन की अभिव्यक्ति ही प्रवासी साहित्य नाम से जाना जाता है। किसी भी व्यक्ति को उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ ही प्रवासी बनाता है। व्यक्ति प्रवास चुनने का कारण जो भी हो उनके मन में सदा मूल देश की संस्कृति-सभ्यता आदि का बोध होता है। इसलिए ही भारत से दूर होकर भी वे अपनी रचनाओं के माध्यम से बहुत निकट आने का प्रयास करते हैं। इनकी रचनाओं के द्वारा आज भारतीय संस्कृति को नयी पहचान भी मिल रही है।

एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति अपनाते वक्त व्यक्ति को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पडता है। नयी संस्कृति को अपनाना तथा अपनी संस्कृति को पकड में रखना उनके सामने सबसे बडी समस्या है। इसके साथ उन्हें कई अन्य समस्याओं का भी सामना करना पडता है। विदेश में रहते वक्त वे सबसे पहले अपनी वेश-भूषा में आधुनिकता लाते हैं। धीरे-धीरे अपने नाम में भी परिवर्तन लाते हैं। अंधविश्वास, संस्कार, रीति-रिवाज़ आदि को त्याग देते हैं। कभी-कभी उन्हें विदेशी परिवेश में अकेलापन, अजनबीपन, संत्रास, मृत्युबोध आदि का अनुभव होते

हैं। वैसे विदेशी संस्कृति को अपनाते वक्त भारतीयों के मन में कई प्रकार के संघर्ष होते हैं। इन समस्याओं को उन्होंने अपनी रचनाओं में व्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अतीत के मोह से उत्पन्न संघर्ष, नया जीवन अपनाते समय होनेवाले मानसिक संघर्ष, पहचान का संकट आदि प्रवासी साहित्य का मुख्य विषय हैं। अपनी इन समस्याओं के कारण पाश्चात्य संस्कृति में रहते हुए भी वे भारतीयता पर ध्यान देते हैं।

हिन्दी का प्रवासी साहित्य हिन्दी साहित्य को अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करता है। इसकी एक स्वतंत्र सत्ता है। यह भारतेतर देशों को भारत से जोडनेवाले सेतु का कार्य भी करता है। यह सेतु विश्वव्यापी हिन्दी साहित्यिक समाज का निर्माण करता है।

हिन्दी साहित्य को संपन्न करने में अब प्रवासी भारतीय रचनाकारों का योगदान महत्वपूर्ण है। इनमें अंजना संधीर, तेजेन्द्र शर्मा, सोमदत्त बख्रौरी, सुषम बेदी, सुदर्शन प्रिदर्शनी, सुधा ओम ढींगरा आदि का नाम विशेष उल्लेख्रनीय हैं। वे प्रवासी है लेकिन भारतीय संस्कृति की अमिट छाप उनके हृदय पर अंकित है।

2.7.1.16 मीडिया विमर्श

मीडिया हमारे राष्ट्रीय, सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रही है। आज मीडिया के अंतर्गत समाचार पत्र, दूरदर्शन, इंटरनेट आदि आ जाते हैं। मीडिया जनमानस को सर्वाधिक प्रभावित करती है। व्यक्ति से लेकर समाज तक और समाज से लेकर राष्ट्र की हर गतिविधियों को मीडिया अपने प्रभाव क्षेत्र में लेता है। यह जन-जन के बीच मधुर संबंध बनाने में, मार्ग दर्शन करने तथा देश की मुख्यधारा से लोगों को जोडने में बहुत उपयोगी अस्त्र

है, क्योंकि वह दूर-दराज के क्षेत्रों में रहनेवाले या शहरी क्षेत्र में, सभी को समान रूप से सूचना देने में सक्षम है। इसकी सबसे बडी विशेषता है लोक कल्याण। मीडिया की जिम्मेदारी है कि वह सत्य का पालन एवं सम्मान करें और आम जन में सत्य के प्रति निष्ठा पैदा करें। अपनी अभिव्यक्ति में साफगोई और सत्यान्वेष्वण भी इसकी जिम्मेदारी है। मीडिया अपनी शक्ति को जनहित के लिए करना चाहिए। मीडिया को सत्य और तथ्यों से दिलचस्पी रखनी चाहिए। पक्ष-विपक्ष दोनों के विचारों को जन सामान्य तक लाना चाहिए। मीडिया एक सर्व समावेशी क्षेत्र है, जिसका संबंध समाज के हर एक पहलू से है। विश्व में मीडिया का सर्वाधिक गौरवपूर्ण स्थान है। जीवन और जगत की यथार्थता जितनी सूक्ष्मता से इसके माध्यम से अभिव्यक्त हो सकती है उतनी दूसरे माध्यमों से असंभव है। लोक-मंगल का भाव, असत्य, अशिव और असुंदर के विपरीत सत्यम् शिवम् और सुंदरम का उद्घोष आदि मीडिया का दायित्व है।

लेकिन आज मीडिया जगत् का व्यापारीकरण हो गया है। आज की मीडिया सामाजिक प्रतिबद्धता को भूल गयी है। मूल्यहीनता मीडिया जगत की समस्या बन गयी है। नयी-नयी चैनलों के आगमन से मीडिया जगत में पारस्परिक प्रतिस्पर्धा बढ रही है। इसलिए अपने दायित्व और मूल्यों को भूलकर रेटिंग के लिए झूठी-झूठी खबरों को लेने में भी कोई हिचकता नहीं है। मीडिया जगत में काम करनेवाले लोगों को भी कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पडती हैं। स्त्री और दलित शिक्षित होते हुए भी दूसरों का शिकार बन जाते हैं। मीडिया जगत में काम करनेवालों की प्रमुख समस्याएँ हैं- शोषण, लेखकीय चोरी, भ्रष्टाचार, आर्थिक संकट, पारिवारिक विघटन, आदर्श और यथार्थ के बीच का संघर्ष, अयोग्यों की घुसपैठ, बेरोज़गारी आदि। मीडिया जगत में विज्ञापन का दबाव भी बढ रहा है। इस

प्रकार आज मीडिया का क्षेत्र कई तरह की समस्याओं से त्रस्त है। आज इसकी मूल्यच्युति हो रही हैं। मीडिया के क्षेत्र की इन समस्याओं की अभिव्यक्ति साहित्य पर भी हम देख्र सकते हैं। आज साहित्य के क्षेत्र में मीडिया विमर्श नामक एक नई प्रवृत्ति का भी जन्म हुआ है।

मीडिया जगत की समस्याओं को चित्रित करनेवाले उपन्यासों में आते हैं- अमृतलाल नागर के 'पीढियाँ', प्रकाश मनु का 'यह जो दिल्ली है', नवीन जोशी का 'दावानल' आदि।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि उपन्यास मानव जीवन के बहुत निकट है। उसमें मानव जीवन से जुडे समस्त विषयों का समावेश है। हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा में पूर्व प्रेमचंदयुगीन उपन्यास निर्माणात्मक अवस्था के उपन्यास हैं। जिनमें औपन्यासिक तत्वों का अभाव था। उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद जी के पदार्पण के बाद ही हिन्दी उपन्यास का निजी व्यक्तित्व गठित हुआ था। उत्तर प्रेमचंद युग का उपन्यास साहित्य समृद्धि तथा विकास के शिख्रों तक पहूँचा था। स्वतंत्रता के बाद के उपन्यासों में तत्कालीन परिवेश, जीवन-यथार्थ, शोषण एवं अत्याचारों का विरोध आदि का चित्रण ही मिलते हैं। समकालीन उपन्यासों में समसामयिक सामाजिक परिस्थितियों से उत्पन्न सारी समस्याओं पर चर्चा हुई हैं। इस प्रकार आज के उपन्यासों में मानव जीवन से जुडे हर पहलू को हम देख्र सकते हैं। इसलिए ही हम कह सकते हैं कि जीवन यथार्थ को उसकी पूरी गहराई एवं समग्रता के साथ प्रस्तुत करने की क्षमता उपन्यास विधा में ही बहुत अधिक है। इसलिए ही समस्त साहित्यिक विधाओं में उपन्यास एक सशक्त एवं महत्वपूर्ण विधा बन गयी है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. प्रतापनारायण टंडन- हिन्दी उपन्यास कला, पृ.2
2. वही, पृ.12
3. वही, पृ.16
4. डॉ.पी.एस.थॉमस- भारतीय मध्यवर्ग और सामाजिक उपन्यास, पृ.18
5. डॉ. प्रतापनारायण टंडन- हिन्दी उपन्यास कला, पृ.2
6. वही, पृ.13
7. वही, पृ.16
8. वही, पृ.16
9. डॉ.पी.एस.थॉमस- भारतीय मध्यवर्ग और सामाजिक उपन्यास, पृ.60
10. डॉ.रामचन्द्र तिवारी- हिन्दी का गद्य साहित्य, पृ.164
11. डॉ.सौ माधवी रूपवाल- नरेंद्र कोहली के उपन्यास समकालीन सरोकार, पृ.42
12. वही, पृ.42
13. वही, पृ.44
14. डॉ.जालिंदर इंगले- समकालीन हिन्दी उपन्यास : वर्ग एवं वर्ण संघर्ष, पृ.82
15. डॉ.अर्जुन चाव्हाण- राजेंद्र यादव के उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन, पृ.12
16. प्रतिक्षा मुदलियार- स्त्री विमर्श और समकालीन साहित्यिक संदर्भ, पृ.10
17. सं. डॉ. एम. फिरोज़ ख़ान- हम भी इंसान हैं, पृ.2

तीसरा अध्याय

हिन्दी उपन्यास में पारिस्थितिक चिंतन

मानव और प्रकृति के बीच का अटूट संबंध उतना पुराना है जितना मानव का इतिहास। लेकिन आधुनिक युग में यह रागात्मक संबंध टूट रहा है और प्रकृति के प्रति मानव का दृष्टिकोण सिर्फ उपभोक्तावादी मानसिकता पर केन्द्रित बन गया है। जिस प्रकृति, पृथ्वी में जीवन का आधार है उसका दोहन-शोषण ही आज देख्र सकते हैं। प्रकृति के प्रति इस बदलती मानसिकता मानव को विनाश की ओर ही ले जाती है। इसका मिसाल है आज की प्राकृतिक आपदाएँ। आज प्रकृति से संबंधित ऐसी ख्रबरें ही ज़्यादा सुन रही हैं कि वैश्विक तापमान में दिन-ब-दिन वृद्धि हो रही है, प्रदूषण बढ रहा है, वन-विनाश चरम सीमा पर पहूँच गया है, लोग प्राकृतिक आपदाओं से जूझ रहे हैं आदि। लेकिन फिर भी मानव अपने निरंकुश शोषण पर रोकथाम लगाने को तैयार नहीं है।

प्रकृति से मिलजुलकर, उसके साथ समन्वयात्मक संबंध स्थापित करके जिये हमारे पूर्वजों से, प्रकृति का शोषक बन गये आधुनिक मानव तक आते वक्त इस पर ध्यान देना अत्यंत अनिवार्य है कि मानव जाति की विकास यात्रा में ऐसी एक ख्रतरनाक बदलाव की शुरूआत कहाँ से ही हुई है? आदिम मानव के लिए प्रकृति अपने जीवन का अभिन्न हिस्सा था। इसलिए आनेवाली पीढी को भी ध्यान में रख्रकर सीमित दायरे में ही वे प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करते थे। लेकिन जब धीरे-धीरे औद्योगिक क्रांति और विकास योजनाओं का आगमन हुआ तब से प्रकृति के प्रति मानव का रवैया बदलने लगा और दिन-प्रतिदिन वह क्रूर होता रहा। औद्योगिक क्रांति ने पूँजीवादी सभ्यता को जन्म दिया। पूँजीवाद सिर्फ अर्थ तथा मुनाफे पर आधारित था। इसलिए ही पूँजीपति प्रकृति को अपनी आर्थिक उन्नति का सबसे तेज़ी तथा सुविधाजनक 'साधन' मात्र समझने लगे और प्रकृति का निरंकुश शोषण करने लगे। स्वतंत्रता के बाद भारत में भी औद्योगीकरण और विकास योजनाओं का तेज़

विस्तार हुआ। कारख़ानों मिलों की स्थापना और मशीनी विकास के कारण देश की अर्थव्यवस्था कृषि से हटकर उद्योग पर केन्द्रित हो गयी। देश के विकास के बहाने प्राकृतिक संसाधनों की लूट बढती रही। इस प्रकार मानव जितनी तेज़ी से प्रगति की ओर अग्रसर होने लगे उतनी मात्रा में प्रकृति से वे कोसों दूर चलते रहे।

प्रकृति पर दिन-प्रतिदिन बढते मानव के हस्तक्षेप के विरुद्ध कभी-कभी प्रकृति अपना आक्रोश प्रकट करने लगे। फलस्वरूप कई प्रकार की प्राकृतिक आपदाएँ उभर आने लगीं। इस प्रकार आधुनिक मानव का विवेकशून्य क्रिया-कलाप जब जीवन के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगाने लगे तब उसकी प्रतिक्रिया के रूप में समाज में पारिस्थितिक बोध का उदय हुआ। पारिस्थितिकवादियों, कार्यकर्ताओं, समाज सेवियों तथा साहित्यकारों ने इस पर विशेष ध्यान देने लगे। आज विश्वभर में पारिस्थितिक संकट पर ज़ोर से चर्चाएँ हो रही हैं। भारत में चिपको आन्दोलन, सेव सैलेंडवाली आन्दोलन, भोपाल गैस त्रासदी आदि घटनाओं से पारिस्थितिक सजगता की जडें भारतीय जनमानस में मज़बूत हुई हैं। साहित्य में भी यह एक अहं विषय बनकर आया है। साहित्य में पारिस्थितिक विमर्श नामक एक नई विचारधारा का ही जन्म हुआ। पारिस्थितिक विमर्श दरअसल प्रकृति की चेतावनियों को सुनकर मानव द्वारा अपनी गलतियों को सुधारने तथा प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण और समन्वयात्मक संबंध स्थापित करके जीने का आह्वान देता है। हिन्दी साहित्य भी इसकी परिधि से बाहर नहीं है। समकालीन हिन्दी साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में जैसे कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि में पारिस्थितिक चर्चा विशेष स्थान प्राप्त किया है।

समकालीन उपन्यास अपने समय की प्रायः सभी समस्याओं को ख़ासकर ज्वलंत समस्याओं को बहुआयामी ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। आधुनिक मानव की बदलती मानसिकता तथा उसके परिणामों को चित्रित करने में समकालीन उपन्यास ने

सफलता प्राप्त की है। इसलिए ही पारिस्थितिक विमर्श समकालीन उपन्यास का अभिन्न हिस्सा बन गया है। प्रकृति पर मानव का निरंकुश शोषण, उसके फलस्वरूप उत्पन्न समस्याएँ आदि का चित्रण करके प्रकृति और मानव के आपसी संबंध को पुनः मिलाने के लिए प्रयत्न करना समकालीन लेखक अपने कर्तव्य के रूप में स्वीकार किये हैं।

पिछले अध्याय में हमने देखा कि हिन्दी उपन्यास विधा की विकास यात्रा में मुख्यतः तीन काल ही आ जाते हैं। इनमें प्रेमचंद पूर्व का हिन्दी उपन्यास मनोरंजन तथा उपदेशात्मक दृष्टि पर आधारित थे। हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में प्रेमचंद जी का आगमन साहित्य में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया और उपन्यास में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति होने लगी। प्रेमचंद जी के उपन्यास साहित्य पर ध्यान देते वक्त सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि उसमें भी पारिस्थितिक सजगता प्रमुख विषय बनकर आयी है। अपने समय में पारिस्थितिक समस्या न होने के बावजूद भी उन्होंने अपने उपन्यास द्वारा औद्योगीकरण के दुष्प्रभावों के प्रति पाठकों को अवगत कराने का महत्वपूर्ण कार्य किया था। उनकी यह दीर्घदृष्टि से उपजी एक महत्वपूर्ण रचना है रंगभूमि। इसलिए ही रंगभूमि को भारतीय साहित्य के सबसे पहला पारिस्थितिक उपन्यास मानने में कोई गलती नहीं होगा। मैं ने प्रस्तुत अध्याय रंगभूमि के परिचय से शुरू किया है। प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास में आँचलिक उपन्यास विशेष स्थान प्राप्त किया है। आँचलिक उपन्यास में किसी भी अंचल विशेष को नायक बनाकर वहाँ की प्राकृतिक सुषमा, जन-जीवन, रीति-रिवाज़ आदि संपूर्ण तत्वों का चित्रण किया गया है। इसमें प्रकृति का चित्रण महत्वपूर्ण है। लेकिन मानव और प्रकृति का संबंध कोई समस्या के रूप में इन उपन्यासों में देख नहीं सकता। आज़ादी के बाद देश विकास और औद्योगीकरण के पीछे भागने लगे। अधिकांश विकास योजनाएँ

गाँवों को केन्द्र में रखकर ही बनायी गयी थीं, लेकिन यह गाँववालों की उन्नति को लक्ष्य बनाकर नहीं थे। इसलिए कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होने लगीं। इन सबका चित्रण तत्कालीन साहित्य पर भी देख सकते हैं। धीरे-धीरे भूमण्डलीकरण, बाज़ारीकरण, उदारीकरण आदि का आगमन हुआ। फलस्वरूप कई प्रकार के पारिस्थितिक संकट बढने लगे। मानव और प्रकृति का संबंध शोषणपरक मानसिकता पर आधारित रहा, और मानव के इस बदलते दृष्टिकोण साहित्य में भी अभिव्यक्त होने लगे। सन् 1980 के बाद के उपन्यास में ही पारिस्थितिक चर्चा विशेष रूप से देख सकते हैं। सन् 1990 के बाद यह एक गंभीर समस्या के रूप में, उपन्यास के क्षेत्र में विशेष स्थान प्राप्त हुआ है और प्रस्तुत विषय को केन्द्र बनाकर अनेक उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। यहाँ उन सबका परिचय देना असंभव है। इसलिए मैं ने प्रस्तुत अध्याय में कुछ महत्वपूर्ण उपन्यासों का परिचय देने की कोशिश की है।

3.1 रंगभूमि (1924-25)

आधुनिक युग में मानव जिन पारिस्थितिक समस्याओं से त्रस्त है उसके बारे में वर्षों पहले ही प्रेमचंद जी ने अपनी रचना द्वारा हमें चेतावनी दी थीं। उनकी यह दीर्घ दृष्टि से जन्म हुए एक महत्वपूर्ण रचना है रंगभूमि। प्रस्तुत उपन्यास में औद्योगीकरण से उत्पन्न-समस्या ही मुख्य विषय है। इसलिए 'रंगभूमि' को भारत का प्रथम पारिस्थितिक उपन्यास मानने में कोई गलती नहीं है।

साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद का आगमन हिन्दी साहित्य जगत में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया। तब तक के हिन्दी उपन्यास ने अपने घटना-प्रधान, मनोरंजक, उपदेशात्मक रास्ते को छोडकर यथार्थ के धरातल पर प्रवेश किया। तब से लेकर हिन्दी साहित्य में सामाजिक जीवन यथार्थ की वास्तविक अभिव्यक्ति होने लगी। जब

देश में सामंतवाद का पतन और पूँजीवाद का उदय हुआ उसी युग में ही प्रेमचंद ने साहित्य के क्षेत्र में अपना कदम रखा था। अंग्रेज़ों ने अपने कल-कारखानोंवाली विकास नीति को देश में फैलाने की निरंतर कोशिश में थी। इसलिए प्रेमचंद की रचनाओं में भी इसका झलक होना स्वाभाविक था।

रंगभूमि का प्रकाशन सन् 1924-25 काल में ही हुआ था। प्रस्तुत उपन्यास में तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक परिवेश का चित्रण मिलता है और साथ ही साथ पूँजीवादी व्यवस्था के आगमन से टूटनेवाली पुरानी मान्यताओं एवं मूल्यों पर भी विचार किये गये हैं। उपन्यास का नायक सूरदास एक अंधा भिखारी है। कई आलोचकों का मत है कि रंगभूमि का सूरदास, इतिहास-पुरुष गाँधीजी का प्रतिनिधित्व करता है। सूरदास सत्य, अहिंसा और त्याग पर बल देता है, अन्याय का विरोध करता है और अपने गाँव की संस्कृति और सरलता को बचाने का अथक प्रयास करता है।

मानव अपने आरंभिक काल से लेकर प्रकृति के साथ सकारात्मक संबंध रखते थे। लेकिन जब उसका ध्यान प्रगति की ओर अग्रसर होने लगा तब से प्रकृति उनके लिए उपभोग की वस्तु होने लगी। मशीनों के आविष्कार से इनका रास्ता और भी सरल और सुविधाजनक हो गया। मशीनों की सहायता से वह प्रकृति का शोषण करने लगा और उसके लिए नाम भी रखा कि औद्योगिक क्रांति। इसकी वजह से आर्थिक उन्नति और भौतिक सुख-सुविधाओं को लक्ष्य करके प्राकृतिक संसाधनों की लूट करने लगी। इसे आधुनिक सभ्यता नाम से पुकारने लगी। इस आधुनिक सभ्यता सिर्फ पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली की देन है। आज स्थिति यह हो गयी है कि पृथ्वी में मानव समेत सभी जीव-जंतुओं का अस्तित्व खतरे में पड गया है। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप उत्पन्न समस्याओं से संपूर्ण दुनिया त्रस्त है। फिर भी उसकी रफतार

कम करके प्रकृति की रक्षा के लिए कोई चारा अभी तक किसी भी देश में स्वीकार नहीं किया गया है।

असल में औद्योगीकरण का उद्देश्य है कि बडी-बडी समाजोपयोगी चीज़ें सस्ते-से-सस्ते दामों में आम जनता तक पहूँचाना, हज़ारों बेकार लोगों को समुचित रोज़गार प्रदान करना, देश की आर्थिक उन्नति में सहायता देना आदि। लेकिन पूँजीपति इन उद्देश्यों की पूर्ती के लिए नहीं बल्कि सिर्फ अपनी आर्थिक उन्नति ही लक्ष्य करते हैं। इसलिए वह मनमानी तरीके से कल-कारख़ाना चालाता है और प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करता है। सरकार भी इन्हें सहायता देती है। गाँधीजी औद्योगीकरण के इस पक्ष का ही विरोध किया था। उनका मत था-"मुझे आपत्ति स्वयं मशीनों पर नहीं, बल्कि उनके लिए पागलपन है। ..... मेरा उद्देश्य यंत्रों का सर्वथा नाश नहीं वरन् उनकी सीमा बाँधना है। यन्त्र का अच्छा उपयोग यही होगा कि वह मनुष्य के श्रम में मदद करें और आसान बनाये।"[1]

उपन्यास का क्षेत्र बनारस के निकट का पाँडेपुर गाँव है। वहाँ सूरदास को अपने पूर्वजों से विरासत में मिली कुछ ज़मीन है, जिसे सूरदास बेहद प्यार करता था। क्योंकि वह उस ज़मीन को बाप-दादों की यादगार समझता था। इसलिए वह उस ज़मीन गाँववालों के हितार्थ वैसे ही छोड दिया। उसकी इच्छा थी कि वहाँ धर्मशाला, मंदिर और कुआँ बनाऐं। यही नहीं तीन-चार गाँवों के बीच वही एक ऐसी ज़मीन है, जिसमें पूरे गाँव के पशु चरते हैं। जॉनसेवक नामक एक व्यापारी, जो स्वार्थ-सेवी पूँजीपतियों का प्रतीक है, जिन्होंने सूरदास की उस ज़मीन को ख़रीदकर वहाँ एक सिगरेट का कारख़ाना ख़ोलना चाहता है। इस व्यवसाय के बारे में ज़्यादा से ज़्यादा जानकारी प्राप्त करने के लिए उसने अपने बेटे को अमेरिका भेज

दिया था। लेकिन सूरदास अपनी ज़मीन बेचना नहीं चाहता। उसका कथन था- "साहब, इस ज़मीन से मुहल्लेवालों का बडा उपकार होता है। कहीं एक अंगुल-भर चरी नहीं है। आसपास से सब ढोर यहीं चरने आते हैं। बेच दूँगा, तो ढोरों के लिए कोई ठिकाना न रह जाएगा।"[2] सूरदास को अपनी ज़मीन से कोई वैयक्तिक लाभ नहीं है। फिर भी वह अपनी ज़मीन बेचना नहीं चाहता। उनका मत है कि कारख्राना ख्रोलने से गाँव की सरलता नष्ट हो जाएगी। कारख्राने से गाँव में ताडी-शराब का प्रचार बढ जाएगा। वेश्याएँ आकर बस जाएँगी। परदेसी आदमी गाँव की बहू-बेटियों को घूरेंगे। देहात के किसान अपना काम छोडकर मज़दूरी के लालच में दौडेंगे। शहर की जैसी स्थिति है, वैसी गाँव की भी हो जाएगी। मुहल्ले का वातावरण दूषित होगा। वैसे गाँव का शाँति-भंग हो जाएगा। इन सबका पाप अपने सिर पर पडेगा।

भारतवर्ष के अधिकांश लोग गाँव में ही रहते हैं। गाँववालों के आर्थिक जीवन का प्रमुख साधन हैं ख्रेती और पशुपालन। गाँव में कारख्राना ख्रोलने से ख्रेती और पशुपालन का क्षेत्र नष्ट हो जाता है। इसलिए ही सूरदास अपनी ज़मीन बेचने का इनकार करता है। लेकिन जॉनसेवक अपना कारख्राना गाँववालों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध करने का प्रयास करता है। यही पूँजीपतियों की चालाकी है। जॉनसेवक का कथन था-"यहाँ एक कारख्राना ख्रोलूँगा, जिससे देश और जाति की उन्नति होगी, गरीबों का उपकार होगा, हज़ारों आदमियों की रोटियाँ चलेंगी। इसका यश भी तुम्हीं को होगा।"[3] लेकिन जॉनसेवक का कोई तर्क मानने को सूरदास तैयार नहीं था। उनको जानता था कि गाँव में उद्योगों को ले जाना न गाँव के हित में है और न गाँववालों के हित में। वह भी सिगरेट जैसी बुरी चीज़ों का कारख्राना।

इसका लाभ सिर्फ पूँजीपतियों को मिलता है। जॉनसेवक ने कुंवर साहब और राजा महेन्द्र को काबू में लाकर उनकी सहायता से ज़मीन ख़रीदने का प्रयास किया है। उन दोनों से जॉनसेवक का कथन था कि अपने कारख़ाने से गाँव तथा देश की व्यावसायिक उन्नति होगी तथा करोडों रुपये का धनप्रवाह विदेश जाने से रोक भी हो सकें। कुंवर साहब में भी ऐसा एक संदेह था - "तंबाकू कोई अच्छी चीज़ तो नहीं है। इसकी गणना मादक वस्तुओं में है और स्वास्थ्य पर इसका बुरा असर पडता है।"[4] लेकिन जॉनसेवक के पास किसी भी तर्क के लिए जवाब है। उसका कथन था- "ये सब डाक्टरों की कोरी कल्पनाएँ हैं, जिन पर गंभीर विचार करना हास्यास्पद है। डॉक्टरों के आदेशानुसार हम जीवन व्यतीत करना चाहें, तो जीवन का अंत ही हो जायें। .... व्यवसायी लोग इन गोरखधंधों में नहीं पडते। उनका लक्ष्य केवल वर्तमान परिस्थितियों पर रहता है। हम देखते हैं कि इस देश में विदेश से करोडों रुपये का सिगरेट और सिगार आते हैं। हमारा कर्तव्य है कि इस धन-प्रवाह को विदेश जाने से रोकें। इसके बगैर हमारा आर्थिक जीवन कभी पनप नहीं सकता।"[5] यहाँ प्रेमचंद ने जॉनसेवक के माध्यम से पूँजीपतियों की स्वार्थपरता और धन-लोलुपता पर प्रकाश डाला है। वे बडे-बडे मिलों और कारख़ानों की स्थापना किसी उदात्त भावना से नहीं, धन-लोभ से ही करते हैं।

अंत में प्रकृति प्रेमी सूरदास की ज़मीन जॉनसेवक उनसे छीन लेता है। वहाँ सिगरेड का कारख़ाना उभर आता है और औद्योगीकरण का दुष्प्रभाव गाँव में तेज़ी से फैलने लगा। गाँव की कृषि-भूमि कारख़ानों और मकानों से भरने लगी। फलस्वरूप खेती कम हो गयी। किसान धीरे-धीरे मज़दूर में तब्दील होने लगे। शेष कृषि भूमि पर लोग चावल, गेहूँ की खेती करना नहीं चाहते थे, जो मुनाफा देता है वह उपजाने

लगे। इसका ज़िक्र उपन्यास में इस प्रकार दिया है कि जॉनसेवक से उसका बेटा यह आशंका प्रकट की है कि गाँव में तंबाकू की खेती कम ही की जाती है। इसलिए माल मिलना कठिन होगा। इसके लिए जॉनसेवक का जवाब था - "कच्चा माल पैदा कराना तुम्हारा काम होगा। किसान को ऊख या जौ-गेहूँ से कोई प्रेम नहीं होता। वह जिस जिन्स के पैदा करने में अपना लाभ देखेगा वही पैदा करेगा। इसकी कोई चिंता नहीं है।"[6] इस प्रकार पूँजीपति के लालच का शिकार बनकर पाँडेपुर बदल गया है। हमारे समाज में जॉनसेवक जैसे स्वार्थ सेवी पूँजीपतियों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ रही है। उनका लक्ष्य सिर्फ धनार्जन है। उन्हें प्रकृति या अन्य जीव-जंतुओं के बारे में कोई चिंता नहीं है। प्रेमचंद कहते हैं कि जॉनसेवक धन का ऐसा भक्त बन गया है कि धनार्जन की दौड में उन्हें अपना परिवार नष्ट हो जाता है। लेकिन इसके बारे में जॉनसेवक को कोई परवाह नहीं है। वह अपने मिल के विस्तार के लिए पूरी बस्ती खाली करवाने की चिंता में है। सूरदास इसके विरुद्ध सत्याग्रह करता है। अंत में गोली की आहत से प्रकृति प्रेमी सूरदास मर जाता है।

प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा प्रेमचंद ने यह बताने की कोशिश की है कि साम्राज्यवादी शक्तियाँ मिट्टी और प्रकृति से मनुष्य को अलग करती हैं। बडी-बडी मिलें और फाक्टरियाँ हमारी सभ्यता और मानवीयता का नाश करती हैं और औद्योगिक संस्कृति का विकास करता है। औद्योगीकरण का मतलब केवल पूँजीपतियों को अधिक समृद्ध बनाना और सामन्तों की शक्ति में अभिवृद्धि करना है। प्रेमचंद हमारे गाँवों की सरलता और सभ्यता को बचाना चाहते थे। किंतु उनका स्वप्न सिर्फ स्वप्न ही रह जाता है। उपन्यास में सूरदास का समस्त संघर्ष अपने गाँव और प्रकृति की रक्षा के लिए था। किंतु सबकुछ असफल हो गया।

प्रस्तुत उपन्यास के ज़रिये प्रेमचंद ने यह सिद्ध करने का सफल प्रयास किया है कि पर्यावरण विनाश पूँजीपतियों की स्वार्थ मानसिकता का परिणाम है। धनार्जन की दौड में ये लोग अपना अस्तित्व भूल जाते हैं। आज हम विकास के नाम पर उसी डाल ही काट रहे हैं कि जिस पर हम बैठे हैं। इसलिए हमारी विकास योजनाएँ ऐसी होनी चाहिए जिसमें पर्यावरण संरक्षण को भी स्थान दिया जाए। वरन् विकास ही रह जाएगा उसका लाभ उठाने के लिए मानव नहीं रहेंगे। अत्यधिक उत्पादन के नशे में प्रकृति का नाश करनेवाले मानव को यह भी याद रखना अनिवार्य है कि अपना अस्तित्व व भविष्य इसी पृथ्वी में समाहित है। इसके बाहर हमें अस्तित्व नहीं है। इसलिए पर्यावरण संरक्षण अत्यंत अनिवार्य है।

अपने समय में पारिस्थितिक समस्या की कोई आशंका न होने के बावजूद भी प्रेमचंद ने औद्योगीकरण के दुष्परिणामों को पहचाना था। उन्होंने इसके बारे में जनता को जागरूक करने की कोशिश भी की थी। रंगभूमि के माध्यम से पाठकों को चेतावनी भी दी है। उनकी भविष्यवाणी आज बिल्कुल सही सिद्ध हुई है। इसलिए हमें यह कहने में कोई शंका नहीं है कि 'रंगभूमि' भारत का प्रथम पारिस्थितिक उपन्यास है।

3.2 सावधान! नीचे आग है (1986)

हिन्दी के प्रतिभासंपन्न रचनाकार संजीव द्वारा लिखा गया उपन्यास है सावधान! नीचे आग है। सन् 1986 में प्रकाशित प्रस्तुत उपन्यास कोयला खदानों के खतरनाक माहौल में जीने के लिए अभिशप्त मज़दूरों की जीवनगाथा है। साथ ही साथ इसमें आधुनिक युग में विकास के नाम पर प्रकृति पर होनेवाले हस्तक्षेप का भी चित्रण किया गया है। उपन्यास का परिवेश बिहार के झरिया, चंदनपुर, धनबाद

कोयलांचल हैं। 'सतह के नीचे' और 'सतह के ऊपर' इन दो खण्डों में विभक्त किये उपन्यास की शुरूआत फलेशबैक शैली में ही की है। कहा जाता है कि इसका कथ्य सन् 1975 दिसंबर 27 में भारत के झरिया कोयलांचल में हुई दुर्घटना पर आधारित है। पहले खण्ड में खदान के अंदर जलप्लावन में फँसकर उन्नीस दिन तक ज़िंदगी और मौत के बीच की टकराहट से जूझ रहे ऊधमसिंह और उनके साथियों की भीषण तथा दर्दनाक स्थिति का चित्रण है। ऊधमसिंह की यादों के रूप में पहला खण्ड आगे बढता है। इसमें खदानों की संचालन प्रणाली, मज़दूरों की नारकीय ज़िन्दगी, माफिया और ठेकेदारों द्वारा मज़दूरों का शोषण, अत्याचार, अवैध खनन और जिससे उत्पन्न पारिस्थितिक आघात आदि कई बातों पर चर्चा की है। दूसरे खण्ड में अपराधी मेनेजमेंट की रक्षा के लिए अधिकारियों से लेकर न्यायाधीश तक होनेवाले भ्रष्टाचार का खुला चित्रण किया गया है।

किसी भी देश की आर्थिक उन्नति में खनिज पदार्थों का महत्वपूर्ण स्थान है। लेकिन चिंतनीय बात तो यह है कि आज खनन कार्य सिर्फ देश की उन्नति को लक्ष्य बनाकर ही हो रहा है? क्योंकि आज हमारे देश में वैध से ज़्यादा अवैध खनन ही कार्यरत हैं। देश में अधिकांश खदान माफिया लोग ही चलाते हैं। सरकार, नेता, अधिकारी सब लोग इनकी कठपुतलियाँ हैं। इसलिए अवैध खनन पर रोकथाम लगाना कभी-भी संभव नहीं है। इन खदानों का दुष्प्रभाव सबसे ज़्यादा पडता है हमारी प्रकृति पर। अवैध खनन से उत्पन्न इन समस्याओं के प्रति पाठकों का ध्यान आकर्षित कराने का एक सफल प्रयास है 'सावधान! नीचे आग है।'

पंजाब के निवासी ऊधमसिंह और बंगाल के आशीष कुमार घोषाल, दोनों उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं, वे अप्रेंटिस ट्रेनिंग के लिए ही चंदनपुर आये थे। चंदनपुर

खदान भारत की प्रौढता का प्रतीक माना जाता है, जो देश के अन्य खदानों से बिलकुल अलग है। उपन्यास में बताया है- "चंदनपुर इज़ चंदनपुर। द प्राइड ऑफ आवर कंट्री। ..... ऊपर से नीचे तक यंत्रीकृत। .... चंदनपुर को समझना आसान नहीं। द मोस्ट मोडर्न एंड द मोस्ट कोम्पलिकेटेड। चंदनपुर एक पहेली है। जिसे हर किसी को खुद ही बूझना पडता है।"[7] लेकिन अवैध खनन ने चंदनपुर को तहस-नहस किया है। असल में माफिया लोग ही खदान चलाते हैं। मज़दूरों का यूनियन भी इन्हीं के अधीन में हैं। पुलीस, अफसर, अधिकारी आदि सब इन्हीं का नौकर हैं। प्रकृति और मज़दूर इन लोगों के बहुआयामी शोषण का शिकार हैं।

टेकनिकल ट्रेनिंग सेंटर में हुए अप्रेंटिससिप टेस्ट में ऊधमसिंह, आशीष, जवाहर तीनों को ही काम मिले। पहले दिन में ही उन्हें खदान की संचालन प्रणाली तथा खदान के नियमों के बारे में समझाया था। सरदार चन्द्र किशोर सिंह, गजाधर सिंह, अनूपसिंह आदि कॉंट्रैक्टर ही खदान चलाते थे। हर नेताओं के लिए प्रत्येक यूनियन भी है। सारे मज़दूर किसी भी यूनियन में शामिल होना अनिवार्य थे।

कोयला खदान झरिया तथा चंदनपुर इलाकों को जिस प्रकार प्रभावित किया है वह उपन्यास के शुरू-शुरू से ही हम समझ सकते हैं। लेखक ने बताया है -"आग की नदी दामोदर और धुआँसे का शहर झरिया! कुहासा नहीं, धुआँसा! धूल, धुआँ और कुहासा- इनसे मिलकर एक शब्द बनता है धुआँसा। इस धुआँसे के जाल में उलझ तारों की झिलमिलाहट लिये जल रही हैं दूर-दूर की बत्तियाँ!... श्मशान की चिता की तरह जगह-जगह जलते कोयले। विशाल खात-गह्वारों में कसमसाती पोखरिया खादों में मलबों से झनकारता झँय-झाँय सन्नाटा।"[8] खनन कार्य झरिया शहर को नाशोन्मुख बना दिया है। वहाँ के जल-वायु-मिट्टी प्रदूषित हुए हैं, जंगलों

का नाश हो रहा है, पेड-पौधे, पशु-पक्षी पर भी इसका बुरा असर पड गये हैं। लेखक बताते हैं कि अब चंदनपुर में सिर्फ काले धूल के बगुले ही उड रहे हैं। मीथेन, कार्बन मोनोक्सैड, आदि गैसों से भरे धुआँ से पेड-पौधों का भी नाश हुए है। पेड-पौधों के पत्ते रंगहीन हो जाते हैं और काली पडकर नष्ट होते हैं। संजीव ने कहीं-कहीं चंदनपुर को 'धुआँसे का शहर', 'दुनिया के सबसे गंदा शहर' आदि नामों से विशेषित किया है। खदानों में कामकरनेवालों की स्थिति भी अत्यंत दयनीय है। गाँव में वायु प्रदूषण इतना बढ गया है कि साँस लेना दूभर हो गया है। खदानों में धूलि की सांद्रता 1755 कण प्रतिदिन है। ऐसे वातावरण में साँस लेते वक्त धूलि फेफडों में जम जाती हैं और सैंड न्यूमोकोनियोसिस नामक बीमारी का कारण बन जाता है।

खनन कार्य से इलाके में जलप्रदूषण भी बढ रहा है। खनिज उद्योग में बहुत सारी पानी की ज़रूरत है। इसलिए ही पूँजीपति ने कुएँ, पोखरा, नदी सारी जलस्रोतों को अपनी निजी संपत्ति बनाकर रखा है। खनन कार्य की वजह से बाहर निकलनेवाले अपशिष्ट पदार्थों से युक्त पानी शेष जलस्रोतों को भी प्रदूषित करते हैं। पानी की कमी से पूरा इलाका त्रस्त है। इलाके में बहती दामोदर नदी की स्थिति भी अत्यंत दयनीय है। उपन्यास में कहीं-कहीं नदी का चित्रण इस प्रकार दिया है कि 'आग की नदी दामोदर', 'दामोदर के छिछले काले पानी', 'दामोदर की छिछली पतली धार', 'दामोदर के काले कुत्सित जल' आदि।

गाँववालों की एक अन्य बडी समस्या है जमीन बैठना। गाँव के नीचे खदानों में हर वक्त कोयला जल रहा है। इसलिए अंगारडीहा ज़मीन बैठ रही है।

इस प्रकार गाँववाले एक तरफ कोयला खदानों से उत्पन्न पारिस्थितिक समस्याओं से त्रस्त हैं तो दूसरी ओर पूँजीपति, ठेकेदार, माफिया द्वारा होनेवाले

शोषण, विस्थापन आदि से जूझ रहे हैं। खदानों में मर्दों से ज्यादा औरतों को ही काम पर रखते थे। काम के बहाने ठेकेदारों, अफसरों द्वारा औरतों का शोषण किया जा रहा है। ये लोग औरतों को सिर्फ अपनी भोग-विलास की वस्तु के रूप में ही देखते हैं। खदानों में मर्दों जैसे हड्डी तोडकर काम करने पर भी औरतों को पर्याप्त वेतन नहीं मिलते थे। इस प्रकार औरत शारीरिक और मानसिक दोनों स्तर से शोषण का शिकार हैं।

खदानों में पेमेंट के दिन गुंडों द्वारा मज़दूरों से उनके वेतन से एक हिस्सा छीन लिया गया था। पैसा न देनेवाले मज़दूरों को मार-पीटकर उनसे पैसा वसूल करते थे।

ज़्यादा-से-ज़्यादा कोयला खनन करने के लिए भभीखन राय जैसे पूँजीपति गाँववालों को डरा-धमकाकर या झूठा वादा देकर ज़मीन हडप लेते थे। झानू का कथन है-"क्या सुनेगा? आस्ते-आस्ते सारा ज़मीन दखल कर लिया हमारा, बोलो हम कहाँ जायेगा, बोलो।.... बोला नौकरी देगा, पानी देगा, स्कूल खोलेगा- ये कर देगा, वो कर देगा, सोना से मढ देगा। क्या किया, बोलो? ... हम अपना मुशीबत बताने गया तो पोसे गुंडों से पिटवाया।"[9] इस प्रकार पूरा चंदनपुर अब पूँजीपतियों के हाथ में हैं।

गाँव के आदिवासी लोगों के नेता थे झानू। अपने समाज के प्रति होनेवाले इन अत्याचारों के विरुद्ध झानू संघर्ष करता है। लेकिन उन्हें गुंडों द्वारा पिटवाता है और उसके घर की औरतों पर बुरा व्यवहार करता है। झानू अकेला हो जाता है और सोचता है- "हियाँ पे सब गियान पाप है, कुछ लोग हमरो से ज़्यादा होशियार हो गये हैं, खंड-खंड लडाई लगेगा, खंड-खंड स्वास्थ्य के लिए, खंड-खंड मौवन मरेगा कुत्ता

का मौवत।"[10] चंदनपुर के सबसे बुजुर्ग रामप्रसाद ओझा का कथन था कि अब गाँववालों पर जो अत्याचार चल रहा है, जो कोई नयी बात नहीं है, सदियों पहले ही पूरे चंदनपुर गाँव पर ऐसा ही चल रहा था। अब चंदनपुर माफियाओं के अधीन में हैं अब भी गाँववाले उनके अत्याचारों को सहकर जी रहे हैं।

खदानों में मज़दूरों को कोई सुरक्षा नहीं थे। बडे-बडे गड्ढों में जोखिम उठाकर वे काम करते थे। ब्लास्टिंग भी मज़दूरों से ही करवाते थे। खनन के उपरांत कंपनीवाले गड्ढों को भरते नहीं थे। वे वैसे ही छोड देते थे और बरसात के दिन उनमें पानी भर जाता है और मच्छर पलते हैं। गाँव में सेरिब्रल मलेरिया नामक महामारी फैल जाती है। ऐसे गड्ढों के सामने या नदी के पास ही अगला खनन कार्य शुरू करता है। इसलिए खदानों के अंदर सुरंगों में पानी रिस्ते हैं। कभी-कभी मज़दूर पानी को किसी ओर मोडकर काम करते हैं। लेकिन एक बार खदान के अंदर पानी रोक नहीं सका। अफसर और ठेकेदार इसके प्रति लापरवाही थे। उनका कथन था कि-खदान है तो पानी होगा, आग होगी, हवा की कमी होगी, इट्स क्वाइट नेचुरल।"[11] लेकिन रात में पानी खदान के अंदर भरने लगा और पूरा खदान डूब गया। ऊधमसिंह सहित कई मज़दूर खदान के अंदर फँस गये। सतह के ऊपर मज़दूरों को बचाने के लिए कोशिश की जा रही थी। विभिन्न राष्ट्रों द्वारा निर्मित हाई पवर पंप लाकर पन्द्रह दिन पंपिग करने से ही खदान से पूरा पानी बाहर निकल सका। लेकिन किसी मज़दूर को बचा नहीं सका। ऊधमसिंह और उनके साथी उन्नीस दिन तक सुरंगों में ही रहे। एक-एक दिन बीतने पर भूख, डर आदि के कारण हर एक व्यक्ति की मृत्यु हुई। इतनी विपरीत परिस्थितियों में भी ऊधमसिंह ने मेनेजमेंट की लापरवाही, प्रलय में फँसे मज़दूरों की हालत, जलप्लावन की विभीषिका

आदि के बारे में अपनी डायरी में दर्ज किया। उन्नीसवीं दिन ऊधमसिंह भी मृत्यु का वरण किया। अपने अंतिम समय में अपने ख़ून से वह डायरी में लिख्रा- "मेनेजमेंट हथियारा है। मैं ने दुनिया का अंत बहुत करीब से देख्रा है। अपनी अहंमन्यता या सनक में डूबे कुछ एक पापी महज अपने सामान्य से स्वार्थ के लिए दुनिया को श्मशान बना जाऐंगे, फिर कोई मसीहा बचाने नहीं आयेगा। वक्त रहते भेडियों और कुत्तों को पहचानकर चुन-चुनकर इनका मुनाफा कर दो। हमने इस सत्य को पहचाना, मगर तब तक देर... वक्त रहते तुम भी सावधान हो जाओ- डूबकर मरनेवाले मइनरों का आख्रिरी अनुभव है यह। कहीं तुम्हें भी देर न हो जाय।मैनेजमेंट हत्यारा है चारे, ठँसानी...।"[12] असल में ऊधमसिंह का यह कथन संपूर्ण दुनिया के लिए एक संदेश है। इसके द्वारा लेख्रक हमें यह चेतावनी देते हैं कि अपने स्वार्थ के लिए प्रकृति का नाश करनेवाले सभी लोगों के प्रति सावधान रहना है।

लेकिन ऊधमसिंह की डायरी और मज़दूरों की पोस्टमोर्टम रिपोर्ट आदि सब अधिकारियों ने दबा दिया। जाँच कमीशन से वारंट मिले सारे गवाहों को मैनेजमेंट पैसे से प्रभावित किया। गवाहों में कुछ लोगों को छुट्टी देकर घर भेजा। मैनेजमेंट के विरुद्ध गवाही देनेवाले लोगों की हत्या की। इसलिए गाँववालों को उचित था कि सच्चाइयों को भूल जाना और चुपकर रहना। लेकिन आशीष कुमार ख्रदान के भ्रष्टाचार को सबके सामने लाने का प्रयास किया। वह सर्वे का नकशा, वेन्टिलेशन की फाइल, ऊधम की डायरियों के पन्ने आदि न्यायाधीश को भेज दिया। लेकिन न्यायाधीश भी मेनेजमेंट के आदमी थे। इसलिए आशीष द्वारा भेज दिये पेपर्स को छिपा लिया और उनको पागल घोषित किया। दुर्घटना के बाद ख्रदान के

आधुनिकीकरण के लिए वैल्ड बैंक से मिले पैसा, मैनेजमेंट ने दुर्घटना में अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए ही उपयुक्त किया। इतनी बडी दुर्घटना के बाद भी खदानों के कार्यक्रमों में कोई परिवर्तन लाने को वे तैयार नहीं थे। कई सालों बीतने के बाद, अब भी चंदनपुर की समस्याओं में कोई बदलाव नहीं आया है।

3.3 धार (1990)

समकालीन लेखक संजीव का सन् 1990 में प्रकाशित उपन्यास है 'धार'। प्रस्तुत उपन्यास में उन्होंने यह चित्रित करने का सफल प्रयास किया है कि तेजाब की फैक्टरी और अवैध खनन जिस प्रकार एक हरे-भरे और समृद्ध इलाके को बंजर बना देते हैं। आधुनिक युग में विकास के नाम पर दिन-प्रतिदिन बढती जा रही औद्योगीकरण की प्रवृत्तियाँ प्रकृति पर भारी नुक्सान पहूँचाती हैं, खासकर देश की वन-संपत्ति पर। इसलिए आदिवासी समाज ही विकास के दुष्प्रभावों को सबसे पहले और सबसे ज़्यादा झेलना पडते हैं। जंगलों में आदिवासियों की ज़मीन अमूल्य खनिज पदार्थों का खजाना है। इसलिए उनके जंगल-ज़मीन और जीवन-यौवन पर साधारण ठेकेदार से लेकर मल्टीनेशनल्स तक की नज़र है, और आदिवासी इन सबके बहुआयामी शोषण का शिकार बन जाते हैं। विकास के नाम पर आदिवासी अपनी जंगल-ज़मीन-संस्कृति से बेदखल किये जाते हैं। विस्थापन इनके सामने सबसे बडी चुनौती बन गयी है।

उपन्यास की कथाभूमि झारखंड के संथाल आदिवासियों का इलाका बाँसगडा है और प्रमुख पात्र है मैना। अपनी जाति और पर्यावरण की रक्षा के लिए लाखों कोशिश करनेवाली मैना के चित्रण के साथ-साथ संजीव ने बाँसगडा अंचल के खनन-दोहन उसके प्रतिरोध में उठती आदिवासी चेतना, लूट की सरकारी और निजी

योजनाओं के विरुद्ध 'जनख़दान' के रूप में एक तरकीब, पारिस्थितिक आघात आदि कई बातों पर चर्चा की हैं। उपन्यास की भूमिका में कहा है कि विकास के नाम पर विनाश और उद्‌भव के नाम पर पराभव और शैर्य की परंपरा को दलाल परंपरा में रेड्यूस करने के विरुद्ध एक सक्षम प्रतिवाद है धार। बाहरी और अन्दरूनी पचासों झंझावतों से जूझती, दलाल बनते जा रहे पिता, पति, पुत्री, परिजन, पुरजन और पतनशील परंपराओं से जूझती मैना हिन्दी का एक अविस्मरणीय चरित्र है।

जेल से रिहाई होनेवाली मैना से ही उपन्यास की शुरूआत होती है। अपने गाँव में ज़हर फैलानेवाले तेजाब की फाक्टरी के विरुद्ध संघर्ष करने के कारण ही वह जेल में कैद हुई। वहाँ जेलर द्वारा उसपर अत्याचार होता है और वह एक बच्चे को जन्म देता है। रिहाई के वक्त जेलर के पास छोडकर गये उस बच्चे को मंगर अपने साथ ले जाने की कोशिश करता है। जेलर द्वारा मैना पर हुए अत्याचार के लिए सज़ा भोगनेवाला बेकसूर आदमी था मंगर। मैना, मंगर और बच्चे को अपने साथ गाँव ले जाती है। गाँव में लौट आने के बाद भी वह तेजाब की फैक्टरी और अवैध खनन के विरुद्ध संघर्ष करती है और अंत में अविनाश शर्मा और उनके साथियों की सहायता से सफलता हासिल करती है।

आधुनिक युग में औद्योगीकरण बहुत तेज़ी से आगे बढ रहा है। हर एक देश की प्रगति तथा आर्थिक उन्नति में औद्योगिक क्रांति का महत्वपूर्ण स्थान है। लेकिन हम सिर्फ उसके सकारात्मक पक्ष पर ही ध्यान देते हैं, और इसके नकारात्मक पक्ष को नज़रअंदाज़ करते हैं। लेकिन औद्योगीकरण के नकारात्मक पक्ष पर नज़र डालें तो अत्यंत भयावह ही दिख्र रहा है। आज औद्योगीकरण का लक्षय देश की उन्नति से हटकर वैयक्तिक लाभ पर केन्द्रित हो गया है। पूँजीपति ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफा

कमाने के लक्ष्य में प्रकृति के साथ अपनी मनमानी व्यवहार करते हैं। अब उनके लिए प्रकृति सिर्फ लूट की वस्तु बन गयी है। ऐसी पूँजीवादी मानसिकता को व्यक्त करके बढते जा रहे पारिस्थितिक आघातों के प्रति पाठकों को जागृत कराना ही लेखक का उद्देश्य हैं।

उपन्यास में लेखक ने बताया है कि औद्योगीकरण से उत्पन्न समस्याओं से त्रस्त बाँसगडा गाँव अपनी आसन्न मृत्यु की प्रतीक्षा में है। तेजाब की फाक्टरी और अवैध खनन से गाँव में पारिस्थितिक संकट दिन-प्रतिदिन बढ रहे हैं। वहाँ की मिट्टी बंजर बन गयी है, धूप और धुआँ से गाँव जल रहा है, अम्ल वर्षा आम बात बन गयी है, कुएँ-तालाब-पोखर आदि जलस्रोत खराब हो जाते हैं और गाँववाले शुद्ध पानी के लिए तडप रहे हैं। धुआँ से भरे वायु में साँस लेना मुश्किल हो गया है और गाँववाले कई तरह की बीमारियों से पीडित हैं। अब गाँव में सिर्फ खाँसते और ऊबकाइयों की आवाज़ें ही सुन सकते हैं। अवैध खनन के लिए जंगलों की अंधाधुंध कटाई हो रही हैं। फैक्टरी और खदानों के कारण मिट्टी की उर्वरता नष्ट हुई है। इसलिए गाँववाले अपनी परंपरागत कृषि कार्य से वंचित रहते हैं। मैना का कथन है- "पहले खेती में तीन महीने का मोटा-सोटा अनाज भी तो मिल जाता था और अब जब से फैक्टरी खुला- एक तिरिन भी नहीं। एक्को कुआँ-पोखरा का पानी पीने लायक रह गया है। राँची, हज़ारीबाग से बुलवाकर बेचारे आदमी लोगों को यहाँ रोज़ी देने के लिए ले आये थे कि जान मारने के लिए कितना बेकत (व्यक्ति) खाँसते-खाँसते बेमार होके भागा। हमको सोचा, सैंताल आदिवासी ही का करेगा? हमी लोग का छाती पे खोलना था ज़हर का फैटरी।"[13]

मैना का बाप टैंगर तेजाब की फैक्टरी को अपने गाँव की अन्नपूरना देवी मानता था। इसलिए ही वह फैक्टरी के लिए ज़मीन दिया। पूँजीपति महेन्दर बाबू के जाल में फँसकर उन्होंने अपनी ज़मीन फैक्टरी के लिए दान में दे दिया। महेन्दर बाबू का कथन था- "गाँव के लोग बेकारी से त्रस्त है, सब भूख्र और गरीबी से मर जाएगा। अपनी ज़मीन मिले तो हम वहाँ कारख्राना शुरू कर देंगे और गाँव के लोगों को रोज़ी-रोटी का अवसर होगा।"[14] यह सुनकर पुन्यात्मा टैंगर ने महेन्दर बाबू को इस ख्रुशी में अपनी सारी ज़मीन फैक्टरी के लिए दान में दे दिया कि उससे गाँव की गरीबी मिटा सकें। लेकिन तेजाब की फैक्टरी संथालों के जीवन में ज़हर ही घोला। इसलिए मैना के नेतृत्व में गाँववाले उस फैक्टरी का विरोध करते हैं और वहाँ काम करने से इनकार करते हैं। पूँजीपति दूसरी इलाकों से मज़दूरों को लाए। लेकिन वे सब ख्राँसते- ख्रँसते बीमार होकर भाग गए। फेक्टरी बंद करवाने की लडाई में मैना को दलाल बन गये अपने पिता और पति को छोडना पडा, और वह पुलीस, ठेकेदार, गुंडों के शोषण का शिकार बन गयी। फिर भी वह अपने लक्ष्य से एक कदम भी पीछे नहीं हटी।

बाँसगडा के पारिस्थितिक नाश का एक और कारण है अवैध ख्रनन। पूँजीपति आदिवासियों को डरा धमकाकर, झूठा वादा देकर उनसे ज़मीन छीन लेते हैं और जंगलों की साफ सफाई करके अवैध ख्रनन करते हैं। जीवन बिताने के लिए और कोई चारा न होने के कारण गाँववाले दिन-रात इन ख्रदानों में जोख्रिम उठाकर काम करने के लिए मज़बूर बन जाते हैं। अवैध ख्रनन से बाँसगडा में पर्यावरण प्रदूषण बढ रहे हैं। लेख्रक बताते हैं "वैध ख्रनन अकेले बाँसगडा की ही समस्या नहीं है बलिक पूरे रानिगंज, आसनसोल, धनबाद, झरिया आदि देश के अनेक इलाके इससे अछूते

नहीं है।[15] अतः स्पष्ट हमारे देश के अधिकांश जंगली इलाकों की हालत बाँसगडा से बिलकुल भिन्न नहीं है। कंपनीवाले खनन कार्य के उपरांत होनेवाले गड़ढों को वैसे ही छोड देते हैं भरते नहीं। इसलिए वह क्षेत्र फिर किसी कार्य के लिए उपयुक्त नहीं होगा। यही नहीं इन गड्ढों में बरसात के दिन पानी भर जाता है और मच्छर पलते हैं और सेरिब्रल मलेरिया जैसी बीमारियों का कारण बन जाती है।

इस प्रकार बाँसगडा गाँव एक ओर फैक्टरी और अवैध खनन के दुष्प्रभावों से त्रस्त हैं तो दूसरी ओर पूँजीपति और ठेकेदारों आदि के द्वारा होनेवाले शोषण से भी मुक्त नहीं है। आदिवासी औरतें को शारीरिक व मानसिक दोनों स्तर से इन लोगों का अत्याचार सहना पडता है। इस प्रकार लेखक प्रस्तुत उपन्यास में आदिवसियों को इन समस्याओं के साथ-साथ, उनके जीवन, संस्कृति, रीति- रिवाज़, अंधविश्वास, अज्ञानता, अशिक्षा, बेरोज़गारी आदि कई बातों की चर्चा की है।

पारिस्थितिक स्त्रीवाद की दृष्टि से भी हम प्रस्तुत उपन्यास को देख सकते हैं। उपन्यास की नायिका मैना ऐसी एक सशक्त पात्र है जो सिर्फ अपनी जाति की ही नहीं बलिक पर्यावरण की भी रक्षा के लिए अथक प्रयास करती है। वह संथाल के नेता बनकर गाँव के लिए लड रही है और अंत में सफलता भी प्राप्त करती है।

उपन्यास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है लेखक द्वारा प्रस्तुत करनेवाले 'जनखदान' नामक तरकीब। लेखक अवैध खनन को रोकने के लिए जनखदान जैसी एक सुझाव को पाठकों के सामने रखे हैं। जनखदान जनता का खदान है। जिससे गाँववालों को बेहतर ज़िंदगी प्रदान कर सकती हैं। यह अवैध नहीं है और इसके ज़रिये सब गाँववालों को काम मिलता है। यह खदान किसी एक की नहीं बलिक सभी कामकरनेवालों की साझा होगी। खदान के आसपास गाँववालों के लिए

डॉक्टरी इलाज, बच्चों के लिए शिक्षा की सुविधाएँ, शुद्ध पानी की सुविधा सब होंगे। मज़दूरों को सिर्फ दिन में ही काम होगा। अविनाश शर्मा और उनके साथियों की इस तरकीब से पूरे गाँववाले सहमति प्रकट करते हैं। वैसे तेरह जनवरी में सब लोग मिलकर चतरपुर में जनख्रदान शुरू करते हैं, और सरकार को दरख्रवास्त देकर जनख्रदान सरकारी बनाने की कोशिश करती है। जनख्रदान के बारे में अविनाश शर्मा का कथन है कि यह जनख्रदान व्यक्तिगत स्वार्थ के ख्रिलाफ सामूहिक स्वार्थ की लडाई है। माफिया लोग देश और उसकी जनता से गद्दारी कर अपने जेब भरते हैं। इसके विरुद्ध उभर आयी एक आदर्श योजना है जनख्रदान।

जनख्रदान की वजह से प्रकृति पर पडनेवाले आघातों को ख्रासकर पेड-पाँधों की कटाई को हल करने के लिए मज़दूर और वनविभाग दोनों मिलकर सडक के दोनों ओर पेड-पौधे लगाने का निर्णय लेते हैं। इससे एक हद तक प्रदूषण मिटा सकें और पर्यावरण असंतुलन से बच सकें। यहाँ संजीव ने यह बताने की कोशिश की है कि औद्योगीकरण से उत्पन्न पारिस्थितिक आघातों को मिटाने के लिए इस प्रकार के फैसलों का लेना उचित होगा। विकास की नीतियाँ पर्यावरण के अनुकूल होनी चाहिए। पर्यावरण की रक्षा के लिए हमें एक साथ रहना चाहिए। एकता ही शक्ति है। एक साथ जुडकर आगे बढें तो विपरीत परिस्थितियों को भी अपना अनुकूल बदल सकता है। एक साथ आगे बढना ही धार है, धार की शक्ति है। शर्मा जी का कथन है-"तो साथियों, यह धार ही हमारी शक्ति है और धार का भोथरा होना ही मौत।...धार बरकरार रही तो सारा संसार ही आपका है। यह छोटी सी जनख्रदान भी किरकिरी बन गयी है आँख्र की। चारों तरह भेडिए गुर्रा रहे हैं...इसलिए हमें धार की ज़रूरत है, सतत सान से ताज़ा होती धार-चाहे हमें कोई भी कुर्बानी क्यों न देनी पडे।[16]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संजीव का 'धार' पारिस्थितिक सजगता की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। उपन्यास के ज़रिए उन्होंने पाठकों को यह आदेश भी देना चाहता है कि औद्योगीकरण और विकास के बढती रफतार में हम प्रकृति के बारे में भी ध्यान रखना अत्यंत अनिवार्य है। इसके लिए एक उदाहरण के रूप में जनखदान को हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है।

3.4 डूब (1991)

समकालीन साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर वीरेन्द्रजैन का सन् 1991 में प्रकाशित एक बहुचर्चित उपन्यास है डूब। भाषा विशेष की दृष्टि से आँचलिक उपन्यास की कोटी में आनेवाले प्रस्तुत उपन्यास की कथाभूमि बुंदेलखंड के लडैई गाँव है। मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश की सीमारेखा पर स्थित बेतवा नदी पर बनानेवाले राजघाट बाँध परियोजना से विस्थापित लोगों की दर्दनाक ज़िन्दगी को उपन्यास के ज़रिये वाणी देती है। आज़ादी के बाद देश की प्रगति के लिए अपने सबकुछ बलि देने के लिए अभिशप्त लोगों की व्यथा कथा है डूब।

स्वतंत्रता के बाद भारत वर्ष विकास के पीछे पड रहे थे और ज्यादातर विकास योजनाएँ गाँवों को लक्ष्य बनाकर ही तैयार की जा रही थी। लेकिन असल में इसका लक्ष्य गाँव या गाँववालों की तरक्की नहीं थी वरन् शहराती लोगों व पूँजीपतियों की उन्नती थी। गाँववालों को इसके गुण से ज्यादा दोष ही झेलना पडा। अतः हम निःसंदेह यह कह सकते हैं कि आधुनिकीकरण और विकास योजनाएँ अगर किसी को प्रताडित किया है तो वह हमारे गाँव और वहाँ के गरीब तथा सर्वहारा वर्ग को हैं। यहाँ वीरेन्द्रजैन भी अपने उपन्यास के ज़रिये इन सच्चाइयों को पाठक के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किये गये हैं। उपन्यास की कथाभूमि 'लडैई' भारत के उन

तमाम गाँवों को प्रतिनिधित्व करता है जो विकास के नाम पर तहस-नहस हो गया है। देश के विकास के लिए गाँवों में बाँधों का निर्माण करता है, जिसकी वजह से गाँव पूरी तरह उजड जाता है, लोग विस्थापित हो जाते हैं और पर्यावरण का नाश भी हो जाता है। गाँव का शोषण सिर्फ सरकार या बाहरी शक्तियों से ही नहीं बलिक अपने ही गाँव के सामंती वर्ग द्वारा भी हो रहा है, इसका चित्रण भी उपन्यास में देख्र सकते हैं।

स्वतंत्र भारत की प्रगति के लिए बनायी गयी विकास योजनाओं में सबसे प्रमुख है बाँधों का निर्माण। आज़ादी के बाद देश में ऐसी एक नितांत भावना का उदय हुआ कि कारख्राना और बाँधों से ही देश का संपूर्ण विकास हो पाएगा। इसलिए नेहरू जैसे नेताओं ने बाँधों के निर्माण को राष्ट्र निर्माण के समान महत्व दिया। उनका कथन था कि स्वतंत्र भारत के सुवर्ण मंदिर हैं बाँध। फलस्वरूप हज़ारों नए-नए बाँधों का निर्माण शुरू किया। गाँववालों का विश्वास था कि देश आज़ाद हो गए हैं, अब "हर गाँव की तरक्की होगी, शोषण से मुक्त होगा, पक्की गढमान (सडक) बनेगी, मोटर चलेगी। नेता भी उन्हें वादा किया था कि पूरे देश में नए-नए उद्योग धंधे लगाऐंगे। नई किस्म की तालीम दी जाए। अच्छे-से-अच्छे अस्पताल होंगे। अच्छे रहन-सहन, अच्छी आमदनी होगी। भाईचारा बढेगा। जब बाँध बनकर तैयार हो जाएगा तो उससे इलाके को भरपूर बिजली मिलेगी। नये ढंग से ख्रेती हो सकेगी। नये कारख्राने, मदरसे, नौकरी, रोज़गार सब संभव हो पाएगा।"[17] परंतु सारी आशाएँ व्यर्थ हो गयी। बाँधों का निर्माण विकास के बदले विनाश का पर्याय बन गया, जो हज़ारों लोगों को अपने जडों से उख्राड दिये गये, घर से बेदख्रल किये, उनकी संस्कृति, परंपरा, रीति-रिवाज़, जीवन-यापन सब कुछ तहस-नहस किया।

विस्थापन उनके सामने सबसे बडी समस्या बन गयी। सरकार भी इनके पुनर्वास के प्रति लापरवाही थे। इनके पुनर्वास के लिए सरकार के पास भी कोई चारा नहीं थे। ज़मीन के बदले मुआवज़े के नाम पर कुछ पैसा देकर सरकार भी चुप रही। असल में मुआवज़े के नाम पर मिले पैसा मवेशियों को ख़रीदने के लिए भी पर्याप्त नहीं थे। अफसोस की बात तो यह है कि इसप्रकार देश के लिए कुर्बानी दिये गये लोगों की सही आँकडा भी सरकार के पास नहीं थे। "Indian Institute of Public Administration के आँकडे के अनुसार हर एक बडे बाँध लगभग 44,182 लोगों को बेघर बना दिया गया है, इनमें से ज़्यादातर लोग आदिवासी और दलित हैं, अर्थात् सर्वहारा वर्ग। Central Water Commission के आँकडे के अनुसार देश में लगभग 3600 बडे बाँध हैं। इनमें से 3300 बाँधों का निर्माण आज़ादी के बाद ही हुआ। कई बाँधों का निर्माण अब भी चल रहे हैं। दुःख की बात तो यह है कि सिंचाई, सूखा निवारण, बिजली उत्पादन आदि को लक्ष्य बनाकर करनेवाली इस परियोजना के बावजूद भी देश की कुल जनसंख्या में पाँच में से एक को अर्थात् 2000 लाख जनता को पीने के लिए शुद्ध पानी नहीं है। तीन में से एक को प्राथमिक ज़रूरतों के लिए भी पर्याप्त पानी नहीं मिलती।"[18] इस प्रकार आज़ाद भारत में विकास लीला के नाम पर होनेवाले विनाश लीला ही डूब का मुख्य प्रतिपाद्य है।

उपन्यास का नायक है गाँव के सबसे बुज़ुर्ग और सम्मानित व्यक्ति एक सौ पाँच साल के माते। माते ने अपनी ज़िन्दगी में लडैई गाँव के हर उतार-चढाव को देखा है। स्वतंत्र भारत की विकास योजनाओं के फलस्वरूप उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश की सीमारेखा में बेतवा नदी में, बिजली, सिंचाई, बाढ से मुक्ति आदि को लक्ष्य बनाकर राजघाट बाँध परियोजना के लिए निर्णय लेता है। इंदिरा जी ने ही इसकी

पहली ईंट रखी। गाँववाले आशा करते हैं कि बाँध बनाएँ, सारी सुख-सुविधाएँ मिलेगी, मज़दूरी मिलेगी, रोज़गार मिलेगी, भूख-गरीबी मिटाएँगी, शिक्षा, अस्पताल, सडक, मोटर गाडी सारी सुविधाएँ होंगी। लेकिन हुआ क्या? बाँध के नाम पर सरकार और अधिकारी तथा सामंती लोग गाँववालों से क्रूर अत्याचार ही किया। राजघाट के आसपास के बारी, टोढे, शंकरपुर, पंचमनगर, सिरसौदिया, सिद्धपुर, केशोपुर आदि सभी गाँवों से लोगों को ख़ाली करवा दिया और लडैई सहित कुछ गाँवों को डूब क्षेत्र के रूप में घोषित किया। गाँववालों से ज़मीन-मकान, जल-जंगल, खेती सबकुछ छीन लिया और ये लोग विस्थापित होने के लिए मज़बूर बन गये। लेकिन इन्हें पुनर्वास के लिए कोई जगह नहीं दिया। उनकी संपत्ति के लिए पर्याप्त मुआवज़ा भी नहीं दिया। उनकी ज़मीन असिंचित, रिहायशी, इकफसली आदि कहकर मुआवज़ा का पैसा भी छीन लिया। लडैई गाँव को डूब क्षेत्र घोषित करके मदरसा, सडक, मोटर गाडी आदि सुविधाएँ बंद कर दी। बाँध के नाम पर नदी में टीला बनाया और आसपास के ज़मीन खोद-खोदकर बडे-बडे गड्ढे बनाये। इस प्रकार बाहरी समाज से लडैई का पूरा संबंध काट दिया। मुआवज़ा देने के बहाने गाँव के सोलह साल से पच्चास साल तक के मर्दों को शहर ले जाकर उनकी नसबंदी करवा दी, जो भी नयी सरकार जनसंख्यावृद्धि रोकने के लिए बनायी नयी योजना थी। सरकार की इस लापरवाही की वजह से कई नौजवानों की जान चली गयी। बाँध के निर्माण के लिए पेडों की अंधाधुंध कटाई कर दी। सिर्फ नदी के बहाव ही नहीं साथ ही साथ छोटे-छोटे नहर का भी बहाव बंद कर दिया। गाँववालों की खेती-खलिहान, तथा पशुपालन का क्षेत्र नष्ट हुए। गाँव के शांत वातावरण भंग हो गये। नदी के बहाव रुक जाने से नदी से जुडी ज़िन्दगी में दरार पड गयी। नदी की जो जैवविविधता है, उसका भी नाश होने लगी। नदी के बहाव पर अवरुद्ध आने के

कारण पानी का चढाव आसपास के क्षेत्रों में होने लगे। कई पेड-पौधों तथा वनस्पतियों का नाश हुआ। मिट्टी की उर्वरता नष्ट हो गयी। गाँव में कभी- कभी सूखा और कभी-कभी बाढ होने लगे। पहले-पहले गाँववालों का विश्वास था कि देवी मैया के कोप के कारण ही बाढ हो जाती हैं। लेकिन धीरे-धीरे पता चला कि नदी-नहरों के बहाव में बाधा पडने से ही बाढ हो जाती है। इतने सारे क्रूर अत्याचारों के बावजूद भी पर्याप्त पैसा न होने का बहाना कहकर सरकार को बाँध परियोजना पूरा नहीं कर पाया। बदले में लडैई गाँव को डूब क्षेत्र से मुक्त कहकर वहाँ जंगली जानवरों केलिए अभयारण्य बनाने का निर्णय लेता है, और पंचमनगर के किला में अफसरों के लिए क्लब ऐशगाह बनाने को भी तय करता है। जंगली जानवरों को बेखटक रहने के लिए लडैई के लोगों को सिद्धपुरा गाँव के पहाड पर बसाने का निर्णय भी लेता है। इसका और भी एक मुख्य उद्देश्य था कि सिद्धपुरा फिर भी पहले की तरह आबाद हो जाएँ ताकि देश-विदेश से आनेवाले पर्यटक, यात्री उन्हें देखकर यह जान सकें कि भारतवर्ष में पुराने ज़माने के लोग किस तरह अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। पर्यटकों को सिद्धपुरा तक लाने का इंतजाम भी सरकार खुद करेगी। एक अफसर का कथन है- "यहाँ बाँध पर पानी की मोटरों में सैर-नफरीह को या अभयारण्य में जंगली जानवरों को, शेर-चीतों को टहलता हुआ देखने के लिए जो लोग आया करेंगे न, उन्हीं को आपके गाँव दिखाने भी ले-जाया करेगी सरकार।" यह सुनकर माते अपना दुःख इस प्रकार व्यक्त करते हैं- "यह हम क्या सुन रहे हैं महाराज! कोई समझाता क्यों नहीं इस सरकार को? आदमियों की कीमत पर जानवरों की रक्षा करना चाहती है यह? गरीबों के जीवन की बलि लेकर अमीरों की

तफरीह का बंदोबस्त करना चाहती है यह सरकार? और कोई इसका हाथ पकडनेवाला नहीं बचा? कोई नहीं, कोई भी नहीं ?"[19]

अंत में एक दिन बाँध के दीवार में दरार होने के कारण बाँध का एक तटबंध टूटकर लडैई गाँव में बाढ हो जाती है। कई लोगों की मृत्यु हो जाती है तथा पारिस्थितिक नाश हो जाता है। लेकिन इतनी बडी दुर्घटना होते हुए भी सरकार उसकी असली ख़बर बाहरी दुनिया से दबा दी और आकाशवाणी के भोपाल केंद्र से ऐसी एक झूठी ख़बर लोगों तक पहुँचाती है -"बेतवा नदी के राजघाट पर निर्माणाधीन राजघाट बाँध के तटबंधों में से एक तटबंध में दरार पड जाने से तटबंध की पट्टी का एक छोटा- सा भाग टूट गया और बाँध पर रोका गया पानी बहकर असपास के ख़ाली पडे इलाके में चला गया। इस आशंका को ध्यान में रख़कर ही कुछ वर्ष पूर्व सरकार ने बाँध के आसपास के तमाम गाँवों को मुआवज़ा देकर ख़ाली करवा लिया था। यदि ऐसा न किया गया होता तो आज क्षेत्र में पानी के अचानक प्रवेश कर जाने से न जाने कितनी जानें चली गई होतीं। हालाँकि इस तटबंध के टूट जाने से सरकार को भारी आर्थिक क्षति हुई है, बाँध के काम में भी इससे गतिरोध आयेगा। फिर भी राजघाट बाँध परियोजना के अधिकारियों की दूरदर्शिता के लिए सरकार ने उनके प्रति अपना आभार प्रकट किया है।"[20] यह सुनकर माते अत्यंत गुस्से हो जाते हैं और उन्होंने रेडियो लेकर उलट-पुलट कर फेंक देता है। और चीख़ता है - "लाबरी है जा सरकार! महा लाबरी! झूठी, महाझूठी।"[21]

इसप्रकार प्रस्तुत उपन्यास में लडैई गाँव की व्यथा-कथा के साथ स्वतंत्रता के बाद देश में हुए सांप्रदायिक दंगे तथा भोपाल गैस त्रासदी आदि का भी चित्रण किया गया है। साथ ही साथ गाँववालों के जीवन, रीति- रिवाज़, रहन-सहन, अंधविश्वास,

संस्कृति, गाँव के सामंतों द्वारा उनका शोषण आदि कई मुद्धों पर विचार किये हैं। उपन्यास के पात्रों में मोती साव, ठाकुर, निर्मलसाव, और हलका साव आदि ऐसे सामंत वर्ग का प्रतिनिधि है जो किसानों व सर्वहारा वर्ग का निरंतर शोषण कर रहे हैं। लेकिन माते, मास्साव, अरविंद पांडे, अट्टू साव, गोराबाई, रामदुलारे जौसे पात्र अपनी विपरीत परिस्थितियों में भी गाँव की उन्नति तथा गाँववालों की भलाई के लिए प्रयास करते हैं।

कुलमिलाकर कहा जाय तो डूब, बुन्देलखंड के लडैई गाँव की व्यथा-कथा है, जो भारत के तमाम उन गाँवों को प्रतिनिधित्व करता है, जहाँ विकास के नाम पर विनाश हो रहे हैं। उपन्यास में लेखक स्वतंत्र भारत के कुतंत्र शासन व्यवस्था तथा निर्दयी शासकों का खुला चित्रण प्रस्तुत किया है साथ-साथ औद्योगीकरण तथा विकास परियोजनाओं के दुष्प्रभावों का भी चित्रण किये गये हैं। इसलिए ही हिन्दी उपन्यास के इतिहास में 'डूब' एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है।

3.5 गगन घटा घहरानी (1991)

आदिवासी जीवन को केन्द्र बनाकर मनमोहन पाठक द्वारा लिखा गया उपन्यास है 'गगन घटा घहरानी'। सन् 1991 में प्रकाशित प्रस्तुत उपन्यास की कथाभूमि बिहार के पलामू और उसके आसपास के वे तमाम क्षेत्र हैं जहाँ सदियों से आदिवासी और सदान अपने अस्तित्व और हक की लडाई कर रहे हैं। साथ ही साथ उपन्यास में आधुनिक युग में देश की वन संपत्ति पर बढते हस्तक्षेप का भी खुला चित्रण किया गया है। उपन्यास का मुख्य पात्र है सोनाराम, जो अपने समाज की रक्षा के लिए, परंपरा और अधिकारों के लिए तथा समाज को आज़ाद ज़िन्दगी प्रदान करने के लिए कोशिश करता है। वह ठेकेदारों और ज़मीन्दारों की अमानुषिक

अत्याचार रोकना चाहता है, गाँव में शिक्षा सुविधाएँ लाना चाहता है, मालिकों से पहाडी सेवकों को छुटकारा देना चाहता है, अन्याय और शराब बंद कराना चाहता है। इसके लिए, गाँववालों को इकट्ठा कर, उन्हें जागरूक बनाकर संघर्ष करता है।

प्रस्तुत उपन्यास को स्वयं लेखक ने झारखंड आन्दोलन की औपन्यासिक महागाथा कहा गया है। 'झारखंड' का शब्दिक अर्थ है पेड- पौधे और वनों का प्रदेश, जो बिहार का अभिन्न अंग था। अमूल्य वन संपदा से संपन्न बिहार की ओर हमेशा ठेकेदार, ज़मीन्दार और बहुराष्ट्रीय कंपनियों की नज़र है। वे इन जंगलों में घुसपैठ कर पेडों की वैध- अवैध कटाई कर रहे हैं और पहाडी जनता को अपने गुलाम बनाकर रखे हैं। सरकार भी इन ठेकेदारों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में प्रोत्साहन दे रही है। इस प्रकार ठेकेदार और वन विभाग द्वारा किये जानेवाले वन-संपत्ति की लूट ही 'गगन घटा घहरानी' का मुख्य प्रतिपाद्य है।

उपन्यास में लेखक जंगल का वर्णन इस प्रकार किये हैं- जंगल एक सनातन नाम है। सृष्टि के आदि से उत्पन्न उस स्थान का, जहाँ सबकुछ स्वाभाविक है। जन्म लेना, बढना, बढते जाना और मरना, मरकर पुनः जन्म लेना, फिर बढना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। जंगल एक स्वभाव है। एक गोत्र, एक वंश है जंगल। उसी सीमित स्थान में वह घूमता- टहलता है, वहीं प्रेम करता हैं। वहीं लोटता-पोटता है।...नये पौधों की सृष्टि करता है उनके लिए उसी में जगह बनाता है।...जंगल राजा का दरबान है यह लंबा दरख्त। ऊँचा, दूर-दूर तक देखनेवाला सखुआ का खुरदुरी छालवाला। पर यहाँ राजा कौन है? और कौन है उसकी प्रजा? सबकी अपनी-अपनी अलग पहचान है। अलग रंग, गंध, स्पर्श, लंबाई-चौडाई। राजा कहीं नहीं मिलेगा। फिर भी जंगल एक राज है, जहाँ एक सहज व्यवस्था है।[22]...सृष्टि का विराट तत्व है

जंगल।... भय का काला परदा झुलाकर निश्चिंत हो रहा है जंगल। परदे का एक छोर इसी सखुए का हाथ है और दूसरा छोर? दूसरा कहाँ है? सियारामसिंह के हाथ में या उनकी इस कोठरी के छप्पर की मुंडेर से बँधा है? अरे बाप! आदमी है कि भूत! इस भयानक वन के मूँह पर अकेले कैसी चौकीदारी करते हैं?[23]

सृष्टि का विराट तत्व, पृथ्वी के रक्षक जंगल के आगे आदमी एक भूत बनकर खडे हैं और जंगल निगल रहे हैं। आज हमारे देश में वन-संपत्ति का दोहन दिन-प्रतिदिन बढता रहता है। देश के विकास और आर्थिक उन्नति के बहाने औद्योगीकरण के लिए जंगलों की अंधाधुंध कटाई कर रही है। देश की वन संपत्ति का संरक्षण देने के लिए बाध्य सरकार द्वारा उसका व्यापारीकरण और नीलाम हो रहे हैं। ठेकेदार सिर्फ नीलामी पेडों को ही नहीं बल्कि अपने आर्थिक लाभ और कटाई की सुविधा के लिए पूरा जंगल एक तरफ से साफ कर रहे हैं। अतः जंगल में वैध से ज़्यादा अवैध कटाई ही हो रही है। इसके फलस्वरूप बढते वन-विनाश का दुष्प्रभाव सबसे ज़्यादा भोगना पडता है आदिवासी जनता। क्योंकि उनकी ज़िंदगी पूर्ण रूप से जंगल पर निर्भर है। वे अपनी रोजमर्रा की पूर्ती लिए जंगलों का ही आश्रय करते हैं। लेखक बताते हैं कि- "अपनी रोजमर्श की कामों में जंगल से एक सामान्य सदस्य की तरह व्यवहार करता है। हल चलाता है, लकडी काटता है, जानवर चराता है, शिकार करता है। हर बात पर अपनी घौंस नहीं जमाता । बिना ज़रूरत से हस्तक्षेप नहीं करता।"[24]

लेकिन जंगल में वन-विभाग का आगमन आदिवासी समाज और जंगल के बीच के अटूट संबंध को तोडा। वन-विभाग आदिवासियों को जंगल के घुसपैठिया मानते हैं और जंगल में शिकार करना, लकडी काटना आदि पर रोकथाम लगाये हैं।

बिना अनुमति से जंगल में प्रवेश करना भी विरोध किया। आदिवासियों को जंगल से ज़रूरती लकडी लेने के लिए वन विभाग को पैसा देना पडा। वैसे जंगल जिन लोगों का है उसके लिए वे सरकार को मालगुजारी देना पडा। उपन्यास के चैतू, दामडू नामक पात्र, जो घर बनाने के लिए लकडी काटने के कारण लकडी समेत फोरेस्टर के सामने हाजिर कर दिये जाते हैं और जुर्माना देना पडता है। लेखक बताते हैं - "धरती के चप्पे-चप्पे पर एकाधिकार और अपने स्वामित्व का विस्तार करनेवाले, कल को यदि इस रोज़ पूजे जानेवाले आकाश के सूर्य, चाँद और तारे, हवा और वर्षा सब पर अधिकार जमाने लगें, लोगों को धूप में निकलने से रोक दें, खुली हवा में साँस लेने को अपराध करार दें तो भी दामडू और चैतू को आश्चर्य नहीं होगा।"[25]

वन-विभाग के कर्मचारियों के अलावा ठेकेदार तथा समंती लोगों द्वारा भी आदिवासियों का शोषण कर रहा है। ठेकेदार इनको डरा-धमकाकर उनसे जल-जंगल-ज़मीन हडप लेते हैं और इन्हें अपने गुलाम बनकर रखे हैं। उपन्यास में जागो सेवकिया, चैतू, दामडू आदि पात्र ठेकेदारों के शोषण के शिकार हैं। साठ रुपये और दो मन अनाज के लिए चालीस वर्ष की आयू तक ठेकेदार के गुलाम बनकर जी रहे जागो सेवकिया की कहानी से ही उपन्यास आगे बढता है। चैतू, दामडू भी उन आदिवासी जनता को प्रतिनिधित्व करते हैं जो अपने आर्थिक तंगी के कारण खेत या ज़मीन गिरवी रखती हैं और फिर वह ज़मीन कभी-भी आदिवासियों को लौटाये नहीं जाते। चैतू, दामडू के अंतिम समय तक रायबहादूर से अपनी ज़मीन वापस नहीं मिल पायी। इसके अलावा ये ठेकेदार और सामंती लोग जंगल के पोखरा-तालाब को अपनी निजी संपत्ति बनाकर रखे हैं और आदिवासी पानी के अभाव से तडप रहे हैं। बढते वन विनाश के कारण इलाके में बाढ, सूखा, अकाल आदि हो जाते हैं। जंगली

जानवर, पेड- पौधे, जडी- बूटियाँ आदि का नाश हुए हैं। फिर भी वनों पर ठेकेदारी प्रथा पर कोई रोकथाम नहीं लगाया है। वन संरक्षण के लिए वन विभाग में भी कई विभाग कार्यरत हैं। जैसे वन प्राणियों के संरक्षण के लिए, वनरोपण के लिए, लकडियों के व्यापार के लिए, लाह-सख्खुआ बीज, बीडी-पत्ते, कत्थे आदि वन उत्पादकों के लिए आदि। लेकिन यह सब सिर्फ दिख्रावे के लिए हैं। अगर ठेकेदारी प्रथा पर कोई प्रतिबंध न लगायें तो देश की वन-संपत्ति ख्रतम होने में ज़्यादा समय नहीं लगेगा।

वन-संरक्षण के लिए बनाये गये वन-विभाग द्वारा ने ही जंगल की कटाई को प्रोत्साहन देते रहे हैं। वन- व्यापार विभाग जंगल की कटाई अपनी देख्र-रेख्र में ही करवाते हैं। लेकिन लकडी काटनेवाले मज़दूर ठेकेदार के होते हैं। क्योंकि सरकार को लकडी काटनेवाले मज़दूरों की ज़िम्मेदारी नहीं ले सकती और उन्हें साल भर तनख्वाह नहीं दे सकती। इसलिए पेडों को नीलाम कर रहे हैं और लकडी काटने का अधिकार ठेकेदारों को सौंप देता है। ये लोग सिर्फ नीलामी पेडों को ही नहीं वरन् कटाई की सुविधा और अधिक मुनाफे के लक्ष्य में जंगल एक तरफ से साफ करते हैं। ऐसे ठेकेदार, मंत्रियों से लेकर कर्मचारियों तक संबंध रख्रते थे या वे स्वयं ही विभीख्रनसिंह जैसे कोई एम. एल.ए या उनके बेटे या कोई रिश्तेदार होते हैं। इसके अलावा ऐसे ठेकेदार हज़ारों-हज़ारों रुपये ख्रर्च कर अपने आदमी को फोरस्ट गार्ड बनाते हैं। इसलिए नीलाम का टेंडर आदि सब दिख्रावा मात्र था। सबकुछ ऊपर से ऊपर पहले ही तय किया होगा और कोन्ट्रैक्ट फिक्स करने से पहले ही ठेकेदार अपनी मर्जी से कटाई शुरू करते थे। इस प्रकार हर दिन जंगल में सडी हुई लकडियों की संख्या और चोरी में वृद्धि होने लगी। इन लोगों द्वारा जंगल में आग लगाना भी

आम बात बन गयी थी। इनका सारा दोष वन विभाग ने बेचारे आदिवासियों पर थोप देते थे और उन्हें जंगल में आने पर भी मनाही की थी।

साल के आरंभ में ही ख़ास-ख़ास पकी हुई लकडियों को काटकर व्यापार करने के लिए कूप-के कूप ठेकेदारों को नीलाम कर दिये जाते थे। रेंजर, फोरेस्टर, डी.एफ.ओ. आदि सब ठेकेदारों के ही आदमी थे। मुनाफे का एक हिस्सा बिना कोई बाधा से हर-एक के जेब में आते थे। इसलिए अवैध कटाई को वे नज़रअंदाज़ करते हैं। बरसात के पहले पूरी कटाई ख़तम होती थी और बरसात भर कटाई का काम बंद रहता है। इस समय, पहले काटी गई लकडियों को डिपों में फेंक आती है। जंगल में काटी गई लकडियों की संख्या एक, चेकपोस्ट पर उनकी संख्या दूसरी, डिपो में ढुलाई की गई लकडियों की संख्या और स्टॉक भी कभी नहीं मिलते। इस प्रकार हर कदम में भ्रष्टाचार ही भ्रष्टाचार है।

वन-संपत्ति पर मानव के बढते हस्तक्षेप के कारण जंगल छोटा होता जा रहा है। वन्य प्राणियों की संख्या में ह्रास होते हैं। कई नस्लें तो बिलकुल समाप्त हो गई हैं। वैसे पारिस्थितिक संतुलन बिगड रहा है। बढती वन विनाश के कारण इलाके में सूखा, बाढ, अकाल आदि प्राकृतिक आपदाएँ हो रही है। संपूर्ण इलाका पानी की कमी से त्रस्त है, खेती सूख जाती है। आसमान से एक बूँद पानी भी नहीं बरसती। "पानी का नछत्तर (नक्षत्र) तो निकला जा रहा है। आकाश टह-टह साफ है। धूप बरछी सी पीठ पर चुभती है। इक्के-दुक्के बादल आते भी हैं तो ऊपर ही टँगे रहते हैं। ऊपर ही टँगे-टँगे जल लिए दिये पता नहीं कौन-कौन देश चले आते हैं। ऐसे ही रहा तो धान बढेगा क्या और फूटेगा क्या? ....अब जब पानी की ज़रूरत है धान को, तो आकाश से आग बरस रही है।"[26] पानी के अभाव से सारी खेती सूख

जाती हैं। इलाके के अधिकांश जलस्रोत बरसात को छोडकर सालभर सूख्रे रहते हैं। जंगल में बचे-ख्रुचे तालाब और पोख्ररे को ठेकेदार और ज़मीन्दार निजी संपत्ति बनाकर रख्रे हैं और लोगों को अपनी ज़रूरतों की पूर्ती के लिए पर्याप्त पानी नहीं मिलते हैं। ख्रेती सूख्रने पर इलाके में अकाल हो जाता है। उपन्यास में बताया है - "चारों तरफ अकाल पडा है। लोग दाने-दाने को तरस रहे हैं। फसल की ज़रा भी उम्मीद नहीं है।"[27] "अकाल के साँप ने सबको डँस लिया है। काली चमडी के नीचे नीले-नीले उभरी हुई नसें सूख्र-सूख्रकर मुरझा रही है। ... पेट काटकर बच्चों के मूँह से निवाला छीनकर टोकरियों को कपडे से ढके झपटे हुए लिए आ रहे हैं।"[28] रोग, दुःख्र, भूख्र, अकाल, महामारियाँ और दूसरों द्वारा सताए आदिवासी और सदान किसी भी नौकरी करने के लिए तैयार है। लेकिन उन्हें कहीं कोई नौकरी नहीं मिलते थे। कभी-कभी वे किसी सडक की मरम्मत के लिए जाते थे या कहीं तालाब या छोटी-मोटी नहर में काम करते थे। लेकिन वह भी कुछ दिन के लिए ही होगा। वैसे अपनी गरीबी और भूख्र से बचने के लिए ये लोग मालिकों के गुलाम बनकर जीने के लिए मज़बूर हो जाते हैं।

इस प्रकार सरकार और बाहरी लोगों के आक्रमण से सताए पहाडी जनता अपने अस्तित्व और हक के लिए संघर्ष करते हैं। सोनाराम के नेतृत्व में फसल-दख्रल आन्दोलन करता है, इसका नारा था 'जोतनेवालों को ख्रेती देना'। आदिवासी अपने ही ख्रेत से पका हुआ अनाज चोरी करते हैं और रायबहादूर निजी बनाकर रख्रे पोख्ररा काटकर अपने ख्रेती की ओर पानी बहाते हैं। सोनाराम अपने समाज की गुलामी का सबसे बडा कारण शिक्षा का अभाव पहचानकर उन्हें शिक्षा देने की व्यवस्था भी करता है। सोनाराम उन्हें हर वक्त प्रेरणा देता है और अजीब

तरह बिगड गये अपने समाज को नये जीवन देने के लिए अथक प्रयास करता है। अपने समाज को शक्ति और आत्मविश्वास देता है। उनका मानना था-"डर मत! किसी से भी नहीं। देवडा-भूत, प्रेत, मौत, महाजन किसी से नहीं। सबसे बडा तो तू है।"[29]

आदिवासियों का आन्दोलन अपने अस्तित्व एवं अधिकारों को बचाने के लिए था। जंगल की ठेकेदारी और वन-विभाग के अत्याचार रोकने में वे असमर्थ थे। क्योंकि वे हाशियेकृत और अल्पसंख्यक थे। मुख्यधारा समाज और देश के कानून के विरुद्ध लडना आसान नहीं था। फिर भी वे लडाई करते हैं। उनके अस्तित्व की लडाई वन संपत्ति के कुछ भी हिस्से को बचाने में और समाज के अन्य जनता को वन-विनाश के प्रति जागरूक बनाने में सहायक होंगी।

3.6 पार (1994)

वर्तमान पीढ़ी के श्रेष्ठ रचनाकारों में वीरेन्द्र जैन का नाम विशेष महत्वपूर्ण है। सन् 1994 में प्रकाशित उनका एक बहुचर्चित उपन्यास है 'पार'। प्रस्तुत उपन्यास 'डूब' का अगला हिस्सा ही माना जाता है। 'डूब' की कथा 'पार' में ही पूर्ण होती है। इसमें भी विकास के फलस्वरूप उत्पन्न विस्थापन तथा पारिस्थितिक आघातों पर विचार किया गया है। बेतवा नदी पर बनानेवाले राजघाट बाँध परियोजना के फलस्वरूप, विस्थापन की पीडा भोगने के लिए अभिशप्त राउत जनजाति की त्रासद कथा को उपन्यास के ज़रिये वाणी मिलती है। उपन्यास को दो भागों में- 'पार' और 'अपार' में विभक्त करके लेखक ने जीरोन तथा लडैई गाँव के लोगों की व्यथा-कथा कही गयी है। विद्युतीकरण, सिंचाई, बाढ नियंत्रण आदि लक्ष्यों की पूर्ती की दृष्टि से ही बाँध परियोजना तैयार की जाती है। लेकिन यह भारतीय गाँव पर भारी नुकसान

पहूँचाती हैं। गाँव संपूर्ण रूप से उजड जाता है और गाँववाले विस्थापित हो जाते हैं। उनकी संस्कृति-परंपरा, रीति-रिवाज़, रहन-सहन सबकुछ तहस-नहस हो जाते हैं, लोग बेघर हो जाते हैं, खेती-चारगाह नष्ट हो जाती है, बेरोज़गारी, भूख, गरीबी बढ जाते हैं। इन सबका खुला चित्रण ही उपन्यास में हम देख सकते हैं। कहा जाता है कि स्वयं लेखक ही राजघाट बाँध परियोजना के शिकार हैं। इसलिए पार उपन्यास भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति माना जाता है।

उपन्यास का पहला भाग 'पार' का मुख्य क्षेत्र 'जीरोन' है, जो जंगल में बसी हुई राउत जनजाति का इलाका है। राउत जनजाति की जीवन शैली, संस्कृति, रीति-रिवाज़ आदि के चित्रण के साथ-साथ बाँध परियोजना से उन पर पडनेवाले आघातों का चित्रण भी इसमें किया गया है। आदिवासी समाज अपनी रूढि-परंपराओं से अभी-भी बाहर नहीं आए हैं। वे धर्म के प्रति अटल श्रद्धा और संस्कृति के प्रति अत्यधिक निष्ठा का पालन करते हैं, और उनका जीवन प्रकृति पर निर्भर होते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने राउत जनजाति की संपूर्ण संस्कृति का परिचय दिया गया है। आदिवासी समाज में पंचायत व्यवस्था का विशेष महत्व होता है। पंचायत में एक प्रमुख होते हैं, वे 'मुखिया' जाने जाते हैं। संपूर्ण समाज इन मुखिया की सलाह से ही नियंत्रित और नियमित होते हैं। आदिवासी समाज उन्हें सम्मान देते हैं और किसी भी कार्य में मुखिया ही अंतिम निर्णय लेते हैं। ये मुखिया अगले मुखिया को चुन सकते हैं, जो गुनिया जाने जाते हैं। 'गुनिया' की माँ 'मुइया' नाम से जानी जाती है, वह भी समाज में बहुत सम्मानित होती है। 'मुइया' को समाज में ऐसा बंधन होता है कि गुनिया को चुनने के बाद मुइया किसी भी पुरुष से संबंध नहीं रख सकती थी। 'फुलिया' उपन्यास की ऐसी एक स्त्री पात्र है, जो मुइया बनने के

बाद अपने पति 'दुनिया' से अलग रहने के लिए मज़बूर हो जाती है और दुनिया के स्नेह से वंचित रहती है। इस प्रकार आदिवासी समाज की संस्कृति, रीति-रिवाज़ आदि के साथ-साथ लेखक ने उपन्यास में स्वतंत्र भारत में विकास के नाम पर आदिवासियों पर होनेवाले अत्याचार का चित्रण किया गया है। दूसरा भाग 'अ-पार' में लडैई गाँव की कथा के साथ-साथ जीरोन और लडैई के लोगों तथा अरण्य संस्कृति को बचाने के लिए माते, अरविंद पांडे, रामदुलारे और यशस्विनी आदि पात्रों द्वारा की जानेवाली मेहनतों का वर्णन किया है। लडैई के माते उपन्यास का एक प्रमुख पात्र है, जो गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित व्यक्ति है। माते जीरोन के आदिवासियों को लडैई में व्यापार करने के लिए सहायता देते हैं और बाँध से उत्पन्न समस्याओं के विरुद्ध संघर्ष भी करते हैं।

उपन्यास के आदि से अंत तक संघर्षरत आदिवासी समाज को ही दिखाई देता है। स्वतंत्र भारत में औद्योगीकरण तथा विकास की प्रवृत्तियाँ तीव्र गति से होने लगी। लेकिन असल में इन विकास नीतियों का फायदा सिर्फ देश के 20% अमीर लोगों को ही मिलते थे। बाकी अधिकांश लोग इसका दुष्प्रभाव ही भोगना पडता है। इनमें प्रमुख है गाँववाले और आदिवासी। विकास के नाम पर इनसे अपना जल-जंगल-ज़मीन छीन लेते हैं, और वे अपनी माटी से दूर होने के लिए मज़बूर बन जाते हैं। गाँव के सर्वहारा वर्ग सदियों से सामंती लोगों का शिकार हैं और अब देश आज़ाद होने के बाद सरकार द्वारा भी उनका बहुआयामी शोषण करते हैं। विकास के नाम पर नेता तथा सरकारी कर्मचारी उनपर अत्याचार करते हैं। विस्थापित लोगों को पर्याप्त मुआवज़ा या रहने के लिए जगह आदि नहीं देते हैं। इन सबका खुला चित्रण ही 'पार' में हम देख सकते हैं।

उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश के विद्युतीकरण के लिए ही बेतवा नदी पर बाँध का निर्माण करता है। इंदिरा गाँधी ने ही इसकी पहली ईंट रखी। सरकार ने गाँववालों को कई प्रकार की वादाएँ दिये थे। गाँववालों से उनका कथन था - "आज़ाद भारत में सरकार नामक एक चीज़ है, जैसे तुम्हारे खेरे में एक मुखिया है वैसे ही देश में भी एक मुखिया है। उसके राज में देश तरक्की कर रही है। सब कहीं अमन-चैन है। वही बनवा रही है राजघाट पर बाँध। नदी बाँधने के दिन तक को एक-न-एक आपद-विपद आती रहेगी। लेकिन नदी के बाँधते ही खुशहली आएगी। खेतों को भरपूर पानी मिलेगा। हर जिस्म को लत्ता मिलेगा। बच्चों को शिक्षा-ज्ञान, जवानों को रोज़गार, बूढों को उपचार, घर-घर में बिजली सब मिलेंगे। उस बिजली से मशीनें चलती है। कारखाने चलते हैं। कपडे, खिलौने, चीलगाडी, पंखे आदि बनते हैं। यह सब चंदेरी में होते है, और गाँववालों को भी चंदेरी में ले चलेंगे। रोजगार देंगे।"[30] लेकिन सब सिर्फ वादा ही रह गये, जनता की आशा निराशा में बदल गयी। जब बाँध का निर्माण शुरू किया तब से गाँव में कई प्रकार की समस्याएँ उभर आने लगी। परिस्थिति पर भी इसका बुरा असर पडने लगे गाँव में सूखा, बाढ आदि विपदाएँ होने लगी। गाँववालों के घर, खेती, चारगाह सब कुछ नष्ट हुए। बीमारी, भूख, गरीबी से लोग त्रस्त हैं। उपन्यास में बताया गया है कि- "शहर से लोग आकर नदी के बहाव बाँधने लगे और नदी के दोनों तरफ से माटी के टीले उठा कर नदी को अपनी मनमाफिक दिशा में बहाने लगे। फलस्वरूप गाँव में बाढ होते हैं। नदी के मील-दो-मील आगे से राजघाट तक की राह से पेड-रूख काट ले गए। माटी खोद ले गए। जगह-जगह-कई-कई फुट गहरे गड्ढे कर गए हैं। तमाम पेड, खर-पतवार, झाडियाँ, बेरियाँ, छोलियाँ सब सफाचट कर गए। अब हार में न हरियाली बची न

समतल ज़मीन। .... ढोरों चरने के लिए भी वहाँ कुछ बचा भी नहीं है।"[31] इस प्रकार बाँध के निर्माण से संपूर्ण इलाका तहस-नहस हो गया है। मवोशियों को चराने के लिए भी कोई जगह बचा नहीं है। इसलिए भेड-बकरी हरियाली ढूँढकर आसपास के गाँवों में जाते हैं, और पडोसी गाँववाले भी दुविधा में पड जाते हैं।

राजघाट के आसपास के बारी, टोढे, पानीपुरा, सिरसौदिया, शंकरपुर आदि गाँवों को डूब क्षेत्र घोषित करता है और लोग विस्थापित होने के लिए मज़बूर बन जाते हैं। इन लोगों को रहने के लिए जगह देने को या उनकी ज़मीन के लिए पर्याप्त मुआवज़ा देने को सरकार तैयार नहीं थी। उनकी ज़मीन असिंचित, इकफसली आदि बहाना कहकर मुआवज़ा भी नहीं देते हैं। सबसे बडा अपराध है कि मुआवज़े के नाम पर गाँववालों को शहर ले जाते हैं और मर्दों की नसबंदी करती हैं जो स्वतंत्र भारत में बढती आबादी को रोकने के लिए सरकार द्वारा बनाया गया एक नयी योजना थी। इसके फलस्वरूप गाँव के कई नवजवानों की मृत्यु हो जाती है।

उपन्यास में केवल सरकार द्वारा ही नहीं वरन् अपने ही गाँव के सामंती लोगों द्वारा सर्वहारा वर्ग के शोषण का चित्रण भी किया गया है। यह कोई नयी बात नहीं है की गाँव में सदियों से सर्वहारा वर्ग सामंतों के शोषण का शिकार हैं। गाँववाले इन ब्राह्मणों के कर्ज से कभी भी मुक्त नहीं हो पाते थे। मुआवज़ा मिलते वक्त ये लोग शहर से गाँव आ जाते हैं और गाँववालों से पैसा वसूल करते थे। घूरे साव जैसे ब्राह्मण पात्र द्वारा गाँव के औरतों पर बडा अत्याचार हो रहा था। उसने गाँव के औरतों को अपने काबू में लाकर शहर ले जाते थे और बेचते थे। उन्हें मालूम था कि शहर में गाँव के जवान औरतों के लिए सैकडों ख़रीदार हैं। किसी को अफसरों को खुश करने के लिए, पुलीस के लिए, डाकू दल के लिए, किसी को वंश चलाने के

लिए, किसी को दिल बहलाने के लिए, किसी को पेशा करवाने के लिए औरतों की ज़रूरत है। इसलिए वह गाँव से औरतों को ले जाकर उन लोगों को बेचता है। इस प्रकार गाँववाले एक ओर सरकार द्वारा और दूसरी ओर सामंतों द्वारा किये जानेवाले बहुआयामी शोषण का शिकार हैं।

उपन्यास में भोपाल गैस त्रासदी के बारे में भी ज़िक्र किया है। भोपाल में खाद और कीटनाशक दवाएँ बनानेवाले यूनियन कारबाइड कारखाने में ज़हरीली गैस के रिसाव से कई लोगों की मृत्यु हो जाती है, कई लोग अपंग हो गये हैं और कई लोग महामारियों से लड रहे हैं। परिस्थिति पर भी इसका भीषण प्रभाव पड गया है। इसका चित्रण भी उपन्यास में देख सकता है।

इस प्रकार बाँध परियोजना से त्रस्त लोगों की व्यथा कथा के साथ-साथ स्वतंत्र भारत की विकास नीतियाँ जिस प्रकार भारतीय गाँवों को तहस-नहस किया है और पर्यावरण पर बुरा असर पड गया है आदि के बारे में उपन्यास में विस्तार से चर्चा की है। विकास के चंगुल में फँसकर आज भारतीय गाँव की सरलता नष्ट हो गयी है और गाँव तहस-नहस हो गया है।

3.7 इदन्नमम (1994)

हिन्दी साहित्य जगत् की सुप्रसिद्ध लेखिका मैत्रेयी पुष्पा के सन् 1994 में प्रकाशित उपन्यास है इदन्नमम। मूल रूप से यह एक सशक्त नारी-प्रधान उपन्यास है, साथ ही साथ इसमें उत्तरभारत के श्यामली और सोनपुरा नामक ग्रामीण अंचल के उन लोगों के जीवन यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है जो विकास के चंगुल में फँसकर किसान भी न रह सके और न मज़दूर भी। उपन्यास का मुख्य पात्र है मंदाकिनी (मंदा), जो सामाजिक अन्याय के खिलाफ संघर्ष करती है। उसका संघर्ष केवल नारी

या ग्रामीणों को न्याय के लिए ही नहीं बल्कि सोनपुरा के प्राकृतिक शोषण के खिलाफ भी है।

उपन्यास में मुख्य रूप से तीन नारी पात्र आती हैं- बऊ, प्रेम और मंदा, जो तीन पीढियों को प्रतिनिधित्व करता है। इनके जीवन चित्रण के ज़रिये सोनपुरा और श्यामली के ग्रामीणों की व्यथा-कथा भी प्रस्तुत की है। विधवा बऊ अपने पति की मृत्यु के बाद बेटा महेन्दर का पालन-पोषण करती है। महेन्दर का विवाह 'प्रेम' के साथ होता है और उनकी बेटी है मंदाकिनी। अपने अथक परिश्रम से गाँव में बनाये गये अस्पताल के, उद्घाटन के दिवस हुए राजनीतिक संघर्ष में महेन्दर की हत्या की जाती है। विधवा 'प्रेम' अपनी कठिनाइयों से बचने के लिए रतनयादव के साथ भाग जाती है। लेकिन रतन यादव उसका शारीरिक शोषण करता है और सारी संपत्ति हडपकर प्रेम को अन्य पुरुषों को सौंप देता है। मंदा को रतनयादव तथा पुलिस के हाथों से बचाने के लिए उसकी दादी (बऊ) उसे श्यामली ले जाती हैं और दादा पंचमसिंह उन्हें अपने घर में जगह देते हैं। लेकिन पंचमसिंह का भाई गोविन्दसिंह बऊ से सोनपुरा की उसकी ज़मीन छीन लेती है और ठेकेदार अभिलाख्रसिंह को बेचती है। श्यामली से मंदा और मकरंद के बीच प्रेम संबंध होता है और सगाई भी हो जाती है। लेकिन मकरंद के माँ-बाप सगाई तोडकर मकरंद को शहर ले जाते हैं और डॉक्टर बनाने की कोशिश करते हैं। असफल प्रेम के बाद भी दोनों अविवाहित होकर जीवन बिताते हैं। इसके बीच श्यामली से अपनी पन्द्रह वर्ष की उम्र में कैलास मास्टर द्वारा मंदा बलात्कार का शिकार होती है। अंत में बऊ और मंदा सोनपुरा लौट आती हैं। सोनपुरा के ग्रामीणों की दयनीय एवं शोषित

ज़िन्दगी देख्रकर मंदा का मन तिलमिला हो जाती है और मंदा ग्रामीणों की रक्षा के लिए संघर्ष करती है। यही उपन्यास की कथावस्तु है।

प्रस्तुत कथा के ज़रिये लेख्रिका ने नारी जीवन की समस्याओं के साथ-साथ आज़ाद भारत में सरकार, ठेकेदार, ज़मीन्दार द्वारा गाँववालों के शोषण का चित्रण किया गया है। यौन शोषण, बाल विवाह, विधवा जीवन की समस्याएँ, दहेज प्रथा, विवाहेतर संबंध आदि नारी जीवन की कई प्रकार की समस्याओं को उपन्यास में रेख्रांकित की है। यौवन में विधवा बन गयी बऊ यह समझ्रता है कि लोगों की आँख्रें अपनी संपत्ति तथा ज़मीन पर है। इ्सलिए विपरीत परिस्थितियों में भी हिम्मत न छोडकर वह अपने बेटा का पालन-पोषण अच्छी तरह करती है। लेकिन वृद्धावस्था में गोविंदसिंह उनसे ज़मीन छीन लेती है। महेन्दर की विधवा अपने जीवन की कठिनाइ्यों से बचने के लिए रतनयादव के साथ भाग जाती है। रतन यादव उसका शारीरिक शोषण करता है और संपत्ति हडप लेती है। स्त्रीयों पर होनेवाले यौन शोषण के बारे में भी उपन्यास में ज़िक्र किया है। नाबालिग मंदा भी शोषण से मुक्त नहीं है। अपने मामा कैलास मास्टर द्वारा मंदा का और बूढे ज़मीन्दार अभिलाभ सिंह द्वारा सुगना का यौन शोषण किया जाता है। दहेज प्रथा के कारण पति द्वारा उपेक्षित कुसुमा भाभी, अवधा की बेटी सात वर्ष के सावित्री देवी और आठ वर्ष के बलदेव का बाल विवाह, मंदा और मकरंद का असफल प्रेम आदि नारी जीवन की समस्याएँ उपन्यास में उभरकर आयी हैं।

इसके अलावा उपन्यास में चित्रित प्रमुख समस्याएँ हैं पारिस्थितिक शोषण तथा गाँववालों का शोषण। स्वतंत्रता के बाद देश में विकास के नाम पर हुए विनाश की कहानी उपन्यास में प्रस्तुत की है। नेतागण घोषित किये थे कि आज़ादी के बाद

देश में विकास का काल होगा। लेकिन गाँववाले इसे अपने जीवन का विनाशकाल ही मानते हैं। सरकार द्वारा कई प्रकार की विकास योजनाएँ बनायीं, लेकिन इसके कारण गाँव उजड गये। स्वतंत्रता के बाद सामंती तथा पूँजीवादी लोगों के साथ सरकार द्वारा भी गाँव का शोषण करते रहे। उपन्यास में सामंतों का प्रतिनिधि पात्र है अभिलाखसिंह, जो गाँव के किसानों से ज़मीन हडपकर क्रशर चलाता है। सरकार के विकास निगम द्वारा भी गाँव में क्रशर चलाते थे। गाँववालों की जीविका का मुख्य साधन है खेती। क्रशर के कारण खेती नष्ट हुए किसानों को ठेकेदार क्रशर में भी काम नहीं देते थे। उपन्यास में बताया गया है कि- "क्रशरों ने पहाड काटकर उसके पत्थर ही नहीं पीसे, बल्कि गाँव के लोगों का जीवन ही पीस डाला है।"[32] इस प्रकार विकास के नाम पर "किसी का खेत, किसी का बाग, किसी की मेंड, किसी का पेड, किसी का ताल, किसी का घूरा, किसी का पोखर संकटों में घिरे हैं।"[33] क्रशर में पहाड तोडने के लिए ब्लास्टिंग करती है। इसलिए पूरा गाँव धूल से भरा है। धूलभरी वातावरण में जीकर गाँववाले कई प्रकार की बीमारियों से त्रस्त हैं। आदमी खाँसते-खाँसते बेहाल हो गये। बाल-बच्चे भी उजड रहे हैं। "दमा-खाँसी, टी.बी, पोलिया और टाइफाइड आदि बीमारियाँ डस्ट और गन्दे पानी के कारण जल्दी-जल्दी होता है। धूल सबसे बडी दुश्मन है इन मज़दूरों की।"[34] गाँव में जल प्रदूषण भी बढ रही है। गाँव के कुओं, नदियों का पानी स्वास्थ्य केलिए ठीक नहीं रहता। लोग शुद्ध पानी के लिए तरस रहे हैं। बरसात के दिन क्रशरों में पानी भरकर बाढ भी हो जाता है। "खेत और ताल, सब जगह जल ही जल। मानुस जान भी लें कि कहाँ है तालाब और कहाँ हैं खेत, बकरी नहीं जानती। मुर्गी नहीं समझ पाती। उनके लिए पानी-पानी एक सा। जल ही जीवन, जल ही मरण ।.... रौउताने के बच्चे भी

मुर्गियों की तरह जल-समाधि ले जाते हैं। कभी-कभी।"[35] बरसात के दिन क्रशर में काम न होने के कारण गाँव में अकाल भी हो जाता है। इस प्रकार क्रशरों से पूरा गाँव उजड जाता है। अब गाँव में पहाड बहुत कम है, सबकुछ पिस-पिसकर समतल बना दिया है।

उपन्यास में पारीछा थर्मल प्लांट के दुष्प्रभावों का चित्रण भी किया गया है। थर्मल प्लांट के लिए बेतवा के किनारे पारीछा गाँव में सरिया, मुरम, गिट्टी और पत्थर ट्रक भर आने लगे। खेतों में सडक बनाई जाने लगीं और सडकों पर इंजनों का कर्णभेदी कोलहल घरघराने लगा। अख़बारों में रोज़ समाचार छपकर आया कि इस प्लांट से उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश के सैकडों गाँवों को बिजली मिलेगी, सिंचाई के साधन उपलब्ध होंगे और मशीनों द्वारा खेती हो सकेगी। इसलिए खुशहाली के इस सपने को साकार करने में गाँववालों का भरपूर सहयोग चाहिए। यह बुन्धेलखंड के विकास की अपूर्व घडी है। लेकिन गाँववालों को यह संकट का काल था। गाँव का विनाश होने लगे। खेती नष्ट, फसलें नष्ट हुए। पानी, वायु, मिट्टी, ध्वनि प्रदूषण बढ गये। किसानों से ज़मीन हडप ली गयी और पर्याप्त मुआवज़ा भी नहीं दिया। इसलिए 'ठीकमसिंह' उसके विरुद्ध आन्दोलन चलाया। किसानों को, मज़दूरों को, पशुपालकों को एक सूत्र में बाँधकर सरकार के विरुद्ध लडने का आह्वान दिया और थर्मल प्लांट का काम रुकवा दिया। ठीकमसिंह केस में हारे थे, लेकिन उनकी हिम्मत नहीं हारे। गाँव की रक्षा के लिए आत्मबलिदान देने को भी वह तैयार थे। अंत में किसानों को अपनी ज़मीन के लिए पर्याप्त मुआवज़ा मिला और थर्मल प्लांट के आसपास के गाँववालों को रोज़गार भी मिला।

उपन्यास में सरकार द्वारा बनाये वन-नियम के बारे में भी बताया गया है। गाँववाले अपने जीवन बिताने के लिए जंगल का सहारा लेते थे। वन-नियम का आगमन जंगल और गाँववालों के संबंध को तोडा। लेकिन जिससे जंगल में ठेकेदारी प्रथा की कोई कमी नहीं हुई। ठेकेदार अपने इच्छानुसार पेड कटवाते थे। ठेका तो लें पचीस पेडों का और कटावें पचास पेड।"[36] लेकिन इसके लिए सज़ा भोगना पडता है गाँववाले। "जमानत करवाने तक न जावें ठेकेदार। जे और कह दें, हम नहीं जानते इन्हें, छिपकें काट रहे होंगे।" इस प्रकार ठेकेदार-व्यापारियों का तो यह रिवाज़ हो गया है कि "नफा हो तो ख़ुद धरो, नुकसान हो तो मज़दूर के सिर।"[37] फिर भी अपनी गरीबी, भूख़ को मिटाने के लिए गाँववाले इन ठेकेदारों के अधीन काम करने के लिए मज़बूर हो जाते हैं।

इनके अलावा उपन्यास में राजनीतिक षड्यंत्र, भ्रष्टाचार, शिक्षा के क्षेत्र में हाशियेकृत समाज का शोषण अत्याचार आदि कई मुद्दों पर चर्चा की हैं और उपन्यास के शीर्षक 'इदन्नमम' का अर्थ भी स्पष्ट किया है। इदन्नमम का अर्थ है 'यह मेरा नहीं', जो कुछ मैं अर्पण कर रहा हूँ वह मेरा नहीं। नायिका मंदा की ज़िंदगी तो अपना नहीं, अपने लिए नहीं। सोनपुरा की मुक्ति के लिए हैं। इसके लिए वह अपने आपको समर्पित की है।

इस प्रकार मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास दलित, नारी, पारिस्थितिकी आदि कई दृष्टियों से देखें तो हिन्दी साहित्य जगत की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानने में कोई गलती नहीं होगा।

3.8 अनबीता व्यतीत (2004)

हिन्दी साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर कमलेश्वर का उपन्यास है अनबीता व्यतीत, जिसका प्रकाशन सन् 2004 में ही हुआ। प्रकृति प्रेम को अत्यंत मार्मिक ढंग से उजागर करनेवाले प्रस्तुत उपन्यास में पक्षियों को पकडकर, उसे मारकर धन कमानेवाले व्यक्तियों का चित्रण ही देखा जा सकता है। उपन्यास के ज़रिए लेखक विभिन्न प्रकार की पक्षियों के परिचय के साथ-साथ उनके संरक्षण की आवश्यकता के बारे में पाठकों को जागरूक बनाने का सफल प्रयास किये गये हैं। उपन्यास की नायिका है समीरा, जो अपने अंतिम समय तक पक्षियों की मुक्ति के लिए लडती है।

प्रकृति में कई तरह के जीव-जंतु, पेड-पौधे आदि सम्मिलित हैं। पर्यावरण संतुलन बनाये रखने में हर एक तत्व का अपना महत्व होते हैं। इनमें से एक वर्ग का अभाव पर्यावरण संतुलन बिगडने का कारण बन जाएगा। इसलिए उन सबका अस्तित्व का संरक्षण अत्यंत अनिवार्य है। लेकिन मानव अपने को इस पृथ्वी का शासक मानकर प्राकृतिक तत्व, जीव-जंतुओं पर अपना अधिकार जमा किया है। और अपनी इच्छानुसार उनका नाश भी कर रहे हैं। इस प्रकार धन कमाने के लक्ष्य में पक्षियों को मारनेवाले लोगों को केन्द्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है अनबीता व्यतीत। प्रकृति के तरह-तरह के जीव-जंतुओं में सबसे सुंदर और मासूम जीव है पंछी। मौसम के परिवर्तन के अनुसार परदेस से भी हमारे देश में तरह-तरह के पंछी आते हैं और यहाँ बसते हैं। इस प्रकार विभिन्न देशों से आनेवाले पंछियों के बारे उपन्यास में वर्णन किया है। लेखक बताते हैं कि इन मासूम पंछियों के पीछे मृत्यु पडी रहती है। जगह-जगह इन्हें पकडकर मारा जाता है और व्यापार किया जाता है। इसी यथार्थ को ही प्रस्तुत उपन्यास में उजागर करता है।

उपन्यास की कथाभूमि 'सुमेरगढ' नामक विशाल राज्य है, जो स्वतंत्रता के बाद भारत देश में विलीन हो गया। वहाँ की महारानी थी राजलक्ष्मी, और समीरा उनकी पोती थी। समीरा का पालन-पोषण राजलक्ष्मी ने ही किया। दोनों को जीवजंतुओं से बेहद प्यार थे, ख़ासकर पक्षियों से। एक दिन दीवान ख़ाने के ज़मीन पर कई प्रकार के छोटे-बडे पक्षियों तथा हिरणी के मृत शरीर को देखकर महारानी बहुत दुःखी हो जाती है। वह कहती है- "हे भगवान! जब तूने इन-जीव जन्तुओं को जीवन दिया था तो इन्हें इतनी शक्ति भी देना कि ये बेचारे अपने जीवन की रक्षा कर पाते। ... तेरी दी धरोहर को उन निर्दयी हाथों से बचा पाते जो तूने इन्हें दी थी। विचित्र है तेरी माया... जीवन मृत्यु का यह दुःखमयी संयोग... काश इनसान इसे समझ पाता....।"[38] राजलक्ष्मी की पोती समीरा और उसकी सखी दिव्या दोनों चिडियों को बहुत प्यार करती थीं। इसलिए वे रोज़ राजमहल के पास के झील के किनारे पक्षियों का निरीक्षण करने के लिए जाती थीं। यह झील सुमेरगढ की सबसे अधिक मूल्यवान धरोहर है। लेकिन महाराज सुरेन्द्रसिंह, राजलक्ष्मी और समीरा से बिलकुल भिन्न थे। शिकार ही उनके मनपसंद कर्म थे। अपने जीवन की तनाव और दबाव से मुक्ति के लिए शिकार को ही वे उचित मार्ग के रूप में स्वीकार किये थे। कभी-कभी महारानी इसपर अपना विरोध प्रकट की थी। महारानी के पास दो 'काकातुआ' थे, जिन्हें वह एक विदेशी महिला से ही ख़रीदी थी। एक दिन महाराज अपने क्रोध के अवसर पर इन काकातुओं की हत्या की। इसमें दुःखी होकर महारानी की भी मृत्यु हो जाती है। नानी की मृत्यु के उपरांत अकेली हो गयी समीरा की एकमात्र सहारा दिव्या थी। दोनों अपने अधिकतर समय झील के पास पंछियों के निरीक्षण में बिताया। भारतीय पुरातत्व विभाग से नौजवान अफसर गौतम

सुमेरगढ आ जाता है और दिव्या से परिचित हो जाती है। प्राचीन इमारतों, ऐतिहासिक भवनों, स्थलों आदि को खोजना-परखना और उनकी जन्मकुण्डली बनाना ही उनका काम था। दिव्या गौतम को बहुत पसंद करती है। लेकिन समीरा के व्यक्तित्व से प्रभावित गौतम समीरा को प्यार करता है। इसमें दुःखी दिव्या आत्महत्या की शंका पैदा कर अप्रत्यक्ष हो जाती है। सुमेरगढ में आनेवाले समीरा के पिता नरेन्द्रसिंह का काम पंछियों को एक्सपोर्ट करना था। लेकिन समीरा इसका सख्त विरोध करती है और पंछियों को पिंजरे से मुक्ति देती है। समीरा का कथन था - "परिन्दों को एक्सपोर्ट करना था?.. इन मासूम परिन्दों को! जिन्होंने आपका कभी कोई नुकसान नहीं किया..? जिन पर किसी का कोई अधिकार नहीं। और फिर इन परिन्दों ने आपका क्या बिगाडा था। ... ये कुदरत की संतान हैं... ये मासूम परिन्दे आपकी मिल्कियत नहीं है.. आपके राज्य की प्रजा नहीं हैं... ये तो न जाने कहाँ-कहाँ से.. न जाने किस-किस देश से, सैकडों-हज़ारों मील दूर के देशों से यहाँ झील पर शरण लेने आते हैं। ... क्या शरणगतों पर यह अत्याचार आप जैसे राजपूतों का धर्म रह गया है? आपने इन्हें एक्स्पोर्ट करने के लिए कैद किया था? क्या धन की भूख ने आपकी मान-मर्यादा और धर्म सब कुछ निगल लिया है... आप राजपुत्र नहीं हत्यारे हैं, हत्यारे!"[39] इसप्रकार पिता और पुत्री में मतभेद हो जाती है और नरेन्द्रसिंह समीरा को मारता है। समीरा का विवाह रतनपुर के युवराजा जयसिंह के साथ करवा दिया जाता है। लेकिन जयसिंह भी ऐसा एक व्यक्ति है जो तरह-तरह के जिंदा-मुर्दा-पशु-पक्षियों की एकसपोर्ट, साँप की चबी और उनकी खालों वगैरह की एक्सपोर्ट और सप्लाई करती हैं। यह पहचानकर समीरा अपने बेटे विक्रम को लेकर सुमेरगढ वापस जाती है। गौतम के साथ समीरा के संबंध में शंका के कारण जयसिंह समीरा की हत्या करता है और अपने कानूनी पकड से बचते हैं। समीरा

और अपनी माँ की मृत्यु के बाद गौतम् बिलकुल अकेला हो जाता है और वह सुमेरगढ जाकर वहाँ के झील और प्रकृति प्रधान स्थानों को खरीदता है। माँ के इच्छानुसार धर्मशाला के लिए जोडे गये धन से सुमेरगढ के झील के पास गौतम एक धर्मशाला बनवाता है। उनका कथन है- "माँ, जो धर्मशाला तुम बनवाना चाहती थीं, उसे मैंने प्राणिमात्र की धर्मशाला बनवा दिया है...।" और समीरा को याद करते हुए कहता है कि-"समीरा, मैं इतना ही कर सकता था।"[40] धर्मशाला के पास एक बडा-सा बोर्ड की भी स्थापना की जाती है और उसमें लिखा -

"पंछियों का धर्मशाला
यहाँ शिकार करना मना है।"[41]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक प्रकृति के सबसे मासूम और सुंदर जीव पंछियों को बचाने का आह्वान देते हैं। उपन्यास में बहुत सारे देश-विदेश के पंछियों का परिचय कराते हुए आज के युग में पक्षियों पर होनेवाले अत्याचार का चित्रण किया गया है। अपने अंतिम समय तक पक्षियों की मुक्ति के लिए लडनेवाली समीरा के माध्यम से पाठकों को प्रेरणा देते हैं। इसलिए ही अनबीता व्यतीत को हिन्दी साहित्य जगत का ऐसा एकमात्र उपन्यास माना जा सकता है कि जिसमें पक्षी प्रेम अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास के ज़रिये मानव और अन्य जीवजंतुओं के बीच संपर्क की आवश्यकता का वर्णन किया है, और भारतीय सभ्यता को पुनः स्थापित करने का आह्वान देते हैं।

3.9 कुइयाँजान (2005)

हिन्दी की जानी-मानी लेखिका नासिरा शर्मा का एक बृहद उपन्यास है कुइयाँजान। सन् 2005 में प्रकाशित प्रस्तुत उपन्यास में विश्वव्यापी ज्वलंत समस्या जलसंकट पर विस्तृत चर्चा की है। एक मुस्लिम परिवार के परिदृश्य में लिखे गये उपन्यास की कथा उस परिवार से जुडे विभिन्न अंगों द्वारा आगे बढती है। साथ ही साथ इसमें मुस्लिम परिवार के रीति-रिवाज़, जीवनशैली, रस्म आदि का चित्रण भी मिलते हैं। उपन्यास का मुख्य पात्र है युवा डॉक्टर कमाल, जो खुद एक क्लिनिक खोलकर जनसेवा करके जीवन बिताना चाहता है। उसकी पत्नी समीना इसके लिए उसको पूरी सहायता देती है। उपन्यास का मुख्य विषय पानी की समस्या है, फिर भी इसमें वृद्ध समस्या, डॉक्टरों की सामाजिक प्रतिबद्धता आदि का भी चित्रण किये हैं।

आज पानी का संकट दुनिया भर की सबसे विकराल समस्या बन रही है। धरती का तीन चौथाई भाग पानी होने के बावजूद भी लोग पानी की किल्लत से तडप रहे हैं। इसका मुख्य कारण है आज की विकास नीतियाँ तथा आधुनिक मानव की पूँजीवादी मानसिकता। आधुनिक मानव अपनी तत्कालीन सुख-समृद्धि तथा आर्थिक प्रगति के लिए प्राकृतिक जलस्रोतों पर हस्तक्षेप कर रहे हैं। आज मानव यह भूल जाते हैं कि पानी एक मानवीय आवश्यकता है न कि मानवीय अधिकार। शुद्ध पानी के बिना धरती में जीवन असंभव है, अतः जल ही जीवन है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने भारत में बढती जल समस्या और उसके कारणों को व्यक्त किया है और उसका हल भी ढूँढने का प्रयास किया है। साथ ही साथ भारत के खासकर राजस्थान के परंपरागत जल संचयन के विभिन्न तरीकों का परिचय भी दिया गया है।

उपन्यास की शुरूआत बताशेवाली गली में एक बच्चे का जन्म तथा एक मौलवी की मृत्यु से ही हुई है। मौलवी के गुस्ल के लिए घडों पानी की ज़रूरत है, पर मुहल्ले में पानी की किल्लत है। इसलिए सब लोग परेशान है। मुहल्ले में पानी का संकट इतना बढ गया है -"मोहल्ले के कुएँ बरसों पहले कूडे से पाट दिए गए थे। एक दो घरों में हैंडपाइप थे, जो ख़राब पडे थे। मस्जिदवाली गली से मिली अंदरसेवाली गली थी। वहाँ पक्के बडे-बडे घर थे। उनके यहाँ भी पानी की हाय-तौबा मची थी। शिव मंदिर के पुजारी भी बिना नहाए परेशान बैठे थे। उन्होंने न मंदिर धोया था, न भगवान को भोग लगाया था। .... नल की टोंटी पर कई बार कौआ पानी की तलाश में आ-आकर बैठ-उड चुका था। गरमी ऐसी कि पसीना पानी की तरह शरीर से बहा रहा था। पता नहीं किस आशा में पंडितजी बार-बार नल खोलते फिर बंद कर बडबडा उठते, "पग-पग रोटी, डग-डग नीर.. मगर अब... ई शहर का कईसा हाल बनाय दिए हो भगवान्। न पानी है, न रोटी है।"[42] इस प्रकार पूरा शहर पानी की किल्लत से तडप रहे हैं। इलाके में सिर्फ मानव ही नहीं पशु-पक्षी भी पानी के लिए तरस रहे हैं। "कुत्ते पानी की तलाश में बेचैन रहे थे। बार-बार नली के पास जाकर वह बहती गंदगी को हसरत से देखते, फिर सूँघते और मुंह हटा लेते। नाली में बहती गंदगी इतनी गाढी थी कि उससे पानी अलग नहीं था जिसको वह सतह पर से चाटकर अपनी प्यास बुझा सकते। चिडियों के गोल मुंडेरों पर बैठे हफ रहे थे। उनकी व्याकुल नन्ही-नन्ही आँखें आंगन, हौज और नलके को ताकते-ताकते थक चुकी थीं। जहाँ तक वे पानी की तलाश में उड सकती थीं, उडी थीं, मगर हर जगह सूखा था। पानी की एक बूँद तक उन्हें कहीं नज़र नहीं आ रही थी। उनकी नन्ही-सी जबान उनके तालू से चिपक रही थी।"[43]

लेखिका बताती हैं कि मानव द्वारा धरती पर हुए अत्याचार ही ऐसी एक दुर्दशा का कारण है। मानव धरती को खोद-खोदकर भूगर्भ से भी पानी लेना शुरू किया मगर पानी संचयन के लिए कुछ भी नहीं किया। अंग्रेज़ों की जल-नीति को वैसे-का-वैसा स्वीकार कर भारतीय जल- व्यवस्था का नाश कर दिया और कुएँ-तालाब को आउटडेटड करार देकर अपने पैरों पर कुल्हाडी मार लिया। अब हालत यह हो गयी है कि पानी के लिए देश में लोग आपस में लड रहे हैं। उपन्यास में इसका भी ज़िक्र किया है - "नकलीवाली गली है न, उसमें किसी ने गली के नीचे दबे पाइप में मोटर लगा और पानी खींचना शुरू कर दिया था, जिससे बाकी घरों में पानी में कमी आई। आज जब वह पकडा गया तो पडोसियों ने जमकर उसकी धुनाई कर दी। बीच-बचाववाले भी मना करते-करते उस मारपीट में बाकायदा शामिल हो गए। कई लोग जख्मी हो गए। भीड लग गई। पुलीस गई। रास्ता जाम हो गया। उसी में जाने कितने लोग फँस-फँसकर रह गए।"[44] ऐसी एक भयानक भविष्य को सालों पहले ही विशेषज्ञों ने पहचान लिया था। इसलिए ही बार-बार हमें चेतावनी दी है कि प्राकृतिक जलसंपदा पर मानव का हस्तक्षेप ज़ारी रहें तो वह दिन दूर नहीं जब पानी को लेकर विश्व एक और महायुद्ध की दहलीज पर खडा होगा।

उपन्यास में जगह-जगह पर लेखिका ने आज की वस्तु स्थिति के बारे में खुले रूप से चित्रित किया है। "आज विश्व में आँकडों द्वारा ज्ञात होता है कि लगभग एक अरब से ज़्यादा लोगों को साफ पानी पीने के लिए उपलब्ध नहीं है। दो अरब लोगों को नहाने धोने के लिए पानी नहीं मिल पाता, जिससे लोग अनेक तरह के रोगों का शिकार हो रहे हैं। मृत्यु-दर दिन-प्रतिदिन बढती चली जा रही है। भारत में गाँव, कस्बों, शहरों में लोग कुओं, तालाबों और नदियों से पानी लेते हैं जो

अधिकतर गंदा और कीटाणु-युक्त होता है। उसमें प्राकृतिक रूप से पाए जानेवाले संख्रिया की मिलावट होती है। सारे विश्व में 261 प्रमुख नदियाँ एक से अधिक देशों से होकर गुज़रती हैं। दुनिया के कुल नदी-जल-प्रवाह का 80 प्रतिशत इन्हीं में है और जिन देशों से होकर ये गुज़रती है उनमें संसार की 40 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। पानी के कारण सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तनाव पनपते हैं- जैसे भारत और पाकिस्तान, भारत और बंगलादेश, भारत और नेपाल, सिरिया और तुर्की के बीच और स्वयं भारत में कर्नाटक और तमिलनाडु के बीच कावेरी नदी को लेकर तनाव की स्थिति पनप चुकी है।"[45]

उपन्यास में भारत में गर्मी तथा बरसात दोनों समय में होनेवाले पानी की समस्याओं का चित्रण देखने को मिलता है। गर्मी के समय पानी की तंगी से तथा बरसात के अवसर पर पानी की बहुलता और गंदगी से लोग कई प्रकार की समस्याओं को भुगतना पडते हैं। ख्रासकर स्वास्थ्यपरक समस्याओं को। दूषित पानी के कारण गाँव तथा शहर में आँख्र, पेट और त्वचा की बीमारियाँ और मलेरिया, डायरिया, डेंगु, वयरल हेपाटाइटिस, इनसेफेलाइटिस आदि कई बीमारियाँ फैल जाती हैं। डॉ. कमाल लोगों को सही इलाज देता है और साथ-साथ शुद्ध पानी के महत्व के बारे में लोगों को जागरूक बनाता है। इसके लिए वह भारत के गाँवों में घूमता है और जल संरक्षण और उससे जुडे अन्य कई मुद्दों पर आयोजित राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों एवं सम्मेलनों में प्रतिभागी बनता है। राजस्थान के गाँवों में घूमकर भारत के परंपरागत जलसंचयन के तरीकों को समझ्ता है। यहाँ नासिरा शर्मा जी ने डॉ. कमाल के ज़रिये आधुनिक युग की बढती जल-समस्या के कारणों को व्यक्त करके जलसंचयन के विभिन्न तरीकों के बारे में जनता को अवगत कराने का कार्य

किया है। लेखिका बताती हैं कि जल-समस्या का कई कारण हैं जैसे वनों की अंधाधुंध कटाई, कीटनाशकों का प्रयोग, बाँधों का निर्माण, बढती आबादी आदि। लेकिन इनमें सबसे खतरनाक है आधुनिक युग में बढती पानी उद्योग तथा नदी जोडने की योजना। आज पानी आम आदमी के हाथों से छीनकर पूँजीपतियों को सौंप देता है। यह भविष्य में सबसे बडी समस्या बन जाएगी। लेखिका बताती हैं कि अमेरिकी पत्रिका 'फोर्चून' के अनुसार पानी उद्योग से मिलनेवाला मुनाफा तेल क्षेत्र के मुनाफे की तुलना में 40 प्रतिशत हो गया है। इसलिए बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ बडे पैमाने पर पाइप लाइन बना रहे हैं; जिसके द्वारा गरीब देशों की पानी अमीर देशों तक पहूँचाती हैं। विश्वबैंक तेल की तरह ही इसकी आयात-व्यवस्था पर ज़ोर दे रहा है। भारत में भी पानी उद्योग बढ रहा है। छतीसगढ की शिवनाथ नदी की 22 कि.मी की पट्टी को एक निजी कंपनी के हाथ में देकर सरकार ने वहाँ के लोगों को नदी में प्रवेश पर रोक लगा दी गई हैं। ऐसी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ पानी की बॉटलिंग करती हैं। अंततः सामान्य लोग पीने के पानी से भी वंचित रहने के लिए बाध्य बन जाते हैं। उपन्यास में केरल के प्लाचिमडा गाँव की दयनीय स्थिति का चित्रण भी देख सकते हैं। केरल के पालक्काड जिले में प्लाचिमडा गाँव में कोकोकोला कंपनी ने पानी को बॉटलिंग संयत्र लगाया था। इसके लिए कंपनी ने 300 से 600 फीट गहरे 30 बोरवेल खोदे और प्रतिदिन 15 लाख लिटर पानी ज़मीन से खींचने लगे। नतीजा यह हुआ कि गाँव के पोखर कुएँ, जलाशय और धान के खेत सूख गये।

पानी उद्योग के अलावा उपन्यास में आज के राजनीतिज्ञों द्वारा तैयार किये जानेवाली नदी जोड़ने की योजना के बारे में भी बताया है। नासिरा शर्मा ने इसे एक भारत विरोधी परियोजना और विदेशी षड्यंत्र की चाल ही विशेषित की है।

क्योंकि भारत जैसे विराट देश में नदी जोडने से कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होगी। क्योंकि भारत की न भौगोलिक स्थिति एक समान है और टोपोग्रामी भी उचित नहीं है। इसलिए नदी जोडने से एक नदी की बीमारी तथा समस्याएँ दूसरी नदी को भी मिलती है और कहीं-कहीं सूख्रा तथा बाढ होने की संभावना बढ जाती है। इसलिए उसके प्रति देशवासियों को जागरूक बनाना अत्यंत अनिवार्य है। उपन्यास में लेख्रिका ने राजनीतिज्ञों की ऐसी योजनाओं के विरुद्ध आन्दोलन चलाने का आह्वान भी दिया है।

इसप्रकार प्रस्तुत उपन्यास में आधुनिक युग की विकराल समस्या जल संकट पर विस्तृत चर्चा करते हुए उससे मुक्ति की उपायों के बारे में भी ज़िक्र किया है। हमें अपने परंपरागत जल संचयन की तरीकों को स्वीकार करना ही एक मात्र उपाय है। इसलिए कुएँ, तालाब, पोख्रर आदि का निर्माण करके पानी का संचयन करना चाहिए। इससे एक हद तक पानी की समस्या से बच पायेंगे।

उपन्यास के शीर्षक 'कुइयाँजान' का अर्थ भी उपन्यास में ही दिया गया है। 'कुइयाँ' से तात्पर्य है कि वह जलस्रोत जो मनुष्य की प्यास आदिम युग से ही बुझता आया है। जिसमें वर्षा का जल बडे विचित्र ढंग से समेटती और संजोती है। डॉ. कमाल की बुआ कुइयाँ को कुइयाँ रानी पुकारती है। उनका कथन है कि-"यह हमरी जान है, बेटवा! जाडे में गरम और गरमी में ठंडा पानी दे हमें निहाल कर देत है।"[46] इसलिए डॉ.कमाल उसे कुइयाँजान कहता है।

3.10 हलफनामे (2006)

राजू शर्मा का पहला उपन्यास हलफनामे का प्रकाशन सन् 2006 में ही हुआ। प्रस्तुत उपन्यास में एक ओर भारतीय किसानों के जीवन संघर्ष तथा दूसरी ओर आज के भ्रष्ट राजनीति और सत्तालोलुप शासक वर्ग की निर्दय मानसिकता का चित्रण ही देखा जा सकता है। देश में दिन-प्रतिदिन बढती जा रही जल की कमी ही उपन्यास की केन्द्रीय समस्या है। इसलिए 'हलफनामे' को पानी के संकट की कहानी भी कह सकते हैं। उपन्यास की कथाभूमि उत्तरप्रदेश का सवेरा गाँव है, जो एक ऐसा गाँव है वहाँ पीने और सिंचाई के पानी के लिए लगातार आन्दोलन चल रहा हैं। आन्दोलनकारियों ने चेतावनी दी है कि अगर सरकार इस समस्या का हल नहीं ढूँढा तो वह दिन दूर नहीं जब गाँव-गाँव में पानी के लिए कत्लेआम होगा।

भारतीय किसान जीवन की पृष्ठभूमि में लिखे गये उपन्यास में स्वामीराम एक किसान है, उन्हें दो बार सरकार की तरफ से बेहतरीन काश्तकार का इनाम भी मिल पाया है। उनका बेटा मकईराम एक बिजलीसाज है, उसको खेती में कोई रुचि नहीं था। बाप ने तो मकई का इरादा बदलने का ज़ोर नहीं डाला। दोनों अपने-अपने काम में निर्भर रहे थे। गाँव में पानी की किल्लत दिन-प्रतिदिन बढती रही है। खेती के लिए पर्याप्त पानी न मिलने के कारण पानी की खोज में स्वामीराम तीन बोरवेल खुदवाए। लेकिन तीनों फेल हो गए और स्वामीराम कर्ज में डूब गया। एक दिन मकईराम को यह खबर मिली कि स्वामीराम की मृत्यु हुई है। वह ज़हर पीकर खुदकुशी कर लिया है। बाप की मौत के उपरांत, शासनतंत्र द्वारा निर्मित नयी योजना 'किसान विपदा (आत्महत्या व अन्य कष्ट) निवारण योजना' के लिए मकईराम को चुन लिया। लेकिन मुआवज़ा मिलने के लिए कई हलफनामे दाखिल

करना पडते हैं और इसके पीछे पडकर मकईराम की ज़िंदगी पूरी तरह बदल जाती है। मकईराम के इस कहानी को लेकर आगे बढनेवाले उपन्यास में आधुनिक युग की भ्रष्ट राजनीति, पूँजीपति और शासक वर्ग की निर्दय मानसिकता, पानी की किल्लत से तडपनेवाले किसान व गाँववाले, बोरवेल का दुष्प्रभाव आदि कई मुद्दों पर भी चर्चा की हैं।

उपन्यास की मुख्य समस्या है जल-संकट। लेखक बताते हैं कि दिन-प्रतिदिन बढती जा रही बोरवेल उद्योग ही देश में इतना जल-संकट पैदा किया है। इसका एक जीवंत उदाहरण है सवेरा गाँव। बोरवेल के अलावा गाँव में पानी-संकट का एक और कारण यह है कि 'सवेरा' उत्तरप्रदेश का एक ऐसा गाँव है जो सबसे ऊँचाई पर ही स्थित है। इसलिए वर्षा के समय पानी कहीं रुक नहीं पाता, सब नीचे की ओर बह जाती है। इसलिए पुराने ज़माने में पूर्वजों ने गाँव में पानी का बहाव धीमा करके जल संचयन करने के लिए नहर, नाले, गड्ढे-कुएँ, तालाब-पोखर, छोटे-छोटे बाँध आदि का निर्माण करते थे। यह सिर्फ सवेरा में ही नहीं देश के हर गाँव और हर समाज के लोग इन तरीकों को अपनाते थे। इस प्रकार पृथ्वी के गर्भ में जल-संचयन करके वे सूखे से बचते थे। लेकिन आधुनिक मानव इन तरीकों के महत्व को नज़रअंदाज़ किये और विकास के पीछे चलकर तालाब, पोखर आदि को मिट्टी से भरकर उसके स्थान पर मकानों, कारखानों का निर्माण किये। पानी के लिए पृथ्वी के गर्भ तक खोद-खोद कर पानी चूसने लगे। फलस्वरुप पानी की किल्लत भारी पडा। सवेरा गाँव में जल-संकट इतना बढ गया है -"घर में पानी का एक कतरा नहीं था। आसपास और पूरे गाँव में भारी किल्लत पानी की। गुंडों के नियन्त्रण में टेंकर आते थे, पानी खरीदना पडता। सिंचाई का पानी खूब बिक रहा

था। पूरा बाज़ार.... जल के बिना कर्म-कांड कैसे संपन्न हो सकते थे? घर के सारे घडे, बर्तन ख़ाली, उलटाकर रखे हुए, मानो किसी ने रात में सारा पानी फेंक दिया है...।"[47]

किसान वर्ग की सबसे बडी समस्या है पानी की समस्या। सिंचाई के लिए पर्याप्त पानी के अभाव से खेती सूख जाती है। किसान, एक के बाद दूसरा, तीसरा बोरवेल खुदवाने को मज़बूर बन जाते हैं। लेकिन सब फेल हो जाते हैं और वे कर्ज में डूब जाते हैं। जल की कमी के कारण सरकार सवेरा गाँव को 'डार्क एरिया' घोषित किया है। 'डार्क एरिया' में बोरवेल खोदना मना किया है और दण्डनीय अपराध है। लेकिन असल में गाँव में बोरवेल खोदना एक उद्योग बन गया है। लाला, रेड्डी जैसे पूँजीपति अपनी राजनीतिक ताकत और किसानों की अज्ञता से फायदा उठाकर बोरवेल खुदवाने के लिए कर्ज देते हैं। इन्होंने ही किसान को नये-नये किस्म के बीज तथा कीटनाशकों की बिक्री भी करता है। यह सब गाँव में खेती का नाश होने का कारण बन जाता है। अंत में कर्ज से मुक्ति के लिए किसान अपनी ज़मीन, खेती इन पूँजीपतियों को देने के लिए बाध्य बन जाते हैं। असल में यह पूँजीपतियों का एक चाल है। स्वामीराम भी लाला के इस शोषण का शिकार है। लाला से कर्ज लेकर पनिया बाबा की सहायता से स्वामीराम ने भी तीन बोरवेल खुदवाया। लेकिन बिल्कुल पानी नहीं मिला। पनियाबाबा उपन्यास का एक पात्र है जो जल के साधक थे। जल और उनका अटूट संबंध था। गाँव में एसा एक विश्वास था कि पनियाबाबा को पानी की दिव्य थाह है। जहाँ पनियाबाबा खडा होकर अपनी लाठी उँगली पर नचा दे समझे वहीं जल का सोता है। इसलिए ही वह पनियाबाबा कहलाता है। लेकिन धूर्त और लालची लाला ने पनियाबाबा को अपने काबू में लाया

है। लाला के निर्देशानुसार पनियाबाबा किसानों को बोरवेल के नाम पर ठगने को मज़बूर बन जाता है। अगर पनियाबाबा ऐसा नहीं करते तो लाला और किसी से करवाता था और पनियाबाबा को भीख माँगकर जीने की नौबत आ जाएगी। असल में वह अपने इस काम में बहुत दुःखी थे। उनका मानना था कि मशीन से पानी खींचने पर जल देवता का शरीर दुखता है, घाव पड जाता है और वह नाराज़ हो जाता है। अपने काम में उदास पनियाबाबा स्वामीराम से लाला के धोखे के बारे में बताता है और स्वामीराम को भारत के परंपरागत जल संचयन की तरीकों को सिखाता है, और पनियाबाबा गाँव छोडकर चला जाता है। तीन बोरवेल खोदकर धरती को घाव दिये दुःख में स्वामीराम पछताता है और गाँव में आये पादरी से भी जलसंरक्षण की आवश्यकता तथा जलसंचयन की विभिन्न तरीका सीखता है। गाँव के जलस्रोतों का नक्शा तैयार करके गाँव में जलसंचयन करने का प्रयास करता है। बोरवेल के दुष्प्रभावों के बारे में गाँववालों को अवगत कराता है और जलसंचयन के लिए प्रयत्न करने का आह्वान भी देता है। लेकिन यह लाला के उद्योग में बाधा उत्पन्न कराती है। पहले-पहले लाला स्वामीराम की बदनामी करने का कार्य करता है और उसे पागल घोषित करता है। अंत में लाला अपने तीन मज़दूरों की सहायता से स्वामीराम की हत्या करवाती है, और गाँव में यह खबर फैलाती है कि कर्ज के भोज से स्वामीराम खुदकुशी किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में शर्मा जी ने बढते बोरवेल उद्योग का दुष्प्रभाव तथा भारत में किसानों की दुर्दशा को अत्यंत मार्मिक ढंग से चित्रित किया है। किसानों की दुर्दशा की तीव्रता को व्यक्त करने के लिए आन्ध्रप्रदेश के किसान आत्महत्या के बारे में प्रस्तुत किया है। लेखक बताते हैं- "पिछले तीन सालों में 15000 से ज़्यादा

किसान ख़ुदकुशी कर चुके थे। कारणों के बारे में ज्यादा मतभेद नहीं थे। कुल लागत का 40 प्रतिशत ख़र्चा बीज का था और उनकी तासीर भी तय नहीं थी। चालीस साल की सिंचाई का इतिहास यह था कि किसानों ने बोरवैल में 12000 करोड रुपए झोंक दिए। 1975 के 8,20,000 बोरवेल 1999 तक आते-आते तेज़ी से बढकर 22 लाख़ से ज़्यादा हो गए थे, पानी का स्तर ज़मीन के नीचे लगातार गिर रहा था। एक बोरवेल डालने की लागत 15000 रुपये आती थी और 20,000 रुपये का पम्प अलग। अगर पानी न निकला तो दूसरी जगह ख़ोदने का लालच। एक फेल बोरवेल पर बात रुकती नहीं थी।"[48] "....अधिकांश किसान जिन्होंने आत्महत्या की, उनकी उम्र 31 और 45 के बीच थी, जाति या शिक्षा के स्तर से कोई संबंध नहीं था और सबसे बडा कारण था कर्ज का फन्दा।"[49] "....सरकारी बीमा कंपनियाँ आत्महत्या किये किसानों के अनपढ विधवाओं का बीमा नहीं करतीं। उनके अधिकारी का कहना है ऐसी औरत इतनी असुरक्षित है कि उसका बीमा करना कंपनि के लिए ख़ुदकुशी करने का समान है।"[50] इस प्रकार 'जय जवान जय किसान' नारा लगानेवाले भारत में किसान लोग ही अत्यंत शोषित एवं पीडित हैं। सरकार भी उनकी रक्षा के लिए कोई ख़ास योजनाएँ स्वीकार नहीं करतीं। लेखक बताते हैं कि इतनी किसान आत्महत्याएँ होनेवाले आन्ध्रप्रदेश में 'किसान विपदा निवारण योजना' जैसी कोई योजना अब तक लागू नहीं की है। उपन्यास में इसका कारण भी बताया है - "असल में सरकार मूलतः किसान और कृषि विरोधी है। वह कृषि सेक्टर को गरीब किसान के हाथ से छीनकर पूँजीपतियों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों को सौंपना चाहती है।"[51]

आधुनिक युग उद्योगों का युग है। इस युग में खेती करना अत्यंत कष्टदायक बन रही है। पुराने ज़माने की तरह किसान अपनी इच्छानुसार कृषिकार्य भी नहीं कर सकते। क्योंकि आज कृषि का क्षेत्र भी पूँजीपतियों के अधीन में हो गया है। अधिक से अधिक उत्पादन के नाम पर कई प्रकार के नये-नये किस्म के बीज आज बाज़ार में उपलब्ध है। इनकी सिंचाई के लिए ज़्यादा-से-ज़्यादा पानी की ज़रूरत है और फसलों की रक्षा के लिए कीटनाशकों का प्रयोग भी करना पडता है। जिससे मिट्टी की उर्वरता नष्ट होती है और जल-वायु-मिट्टी आदि प्रदूषित हो जाती हैं। पानी की किल्लत से बचने के लिए बोरवेल की भी ज़रूरत पडती है। वैसे आज किसान भी पूँजीपतियों की कठपुतलियाँ बन गये हैं। पैसा के अभाव में किसान इन लोगों से कर्ज लेते हैं और इसके लिए अपनी ज़मीन इनके पास गिरवी रखती हैं। अंत में कर्ज में डूबकर किसान की ज़मीन नष्ट हो जाती है और वे आत्महत्या करने के लिए मज़बूर बन जाते हैं। आज के किसान लोगों के इस प्रकार के जीवन संघर्ष का दस्तावेज़ है हलफनामे।

उपन्यास में आज की भ्रष्ट राजनीति, सत्ता लोलुप नेतागण, पूँजीपति तथा शासक वर्ग की निर्दय मानसिकता आदि कई मुद्दों पर प्रकाश डाले हैं। एक सत्तालोलुप मंत्री नज़दीकी चुनाव को लक्ष्य करते हुए गाँववालों से वोट मिलने की इच्छा में एक नयी योजना बनाते हैं। तब तक एक भी किसान आत्महत्या न हुए उत्तरप्रदेश में उस मंत्री ने किसान विपदा (आत्महत्या व अन्य कष्ट) निवारण योजना लागू किया है। इसके अनुसार खुदकुशी किये किसानों के आश्रितों को दो लाख रुपया मिलता है। उपन्यास में मकईराम गाँव के ऐसा पहला व्यक्ति है जो मुख्यमंत्री के इस योजना के लिए चुन लिया है। लेखक ने उपन्यास में प्रस्तुत योजना को कहीं-

कहीं 'किसान आत्महत्या योजना' कहते हुए अपना आक्रोश प्रकट किया है। क्योंकि उनका मानना है कि कभी-कभी यह योजना किसान को आत्महत्या करने के लिए प्रेरणा भी देती है। वैसे किसान की आत्महत्या को भी वोट के रूप में बदलनेवाली आज के नेताओं की स्वार्थ मानसिकता का चित्रण भी उपन्यास में किया गया है।

उपन्यास की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसके द्वारा लेखक पाठकों से हमारे परंपरागत जलसंचयन के तरीकों को स्वीकार करने का आह्वान देते हैं। लेखक पाठकों से कहते हैं कि हमें जल का आदर करना चाहिए। "हर जीव, प्रकृति के हर आयाम का एक स्वाभाविक क्षेत्र होता है। जैसे बाघ के लिए हम एक जंगल को क्षेत्र मानते हैं। उसी तरह पानी के होने, उसके बहाव, ग्रहण, निधि, निवास और निर्गम का एक प्रान्त होता है जिसे जल क्षेत्र या जलसंभर कहते हैं। मतलब पानी का संभरण क्षेत्र। सूखे की, बाढ की दिक्कतें तब बढ जाती हैं जब आदमी इस क्षेत्र के साथ मानमानी छोडछाड करता है, जल प्रवाह के नाजुक चक्र में खलल डालता है।"[52] हमारे पूर्वजों ने इन जलसंभरण क्षेत्र का संरक्षण किये थे और तालाब, कुआँ, पोखर आदि बनाकर वर्षा के पानी को इकट्ठा किये थे। लेकिन आज के मानव धरती के इन नियमों को भूल गये। लेखक बताते हैं -"वर्षा के जल पर पहला अधिकार इंसान का नहीं धरती के गर्भ का है... कितनी रीतियों और विधियों में जल छिकडने की व्यवस्था है... पानी का अर्घ्य देते हैं। धीरे-धीरे उसे पृथ्वी पर छोडा जाता है ताकि वह मिट्टी में रिस सके... अंजलि में जल भरते हैं, यह जल के संचयन की पूजा और अभिलाषा है... वर्षा का पानी यूँ ही नहीं बहना चाहिए। छतों पर, गड्ढों में, तालाब, कुएँ और टैंक में उसे एकत्र करना चाहिए, बूँद-बूँद कर सागर बनता है।"[53] इसके लिए एक उदाहरण के रूप में उपन्यास में गुजरात की

'बावडी' के बारे में बताया गया है। गुजरात में बावडी का निर्माण करके जल का इतना बडा सम्मान दिया है, मानो यह कुआँ नहीं जल का पूजाघर हो।"[54]

उपन्यास में जगह-जगह पर जल के महत्व का वर्णन करते हुए उसके संरक्षण की आवश्यकता के बारे में बताया गया है। "जल सबको धारता है, तुझे, मुझे, गाँव, जगत को, जल से आग है, जलना है... जल अग्नि की माता है, सारा कुछ जल से उत्पन्न हुआ और उसी में मिलता है.. पानी है शब्द स्पर्श, रस और रूप, जल में ज्योति प्रतिष्ठित है, ज्योति में जल, जल अन्न है...।"[55] हर युग में जल की महिमा का वर्णन पंडितों ने किया है। 'सत्संग' का एक श्लोक है-

"आपोमयं जगत यह सारा
यही प्राणमय अन्तर्धारा
जल के बिना सब कुछ सूना
मोती, मानुस, चन्दन, चूना"[56]

मध्यकाल में 'रहीम' भी पानी के महत्व का वर्णन किये हैं।

"रहिमन पानी रखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती, मानुस, चून।।"[57]

इसप्रकार उपन्यास में लेखक आज की सबसे विकराल समस्या का चित्रण करके पाठकों से बताते हैं कि जल-संरक्षण के लिए क्या-क्या करना चाहिए। उनके अनुसार बोरवेल खोदना धरती के ऊपर एक तरह का घुसपैठ है या सीधा आक्रमण है। पहले हम पोखर, तालाब आदि के द्वारा पृथ्वी के गर्भ में जल संचयन करना

चाहिए। जल-संरक्षण में पेडों का भी महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं। पेड की जडें वर्षा के पानी पृथ्वी के गर्भ तक ले जाने के लिए सहायता करती है। इस प्रकार धरती में जलसंचयन किये तो पानी की किल्लत से बच पायेंगे। इसलिए पानी की खोज में पृथ्वी के गर्भ तक बडे-बडे मशीनों द्वारा खोदने को छोडकर वर्षा के जल संचयन करने का तरीका अपनाना ही उचित है।

3.11 दावानल (2006)

भारत के पारिस्थितिक आन्दोलनों में चिपको आन्दोलन विशेष महत्वपूर्ण है। इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि में नवीनजोशी द्वारा लिखा गया उपन्यास है दावानल। सन् 2006 में प्रकाशित उपन्यास में वनों पर अपने पंरपरागत अधिकारों की रक्षा के लिए तथा वन-संपत्ति के शोषण के विरुद्ध उत्तराखंड की ग्रामीण स्त्रीयों द्वारा शुरू किये चिपको आन्दोलन की सच्चाइयों को चित्रित किया है। आन्दोलन में सिर्फ स्त्रीयाँ ही नहीं बल्कि गाँव के सारे लोग जैसे बाल-बच्चे, आदमी-औरत, बुजुर्ग सब शमिल हो गये थे। उपन्यास में चिपको की कहानी के साथ-साथ पहाडी जनता के नारकीय जीवन, राजनीतिक भ्रष्टाचार, वनों की अंधाधुंध कटाई और उससे उत्पन्न पारिस्थितिक आघात, आज के सामाजिक प्रतिबद्धताहीन मीडिया जगत् आदि कई मुद्दों का चित्रण किये गये हैं। उपन्यास का मुख्य पात्र है पुष्कर, जो पहाडी होते हुए भी लखनाऊ में ही रहता है। क्योंकि गाँव में शिक्षा की सुविधा नहीं थी। पुष्कर के बाप उसे खूब पढाकर उसका भविष्य बेहतर बनाना चाहते थे, ताकि इससे ही उनके परिवार की गरीबी मिटा सकें। इसलिए छह वर्ष के उम्र में ही पुष्कर को अपने साथ लखनाऊ ले गये। लेकिन, पढाई में मशहूर होने के बावजूद भी चिपको आन्दोलन से प्रभावित पुष्कर, अपनी पढाई छोडकर 'युवक एवं संघर्ष वाहिनी' के साथ मिलकर

आन्दोलन में भाग लिया। क्योंकि वह सिर्फ अपने परिवार के ही नहीं पूरी पहाड की ज़िंदगी बेहतर बनाना चाहता है।

पृथ्वी में जीवन बनाये रख्ने में तथा पर्यावरण संतुलन बनाए रख्ने में वनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वन-संपत्ति का नाश पर्यावरण असंतुलन का कारण बन जाता है। लेकिन आधुनिक युग में वनों का नाश उसकी चरम सीमा पर पहूँच रहा है। इसके कई कारण हैं- जनसंख्या में वृद्धि, शहरीकरण, औद्योगीकरण, विकास योजनाएँ, ठेकेदार एवं वन-माफियाओं का कहर आदि। आज विकास के नाम पर सरकार और वन माफिया द्वारा वनों का शोषण ज़्यादा से ज़्यादा किया जा रहा है। सरकार द्वारा वनों का व्यापारीकरण हो रही हैं। बडी-बडी कंपनियों को कागज़, माचिस, ख्रेल- कूदों के चीज़ों का निर्माण आदि के लिए जंगल नीलाम कर रहे है। फलस्वरूप पेडों से संपन्न वन-संपदा अब केवल मुर्दा कुंदों में बदल रही हैं। ये कंपनियाँ सिर्फ नीलामी हुए पेडों को ही नहीं बल्कि कटाई की सुविधा तथा आर्थिक लाभ के लिए पूरा जंगल एक तरफ से साफ कर रही हैं। धीरे-धीरे उन जंगलों में जहाँ दिन की धूप भी नहीं पहूँचती थी, वहाँ अब पानी तक सूख्र गये। जहाँ लकडी और घास-पत्ती की इफरात थी वहाँ अब उन्हीं चीज़ों के लिए दिन-दिन भर गाँववाले मीलों भटकना पडता है। पहाड में सूख्रा, बाढ, भूस्ख्रलन आदि प्राकृतिक आपदाएँ आम बात बन गये हैं। फलस्वरूप कई पहाडी इलाकों के नामोनिशान तक मिट गये।

सरकार और वन माफिया द्वारा किये जानेवाले जंगलों के शोषण का दुष्प्रभाव सबसे ज़्यादा और सबसे पहले झेलना पडता है पहाडी जनता। जंगल और इन लोगों का अटूट संबंध होता है। जंगल उनके जीवन का अभिन्न हिस्सा है। ख्रेती, कृषि-औजारों का निर्माण, मकान का निर्माण, चूल्हा जलाने की लकडी, भेड-बकरी

चराना, जडी-बूटियाँ आदि रोज़मर्रा के जीवन में इन्हें जंगलों पर अधिक निर्भर रहना पडता है। लेकिन वन-संरक्षण के लिए सरकार द्वारा लागू किये वन अधिनियम और जंगलों का व्यापारीकरण आदि ने पहाडी जनता और जंगलों के अटूट संबंध को तोडा। सरकार इन्हें जंगलों की घुसपैठिया कहकर आने-जाने में रोकथाम लगाया। उनके भेड-बकरियों को पर्यावरण के शत्रु घोषित कर जंगलों में चराने का भी विरोध किया। उपन्यास का एक प्रसंग है- पहाडी जनता डी.एफ.ओ.के पास जाकर हाथ जोडकर कहते हैं कि- "साब रियासत ने जो वन बंदोबस्त किया है, उसमें तो हमारे जानवर भूखे मर जाएँगे। अब हम उन्हें कहाँ चराने ले जाएँगे? रहम करो सरकार।" मगर डी.एफ.ओ का जवाब था कि- "तुम्हारे जानवरों के लिए रियासत नुक्सान नहीं उठा सकती। जाओ उन्हें पहाड से नीचे धकेल दो।"[58] उनका मानना है- "भेड-बकरियाँ पर्यावरण के शत्रु हैं। ऊँचे पहाडों, कठिन-नाजुक चोटियों तक जाकर उन्होंने मिट्टी को घास विहीन कर दिया है। वह घास खतम हो गयी है जो मिट्टी को अपनी जगह बांधे रखती है। पर्यावरण को बचाना है तो ऊँचे पहाडों में भेड-बकरी पालन पर रोक लगानी होगी।"[59] इस प्रकार वन-संरक्षण के नाम पर गाँववालों को जंगलों से दूर रखनेवाली सरकार द्वारा ही उसका व्यापारीकरण हो रहे हैं। बडे-बडे कंपनियों को सिर्फ बारह पैसे घनफुट से पेडों को नीलाम कर रहे हैं। गाँववालों को जलाऊ लकडी भी साढे तीन रुपये घनफुट से ही वन विभाग दिया जाता है।

इन कंपनियों द्वारा हो रहे वनों की अंधाधुंध कटाई के दुष्प्रभावों से पूरा इलाका त्रस्त है। रामप्रसाद जी का कथन है कि-"दगडियो, तुम अब अपने चारों तरफ नज़र घुमाओ और सोचो। सोचो कि यहाँ चारों तरफ इतने पैरा (भू-क्षरण)

क्यों पड रहे हैं? चार बरस पहले अलकनंदा में उतनी भारी बाढ क्यों आई थी? तुम्हारे सारे जंगल कहाँ गए? कहीं जंगल कटने से ही तो यह सब विनाश नहीं हुआ? ये जंगल कौन लोग काट रहे हैं? और तुम्हें जलाने को लकडी भी नहीं मिल रही है। हमारी माँ-बहनों को घास और लकडी के लिए कितनी दूर भटकना पड रहा है। ... तुम्हारे गाँव के पास थोडा जंगल बचा है, अब उसका भी ठेका उठ गया है। कुछ ही दिन में कटान शुरू होगा। ..... इसलिए दगाडियो अपने जंगल को बचाना।"[60] पेडों की कटाई से गाँव में घास-लकडी-पानी दुर्लभ होते रहे। कई प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं को झेलना पडा। गाँव में पानी की समस्या इतनी बढ गयी है कि पानी के सोते भी सूखे जा रहे हैं। लेखक बताते हैं कि-"बस की खिडकी से वह देखा करता था बांज के पेडों पर चढी औरतों को, जो बैशाख जेठ के महीनों में हरे-चारे के लिए पेड की फुनगी पर बची पत्तियों को काटने के लिए पेड के साथ दोहरी होकर झूला करती थी। ... कतार की कतार औरतों को कहीं दूर से पानी के बर्तन लादे लाते देखकर वह समझने लगा था कि पानी के पर्याय पहाड में पानी कितना दुर्लभ होता जा रहा है।"[61] "एक बूँद पानी के लिए गाँव में बर्तनों की लाइन ही देख सकते हैं। पानी भरने के लिए अपने बारी का इंतज़ार करते लोगों ने बताया है कि वहाँ कुछ वर्ष पहले तक पानी की मोटी धार गिरती थी। अब पानी इतना कम हो गया है कि एक घडा भरने में आधा घंटा लग जाता है।"[62]

पहाडी इलाके में अब भूस्खलन आम बात बन गयी है। कंपनियों द्वारा जबसे पेड सफाचट होने लगे, तब से मिट्टी और पत्थर बिलकुल आज़ाद हुए। बरसात के दिन मिट्टी कट-कट कर नीचे गाँवों में आने लगे। वैसे बडे-बडे पत्थर नंगे होते रहे। पहाड, गाँव के सिर पर खतरनाक हो गया है और वर्षा के समय भयानक

आवाज़ से नीचे गाँवों में गिरने लगे। इसके अलावा पहाडों से बहकर आनेवाले मिट्टी, पेड-पत्थर आदि नदी में जम जाता है और नदी के बहाव पर बाधा हो जाता है। नदी में पानी भरते वक्त वह टूट जाता है और प्रलय हो जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में ऐसे बाढ, भूस्खलन में लापता हुए तवाघाट, गंगानाणी, बेलाकूची गाँवों का चित्रण भी किया गया है।

इन पारिस्थितिक आघातों तथा सरकार और ठेकेदारों के शोषण से त्रस्त पहाडी जनता जीविका चलाने के लिए शहरों की ओर पलायन करते हैं। वहाँ होटलों में बर्तन माँजने तथा जूठन धोने के लिए मज़बूर बन जाते हैं। उपन्यास में बताया गया है कि आम पहाडी परिवारों की तरह गाँव में उनके पास भी थोडी सूखी खेती थी जिससे परिवार का पेट चार महीने भी भरता न था। गेहूँ बो सके तो धान खतम और धान बो पाए तो गेहूँ खतमवाला किस्सा था। इसलिए परिवार का पेट भरने और तन ढकने के लिए शहर जाते हैं या सडक निर्माण मज़दूरों के साथ जुडकर काम करते हैं।

इस प्रकार जंगल और गाँववालों के प्रति होनेवाले अत्याचारों के विरुद्ध वे संघर्ष करने लगे, जब सरकार ने जंगल को साइमंड कंपनी को बेच दिये तब इसके विरुद्ध गाँव की गौरादेवी नामक महिला के नेतृत्व में स्त्रीयाँ मिलकर आन्दोलन चलाया। वे पेडों को चिपककर उसे काटने से बचा लिए। वैसे प्रस्तुत आन्दोलन 'चिपको आन्दोलन' नाम से जानने लगे। चिपको का नारा था कि "मैं खुद कट जाऊँगा, मगर पेडों को नहीं काटने दूँगा।"[63] ठेकेदार और मज़दूर उनके सामने घुटने टेकने पडे। वैसे चिपको आन्दोलन से पेडों को दुनिया भर में अद्‌भुत प्रतिष्ठा मिल गयी। लेकिन असल में चिपको आन्दोलन सिर्फ पेडों की रक्षा के लिए नहीं थे बल्कि

उसकी शक्ल सामाजिक-आर्थिक थी। उसमें वन-आधारित लघु उद्योगों की माँग थी। वनों की उपज पर जनता को अधिकार दिये जाने की माँग थी, ताकि उसका उपयोग स्थानीय जनता अपनी आर्थिक बेहतरी के लिए कर सके। लेकिन आन्दोलन के व्यापक होने के साथ-साथ यही मूल स्वर कहीं खो गया और कुछ नेता चिपको को शुद्ध पर्यावरण आन्दोलन घोषित किया। आन्दोलन को दुनियाभर में खूब ख्याति मिला और उसको केन्द्र में रखकर देश-विदेश में कई डोक्युमेंटरी तथा फिल्म भी बनाया। नेताओं को पद्मभूषण, मैगसेसे जैसे पुरस्कार भी मिला। लेकिन आन्दोलन के इनाम के रूप में पहाडी जनता को मिला एक वन-अधिनियम। जिससे वनों पर उन लोगों के बचे-खुचे अधिकार भी छीन लिए।

इतना बडा आन्दोलन के बावजूद भी जंगल में ठेकेदारी प्रथा समाप्त नहीं कर सका। जंगलों में ठेकेदार और वन-माफियाओं का कहर ज़ारी रहे। सरकार द्वारा जंगलों का नीलाम करते रहे। पारिस्थितिक आपदाएँ बढती रहीं। हर एक हादसे के बाद नेता और मंत्रियाँ आकर आँसू बहाकर जा रहे थे। भाषणों में गाँववालों तथा जंगलों के बचाव की वादा कर रहे थे। लेकिन यह सब जनता के सामने की जानेवाली फालतू बातें थी। घडियाली आँसू थे। राजधानी लौटने के बाद ये सारी घोषणाएँ और आश्वासन भूल जाते थे। क्योंकि वनों की कटाई पर पूर्ण प्रतिबंध की माँग उनके राजनीतिक-आर्थिक हित में नहीं थी। नेता अपने राजनीतिक जडों को काटने को तैयार नहीं थे। ठेकेदारों से मुनाफे का अच्छा खासा हिस्सा उन्हें भी मिल रहे थे। पुराने ठेकेदार अब राजनीतिज्ञ या वन-विभाग के एजेंट बन गये थे। इसलिए वन-विभाग ने कागज़ पर ठेकेदारी प्रथा समाप्त कर दी थी लेकिन वनों की अवैध कटाई पहले जैसे ही जारी था।

प्रस्तुत उपन्यास में नवीन जोशी ने अमूल्य वन-संपत्ति पर होनेवाले क्रूर अत्याचारों को चित्रित की है। लेखक बताते हैं कि वर्तमान युग में वन-विनाश उसकी चरम सीमा पर पहूँच रहा है। पेडों के इस वैध-अवैध कटाई के कारण पारिस्थितिक असंतुलन हो जाता है, और कई प्रकार की प्राकृतिक आपदाएँ हो रही हैं। आर्थिक लाभ के नशे में मानव यह भूल जाते हैं कि वनों का व्यापक विनाश अपने ही पैरों पर कुल्हाडी मारना है। लेखक अपनी आशंका इस प्रकार प्रकट किये हैं- "तत्कालीन नुक्सान का यह हिसाब भी कितना छोटा है, उस दीर्घकालिक छेडछाड के सामने जो इन पहाडों ने झेले हैं। प्रकृति को आदमी ने, उसकी व्यापारिक हवस और बढती ज़रूरतों ने जिस तरह छेडा है, जितना नुक्सान पहूँचाया है, उसकी तुलना में प्रकृति का यह जवाबी हमला बहुत मामूली है। यही हाल रहा तो आगे जाने क्या-क्या हो।"[64] असल में आज की प्राकृतिक आपदाएँ प्रकृति का जवाबी हमला है। प्रकृति अपने साथ मानव द्वारा किये जानेवाले छेडछाड के खिलाफ युद्ध छेड दिया है। अब भी मानव यह समझने में असमर्थ है तो सर्वनाश का उस दिन अधिक दूरी पर नहीं है।

3.12 ग्लोबल गाँव के देवता (2009)

समकालीन हिन्दी साहित्य के नये हस्ताक्षर रणेन्द्र का पहला उपन्यास है ग्लोबल गाँव के देवता। इसका प्रकाशन सन् 2009 में ही हुआ। प्रस्तुत उपन्यास में झारखंड के जंगलों और पहाडों में बसे असुर आदिवासी समुदाय की दयनीय एवं उपेक्षित ज़िन्दगी अत्यंत मार्मिक ढंग से चित्रित किया गया है। उपन्यास में विकास और औद्योगीकरण की वजह से उत्पन्न विस्थापन और प्रकृति पर होनेवाले हस्तक्षेप का भी चित्रण देखने को मिलता है। भौरापाट इलाके में शिक्षक के रूप में आनेवाले

लेखक की कहानी से ही उपन्यास आगे बढती है। पहाडी इलाके में मिले नौकरी में पहले-पहले वह असंतुष्ट थे, लेकिन धीरे-धीरे उस इलाके और असुर आदिवासियों से उनका अटूट रिश्ता हो जाते हैं और आदिवासियों के अस्तित्व की लडाई में वे भी सक्रिय भागीदारी देते हैं।

भारत में गरीबी, भूख़मरी और विस्थापन आदि समस्याएँ वहीं पर ज़्यादा है जहाँ अपार ख़निज संपदा मौजूद है। इसका एक उदाहरण है झारख़ंड राज्य। झारख़ंड के पहाड में जिस समतल भू-भाग में असुर जनजाती रहते हैं, उसके नीचे अमूल्य ख़निज बोक्साइट पाया जाता है। इसके ख़नन के नाम पर सरकार और पूँजीपति असुर आदिवासियों से क्रूर-अत्याचार करते हैं और इन्हें अपनी ज़मीन से बेदख़ल कर रहे हैं। लेकिन ऐसे विस्थापित लोगों का पुनर्वास या उनकी मुआवज़ा आदि की कोई व्यवस्था नहीं करते। ये लोग कहाँ गये? कैसे जियें इसके बारे में भी सरकार सोचते नहीं। ऐसे असुर आदिवासियों की दर्दनाक ज़िन्दगी तथा ख़नन कार्य की वजह से उत्पन्न पारिस्थितिक आघात ही उपन्यास का मुख्य विषय है।

आधुनिक युग में विकास की सीढी चढते मानव सिर्फ अपनी सुख़-सुविधाओं के लिए अपने अस्तित्व को भी भूलकर प्रकृति के हर तत्व पर हस्तक्षेप करने लगे। वे ज़मीन के नीचे दबे ख़निजों को बडे पैमाने पर निकालने के लिए जंगलों को साफ करने लगे और उस पर बसे आदिवासियों को ख़देडना शुरू किया। पहले-पहले इन पूँजीपतियों का नज़र उनके जंगलों पर थी, धीरे-धीरे ज़मीन के भीतर छिपे रहे ख़निजों पर भी होने लगे। इसके लूट के लिए नाम भी रख़ा कि देश की प्रगति। वैसे सदियों से जंगलों में बस रहे आदिवासी अपनी माटी से दूर होने लगे। पूँजीपति और सरकार दोनों मिलकर इन्हें अपनी जडों से सदा-सदा के लिए उख़ाडने लगे।

वैसे झारखंड के ये बहुसंख्यक आज अल्पसंख्यक हो रहे हैं। झारखंड के इस असुर आदिवासियों की संघर्षभरी ज़िन्दगी को ग्लोबल गाँव के देवता में वाणी मिलती है।

भौरापाट के आदिवासियों के जीवन-यापन का मुख्य स्रोत खेती है। लेकिन बढते खनन उद्योग की वजह से खेती नष्ट हो जाती है। खनन के लिए पूँजीपति आदिवासियों को डरा-धमकाकर या फुसलाकर उनसे ज़मीन हडप लेते हैं। गाँववालों पर ज़मीन बेचने के लिए दबाव डालता है अगर नहीं माने तो हत्या करवाते हैं। भौरापाट में ज़मीन के टुकडे के लिए हत्या आम बात बन गयी थी। इन ज़मीन से बाक्साइट निकाल-निकालकर बडे-बडे गड्ढे वैसे ही छोड दिये थे। उपन्यास में भौरापाट का वर्णन लेखक इस प्रकार ही दिये हैं- "मिलों तक पसरे पहाड के ऊपर का यह चौरस इलाका मन को और उचाड कर रहा था। छिटपुट जंगल बाकी खाली दूर-दूर तक फैले उजाड बंजर से खेत। बीच-बीच में बॉक्साइट की खुली खदानें। जहाँ से बॉक्साइट निकाले जा चुके थे वे गड्ढे भी मूँह बाये पडे थे। मानो धरती माँ के चेहरे पर चेचक के बडे-बडे धब्बे हों।"[65]

पाट में खनन-कार्य वर्षों से हो रहे हैं और इसमें वैध से भी ज़्यादा अवैध खनन ही कार्यरत है। ये लोग खनन के उपरांत गड्ढे वैसे ही छोड दिये थे। गड्ढे को भरने की व्यवस्था कोई कंपनी नहीं करते थे। खनन-उद्योग की शर्तों में सबसे प्रमुख शर्त है कि बॉक्साइट निकालकर गड्ढा भरना ज़रूरी है। लेकिन पाट में बीसों साल से कोई कंपनी इन शर्तों का पालन नहीं करते थे। "चाहे वह शिंडाल्को जैसी बडी कंपनियों की खदानें हो या पोद्दार- राँगटा जैसी छोटी कंपनियों की। सबकों केवल बाक्साइट ही चाहिए। उसके बाद मिट्टी भरने का खर्च कंपनी को भारी लगने लगता है। चाहे मुनाफा करोडों से अरबों की ओर उछलता जा रहा हो, ये लोग

पाट क्षेत्र में पैसा ख़र्च करने के लिए तैयार नहीं है।"[66] वैसे पिछले पच्चीस तीस सालों में खान मालिकों ने जो बडे-बडे गड्ढे छोडे हैं, उनमें बरसात के दिन पानी भर जाता है और मच्छर पलते हैं। यह पाट में सेरिब्रल मलोरिया नामक महामारी फैलने का कारण बन जाती है। उपन्यास में कहा है कि मच्छरों ने आदिवासियों का जीना हराम कर रखा है। चार दर्जन से ज़्यादा जवान लडके सेरेब्रल मलेरिया से मरे हैं। बूढे-बुजुर्गों की संख्या अब तक गिनती ही नहीं है। गड्ढों को भरने के लिए गाँववाले सरकार को दर्जनों दरख्वास्त दिये थे। लेकिन सरकार भी इन लोगों की दर्दनाक ज़िन्दगी को अनदेखा कर रही है। इसके बारे में रामकुमार का कथन है- "पाट पर आबादी जितनी जल्दी खत्म हो बॉक्साइट निकालने में उतनी ही आसानी होगी।"[67]

खदानों के कारण आदिवासी जल-जंगल-ज़मीन से वंचित रहते हैं। पहले, इलाके के लगभग सभी गाँवों में अधिकांश परिवारों के पास साल-भर अनाज उगा पानेवाली खेती थी। जिन घरों में खेती नहीं होती उस घर का पेट तो जंगल ही पालता। महुआ, कटहल कई तरह के कन्द और साग सब पेट भरने के काम आते थे। लेकिन अब उनके पास खेती या जंगल नहीं है। इसलिए वे अपने भूख-गरीबी को मिटाने के लिए खदानों में जोखिम उठाकर काम करने के लिए मज़बूर बन जाते हैं, वह भी बहुत कम वेतन में।

खनन उद्योग के कारण इलाके में पानी की समस्या बढ रही है। पानी के अभाव से पूरा इलाका प्यासा रह गया है। खेतिहर भूमि पानी के अभाव में बंजर-पत्थर सी दिखती है। गाँववाले शुद्ध पानी के लिए तडप रहे हैं। पाट की ज़मीन से करोडों-अरबों रुपया कमानेवाले कंपनियाँ इलाके में पीने के लिए पानी की सुविधा, अस्पताल-शिक्षा-सडक जैसी कोई भी सुविधा देने के लिए तैयार नहीं थे। असली

बात तो यह है कि ये लोग आदिवासियों को आदमी में गिनते ही नहीं है। लेखक बताते हैं कि शुद्ध पानी के अभाव में त्रस्त इलाके में शिंडाल्को कंपनी के मैनेजर किशन कन्हैया पांडे के बँगले के स्विमिंग पूल में पानी भरने के लिए एक टेंकर रोज़ नागा पानी लेकर आया था। इसी लघु एवं सुंदर स्विमिंग पूल में अभिसारिकाओं के साथ वे और उसके अतिथि जलक्रीडा करते थे।

आदिवासियों के जीवन उजाड करके उनकी ज़मीन से निकालनेवाले बॉक्साइट मीलों दूर जहाँ प्रोसेस होकर अलूमिनियम में ढलता है, वह जगह 'सिलवर सिटि ऑफ इंडिया' ही जाना जाता है। वह एक ऐसा जगह है वहाँ फूलों-पार्कों से लदी हरी-भरी ख़ूबसूरत कॉलनी थे। कई स्कूल, चमचमाते बाज़ार, क्लब-घर, योगा केन्द्र, लैब्ररी, ख़ेल के मैदान सब वहाँ थे। दिख्रने में धरती पर उतरे इन्द्रलोक जैसा महसूस करते थे। लेकिन बॉक्साइट निकालनेवाले इन इलाकों का क्या हाल है? ये कंपनियाँ लाभ का कुछ भी हिस्सा पाट के लोगों के विकास के लिए ख़र्च नहीं करते थे। इलाके में आदिवासियों को न पीने के पानी की व्यवस्था, न होस्पिटल, न मलेरिया- डायरिया की रोकथाम का कोई इंतज़ाम। बन्द ख़दान के सैकडों गड्ढे विशाल पोख्ररों में बदल जाती है। कीचड में लोटते सूअरों और आदिवासी बच्चों में फर्क करना मुश्किल है। यहाँ के लोग मकई का घट्टा ख़ा-ख़ाकर जीभ पर घट्टा पड जाता है। इलाके में भात-दाल सब्जी भी पर्व-त्योहार का भोजन है।

इसके अलावा असुरों के सौ से ज़्यादा घरों को उजाडकर, जंगल साफ कर भौरापाट जैसे दो-तीन गाँवों को समाकर पाथरपाट में हरा-भरा, सुंदर, व्यवस्थित एक स्कूल बनाया है। उसके आसपास अभी भी असुर आबादी है। लेकिन पिछले तीस वर्षों से उस स्कूल में एक भी आदिम जाति के बच्चे पढाई नहीं की थी। वहाँ

राज्य के सबसे मेधावी लडके ही पढते थे, जिन्हें सबसे ज़्यादा वेतन पानेवाले सुयोग्य शिक्षक ही पढाते हैं। आदिवासियों के लिए भौरापाट में एक फुसलावन स्कूल बनाते थे। उसमें भी आदिवासियों से ज़्यादा बाहर के बच्चे ही पढते थे। आधी-अधूरी बिल्डिंग, मुर्गीख़ानों जैसा शिक्षक आवास, जैसे-तैसे बना हॉस्टल। हॉस्टल मेस में दाल-भात केवल कहने को मात्र ही है, मेस में साफ-सफाई भी नहीं थी। स्कूल में पढाने के लिए पर्याप्त अध्यापक भी नहीं थे, शेष अध्यापकों को पढाने में कोई दिलचस्पी नहीं होती थी।

इस प्रकार बाहरी दुनिया से अलग होकर सारी सुख-सुविधाओं से वंचित रहने के लिए अभिशप्त आदिवासियों के नये शोषक के रूप में 'वेदांग' नामक विदेशी कंपनी भी आ जाता है। उपन्यास में बताया है कि केवल शिंडाल्को जैसे ग्लोबल गाँव के छोटे-छोटे देवताएँ ही नहीं टाटा जैसे देशी तथा वेदांग जैसे विदेशी बडे-बडे देवताएँ भी इनका शोषण करते हैं। असुरों की मानना हैं कि टाटा जैसी कंपनी ने ही उनके लोहा गलाने और औजार बनाने की क्षमता को नष्ट कर दिया है। इसे वे अपने इतिहास की सबसे बडी हार मानती हैं। 'वेदांग' कंपनी विदेशी होते हुए भी इसका नाम देशी रखकर भौरापाट में आ जाती है। वेदांग कंपनी को केन्द्र सरकार ने ही भौरापाट भेजा है। लेकिन असुरों ने इस कंपनी को ज़मीन देने से विरोध किया। इसलिए वेदांग कंपनी की सहायता करने के लिए केन्द्र सरकार नये तंत्र का निर्माण करती है कि भौरापाट में भेडिया अभयारण्य बनायें। यह योजना भौरापाट के लगभाग चौंसठ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र से आदिवासियों को हटाकर उस ज़मीन कंपनी को देने के लिए एक बहाना मात्र था। सरकार की मानना था कि उस क्षेत्र में पहले भेडियों की संख्या सात सौ अट्ठासी थी, वह घटती-घटती एक सौ छिहत्तर रह गयी

है। इसलिए उनको बचाना ज़रूरी है। अतः भौरापाट में अभयारण्य बनाकर ही इन्हें बचा सकें। योजना के विरुद्ध रुमझुम नामक आदिवासी प्रधानमंत्री को पत्र लिखता है। "…. बीसवीं सदी की हार असुर जाति के पूरे इतिहास में सबसे बडी हार थी। टाटा जैसी कंपनियों ने हमारा नाश किया। …. मज़बूरन पाट देवता की छाती पर हल-चलाकर हमने खेती शुरू की। किंतु बॉक्साइट के वैध-अवैध खदान, विशालकाय अजगर की तरह हमारी ज़मीन को निगलता बढता आ रहा है। हमारी बेटियाँ और भूमि हाथों से निकलती जा रही है। … शायद आपको पता हो कि हम असुर अब सिर्फ आठ-नौ हज़ार ही बचे हैं। हम बहुत डरे हुए हैं। हम खतम नहीं होना चाहते। भेडिया अभयारण्य से कीमती भेडिये ज़रूर बच जाएँगे, किन्तु हमारी जाति नष्ट हो जाएगी।"[68] लेकिन फैक्स नंबर के अभाव में पत्र भेज नहीं पाया। इसलिए गाँववाले 'संघर्ष समिति' द्वारा आन्दोलन शुरू करते हैं। लेकिन आदिवासियों के अस्तित्व की लडाई सरकार और पुलीस ने नक्सली आन्दोलन घोषित करके उसे दबाता है। पुलिस द्वारा इन पर गोली चलाती है और कई गाँववालों की मृत्यु हो जाती है।

खनन उद्योग के अलावा उपन्यास में चर्चित एक और बडी समस्या है नदियों का निजीकरण। "छतीसगढ के रायगढ जिले से होकर बहनेवाली एक बडी नदी शिवनाथ को सरकार द्वारा एक इंडस्ट्री समूह को बेच दी गई। उसका निजीकरण हो गया। कई-कई गाँवों के लोग, मवेशी, चिरई-चुनमुन, खेत-बघार सब पानी के लिए छछन रहे थे। बोन्दा, टीकरागाँव के लोग इसके विरुद्ध राजधानी में जाकर अनशन पर बैठे। सत्यभामा, शऊरा भी अपने आदमी और बेटे के साथ अनशन पर बैठी। .. नतीजन ठीक गणतन्त्र दिवस के दिन सत्यभामा, शऊरा की भूख से मौत हो गयी।

लेकिन हाकिमों को लगा कि गरीबी-नियंत्रण का यह भी एक तरीका हो सकता है, सो शिवनाथ नदी के बाद अन्य तीन-चार बडी नदियाँ निजी हाथों में सौंप दी गयीं।"[69]

लेखक बताते हैं कि यह सिर्फ भौरापाट या सखुआपाट जैसे एक-दो गाँवों की समस्या ही नहीं देश के कई-कई राज्यों में हाशियेकृत समाज अपनी अस्मिता और अस्तित्व के लिए संघर्षरत है। उदाहरण के रूप में मणिपुर की इरोम शर्मिला, केरल की सी.के. जानू, महाराष्ट्र की सुरेखा दलबी, मध्यप्रदेश की दुवसिया देवी, छिन्दवाडा की दयाबाई आदि के बारे में ज़िक्र किये हैं। इनके द्वारा लेखक पारिस्थितिक नारीवाद का समर्थन करने की कोशिश की हैं। लेखक बताते हैं- "धरती भी स्त्री, प्रकृति भी स्त्री, सरना माई भी स्त्री और उसके लिए लडाई लडती सत्यभामा, इरोम शर्मिला, सी.के.जानू, सुरेखा दलवी और यहाँ पाट में बुधनी दी और सहिया, ललिता भी स्त्री। शायद स्त्री ही स्त्री की व्यथा समझती है। सीता की तरह धरती की बेटियाँ-धरती में समाने को तैयार। शिकारी जो समझता रहे।"[70]

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि ग्लोबल गाँव के दवेता आदिवासियों के अनवरत जीवन संघर्ष का दस्तावेज़ है। साथ ही साथ उपन्यास में खदानों से उत्पन्न पारिस्थितिक आघात तथा नदियों का निजीकरण आदि गंभीर समस्याओं पर भी चर्चा की हैं। देश के पारिस्थितिक एवं हाशियेकृत समाज का आन्दोलन व्यक्त करते हुए पारिस्थितिक नारीवाद पर भी विचार किये हैं। इस प्रकार देखें तो ग्लोबल गाँव के देवता हिन्दी साहित्य जगत् की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

3.11 मरंग गोडा नीलकंठ हुआ (2012)

हिन्दी की प्रतिभासंपन्न लेखिका महुआमाजी का उपन्यास है मरंगगोडा नीलकंठ हुआ। प्रस्तुत उपन्यास को स्वयं लेखिका ने ही विकिरण, प्रदूषण व विस्थापन से जूझते आदिवासियों की गाथा कही है। सन् 2012 में प्रकाशित उपन्यास उतना विस्तृत और व्यापक है जिसमें सिर्फ भारत के ही नहीं बल्कि जापान, अमेरिका, ओस्ट्रेलिया तथा विभिन्न द्वीपों पर रहनेवाले उन आदिवासियों की करुण कथा कही गई है, जो रेडियोधर्मी विकिरण तथा विकास के नामपर भूमि अधिग्रहण द्वारा निरंतर विस्थापित होते रहते हैं। उपन्यास का परिवेश झारखंड के मरंग गोडा और सारंडा इलाके हैं। 33 भागों में विभक्त उपन्यास में मरंग गोडा के समृद्ध काल से लेकर आज युरेनियम खनन और उसके फलस्वरूप उत्पन्न रेडियोधर्मी प्रदूषण से तहस-नहस हुए मरंग गोडा की खतरनाक स्थिति व्यक्त की हैं। लेखिका बताती हैं कि आज विश्वव्यापक रूप में होनेवाले युरेनियम खनन से जो रेडियोधर्मी प्रदूषण फैल रहा है उसका दुष्प्रभाव द्वितीय विश्वयुद्ध में हिरोशिमा तथा नागसाकी पर गिराए गये परमाणु बमों के दुष्परिणामों से कई गुना ज़्यादा है। इससे मानव की अनेक पीढियाँ विकृत और विकलांग बच्चों को जन्म दे रही है, जिससे संसार के लाखों करोडों मनुष्य, जीवजंतु तथा पेड-पौधों का नाश होते जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त उपन्यास में हर एक देश में विकास के नाम पर किये जा रहे भूमि आधिग्रहण के कारण अपने जल-जंगल-ज़मीन से सदा के लिए उखाड रहे आदिवासियों का चित्रण भी किया है।

उपन्यास का नायक है सगेन। सगेन और उनके ततंग (दादाजी) जाम्बीरा की जीवन यात्रा के रूप में ही उपन्यास आगे बढता है। उपन्यास के पहले अध्याय में ही मरंगगोडा की वर्तमान स्थिति के बारे में लेखिका हमें संकेत दी हैं- "ये उन दिनों की

बात है जब मरंगगोडा में सभी के हाथ-पांव बिलकुल सही सलामत थे। किसी का सिर असामान्य रूप से बडा या छोटा नहीं दिखता था। किसी का देह घिनौने घावों से बजबजाती नहीं थी। केंदु फल के बीज न तो टेढे हुआ करते थे और न ही गायब। गाय बकरियों के जबडे, दांत या मसूडे सड गल कर गिरते नहीं थे। ... लोग भक्ति श्रद्धा से बिर बोंगा.. बुरु बोंगा की पूजा किया करते।"[71] इससे ही स्पष्ट होता है कि अब मरंग गोडा की स्थिति बिलकुल दयनीय और दर्दनाक बन गयी हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में आदिवासियों के संपूर्ण जीवन का चित्रण देख्र सकते हैं। जाम्बीरा और मेंजारी का विवाह, गोनोंग संप्रदाय (वधुमूल्य, जो विवाह के अवसर पर लडका द्वारा लडकी के पिता को देनेवाली चीज़ें), आदिवासियों की संस्कृति, रीति-रिवाज़, एकता-सहभागिता, उनकी समस्याएँ आदि आदिवासी जीवन के हर एक पहलू को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत की हैं। जाम्बीरा के पूर्वजों ने सारंडा में ही रहते थे। सारंडा का अर्थ है सात-सौ पहाडियों का जंगल, जो एशिया के ही सबसे बडा और साल वृक्षों से अटे ऐसा जंगल था, जिसमें सूरज की रोशनी भी धरती छूने में ख़ून पसीना एक कर देना पडता। करीब एक सौ चालीस, एक सौ पचास फूट ऊँचे साल वृक्ष। आदिवासियों का विश्वास है कि इन पेडों पर देवता की कृपा है। आदिवासियों के लिए इतना ज़्यादा उपयोगी और कोई पेड नहीं। धरती के लिए भी यह बहुत उपयोगी है। लेकिन जंगल में वन-विकास निगम का आगमन आदिवासियों के सहज जीवन में कई प्रकार का प्रतिबंध ख्रडा कर दिया। वनविभाग लाख्रों हेक्टयर ज़मीन को लीज़ पर लेकर पेडों की कटाई शुरू की और साफ किये जंगल में व्यावसायिक दृष्टि से लाभदायक एवं जल्दी बढनेवाले यूकालिप्ट्स, सागवान जैसे पेडों को लगाये गये। इन पेडों से आदिवासियों को कोई फायदा नहीं थे और न धरती को

भी। वन विभाग द्वारा आदिवासियों और जंगल के अटूट संबंध को तोडा और उन्हें जंगल जाने में रोकथाम लगाया। अगर आदिवासी लोग जंगल जाकर घरेलू उपयोग, खेती औजारों के निर्माण आदि के लिए पेड काटे तो उन्हें अपराधी कहकर दंड भी देते थे। जंगल में उनके पालतू जानवरों को चराने में भी वन-विभाग रोक लगाया। जंगल में वन विभाग के साथ-साथ बाहरी अधिकारी, कर्मचारी, नेता, ठेकेदार आदि का भी भरमार हो गयी थीं। वे वन-संपत्ति को निजी संपत्ति मानकर अंधाधुंध कटाई करने लगी। वे आदिवासियों से उनके जल-जंगल-ज़मीन को हडप लिये। इसके बारे में अधिकारियों से शिकायत करते वक्त वे आदिवासियों से पट्टा माँगते हैं। इसके लिए आदिवासियों का उत्तर था- "हम कागज़-कलम की भाषा नहीं जानते। जंगल के बीच, जहाँ-जहाँ हमारे गाँव थे, वहाँ-वहाँ ससनदिरी (कब्र) में हमारे पुरखों की निशानी के रूप में गाडे गये खडे पत्थर ही हमारे पट्टे हैं। उजडे हुए गाँवों की निशानी, अखडा, सरना स्थल और खेतों के अवशेष ही हमारे पट्टे हैं। घने जंगल के बीच वर्षों पहले अपनी-अपनी झोंपडियों के आसपास हमारे पुरखों द्वारा यत्नपूर्वक लगाये गये इमली, आम आदि के पेड ही हमारे पट्टे हैं। हमें हमारी ज़मीन वापस चाहिए।"[72] इस प्रकार वन विभाग का आगमन आदिवासी और जंगल के पारस्परिक रिश्ते को तोडा।

विकास के नाम पर आज कई प्रकार की योजनाएँ बनाया जा रहा हैं। लेकिन हम सिर्फ उसके सकारात्मक पक्ष पर भी ध्यान देते हैं, नकारात्मक पक्ष को नज़रअंदाज़ करते हैं। फलस्वरूप आज हम अपने स्वच्छ हवा, पानी, उपजाऊ मिट्टी आदि से वंचित होती रहती हैं। सही रूप में देखें तो आधुनिक युग की सारी विकास योजनाएँ प्रकृति को हानी पहूँचनेवाली हैं। विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का

लूट ही आज कर रहे हैं। आर्थिक प्रगति के लिए प्राकृति की कोख में संजोये रखे अमूल्य खनिज संसाधनों का खनन कर रहे हैं। लेकिन ध्यान देने की बात तो यह है कि ऐसे खनिजों में पृथ्वी के जीव-जंतु, पेड-पौथों के लिए खतरा सिद्ध किये खनिज पदार्थ भी हैं। ऐसी एक विध्वंसकारी संसाधन है युरेनियम। जिसके खनन कार्य से तहस-नहस हुए मरंग गोडा ही उपन्यास का केन्द्र-बिन्दू है।

युरेनियम प्रकृति में पायी जानेवाली सबसे भारी और महत्वपूर्ण धातु है, जिससे आसानी से बिजली उत्पादन कर सकता है और आणविक हथियार भी बनाया जा सकता है। इससे ही अणु बम और हैड्रजन बम बनाये जाते हैं। यह इतना विध्वंसकारी होती हैं कि बम विस्फोट के वर्षों बाद भी उसके दुष्प्रभाव से मुक्ति नहीं मिलती। गर्भस्थ शिशु की जनटिक संरचना में परिवर्तन लाने की क्षमता इसमें है जो बच्चों में शारीरिक या मानसिक वैकल्य का कारण बन जाते हैं। कैंसर जैसी लाइलाज बीमारियों से नयी-नयी पीढियों को तबाह करने की कूवत रखती है। हैड्रजन या अणुबम की इस प्रकार की तबाही का प्रमाण हिरोशिमा- नागसाकी द्वारा हमने वर्षों पहले ही जान लिया था।

युरेनियम एक ऐसा अस्थिर रेडियोधर्मी तत्व है जिसका अर्द्ध जीवन करीब साढे चार खरब (बिलियन) वर्ष है। यानी इसे ज़मीन से बाहर निकाले गये तो इसका जीवनकाल घटकर आधा होने में करीब साढे चार खरब वर्ष लगेंगे। युरेनियम के अणुओं में हमेशा विस्फोट होता रहता है। जिससे उसके अणु के कुछ टुकडे टूट टूट कर गिरते रहते हैं। इसी टूटने की प्रक्रिया को ही रेडियोधर्मिता (Radio Activity) कहते हैं। इन रेडियोधर्मी प्रक्रिया के दौरान उत्पन्न किरणें हैं- आलफा, बीटा, गामा। इन किरणों से, जीव-जंतुओं में कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। ये हमारे

शरीर की कोशिकाओं में प्रवेश करके जेनेटिक विघ्न पैदा करती है। इससे हमारी कोशिकाएँ निरंतर विभक्त करके नयी कोशिकाएँ बनती रहती हैं। इसी कारण बच्चों का शारीरिक विकास अनियंत्रित हो जाता है और वे विकलांग हो जाते हैं। ये विकिरण स्त्री-पुरुष की प्रजनन क्षमता को भी नष्ट कराते हैं। बच्चों के मानसिक तथा शारीरिक वैकल्य होने की संभावना ज़्यादा है। 30 cm की कंकरीट दीवार को भी भेद करने की शक्ति युरेनियम के गामा किरणों को है। आल्फा कण साँस की नली से, पानी तथा खाद्य पदार्थों के माध्यम से या फिर किसी खुली चोट से शरीर में चला जाए तो गामा तथा बीटा किरणों से बीस गुना ज़्यादा घातक होता है। इससे टी.बी, कैंसर, थायरायड तथा विभिन्न प्रकार की शारीरिक-मानसिक वैकल्य आदि कई तरह की शारीरिक समस्याएँ हो जाती हैं। आपत्ति तो यह है कि इन विकिरणों का न तो कोई स्वाद होता है, न कोई गंध और न ही हम इसे खुली आँखों से देख सकते हैं। उपन्यास में बताया है कि-"जब तक युरेनियम पृथ्वी के गर्भ में दबा छिपा रहता है, शांत रहता है। मगर बाहर आते ही तबाही आरंभ कर देता है।"[73] इस प्रकार की तबाही का एक जिंदा मिसाल है आज का मरंग गोडा।

साठ के दशक के प्रारंभ में ही अंग्रेज़ों ने आकर मरंग गोडा में युरेनियम की तलाश की थी। धीरे-धीरे खदान, कंपनियाँ और मिल खोलने लगे। कंपनीवालों ने पुलीस की मदद से आदिवासियों से उनके जंगल-जल-ज़मीन हडप लिया। उनके खेत, मकान आदि सब खदानों में बदल गये। आदिवासी किसान से मज़दूर बन गये। वैसे समय के साथ मरंग गोडा में भी तेज़ी से बदलाव आने लगे। सगेन के दादाजी जाम्बीरा को भी खदान में काम मिले। युरेनियम की विध्वंसकारी शक्ति के बारे में अज्ञात आदिवासी उसे सिर्फ पत्थर की धूल समझकर काम करने लगे। काम

के बीच युरेनियम की पीली धूल उडकर मज़दूरों के आँख, नाक, कान, मुँह तथा पूरे देह में घुस जाती है। जाम्बीरा का कथन है- "जब अपने खेतों में काम करता था तब भी तो घूल-मिट्टी उड-उडकर देह को भर देती थी। .... अब मिट्टी के बदले पत्थरों की धूल ही सही।"[74] काम के बाद घर लौटते तो जम्बीरा के ऊपर से नीचे तक पीली धूल से ढका हुआ था। उसकी ड्यूटि ड्रस साफ करना पत्नी का काम था। वैसे यह पीली धूल जाम्बीरा और सुकुरमुनी को मरीज बनाया। अंत में टी.बी. से पीडित जाम्बीरा और उनकी सेवा करते-करते कैंसर से पीडत सुकुरमुनी दोनों की मृत्यु हुई।

सगेन के पिता भी उसी खदान में ही काम करते थे। खदान में मज़दूरे को कोई सुरक्षा या कानून नहीं थे। मज़दूरों की सुरक्षा के लिए लडने के कारण सगेन के पिता को अधिकारी वर्ग युरेनियम स्मग्लिंग का आरोप लगाकर देश-द्रोही घोषित किया और कैद किया। उसके बाद सगेन और उनके परिवार का देखभाल उनकी ताई ने ही किया। बी.ए. के बाद सगेन को भी खदान में काम मिला। लेकिन मरंग गोडा की हालत के बारे में सोचकर सगेन परेशान था। क्योंकि कुछ सालों से मरंग गोडा में विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ फैली थीं। कुछ बच्चों का सिर अस्वाभाविक रूप से बडा दिखा तो कुछों का छोटा अधिकांश लोग किसी न किसी बीमार से पीडित थे। कई प्रकार की शारीरिक तथा मानसिक वैकल्य बढते रहे। कुछ बच्चे ऐसे पीडित थे कि हर वक्त बिस्तर से लगी रहती और अपने चेहरे पर बैठे मच्छर-मक्खी तक को उडा पाने की क्षमता उनमें नहीं थी। कुछ लोगों के चेहरे, कंधे, पैर आदि पर पहले तो काले-काले धब्बे नज़र आये फिर उनमें घाव हो गये। इस प्रकार सिर्फ मनुष्य ही नहीं गाँव के पशु-पक्षी, पेड-पौधे सभी पर किसी न किसी प्रकार की समस्याएँ देखने

लगीं। वैसे मरंगा-गोडा की स्थिति अत्यंत विकट हो गयी थी। अज्ञात-अशिक्षित आदिवासी अपने इलाके की समस्याओं का कारण डायन मानकर किसी भी व्यक्ति पर डायन का आरोप करके मारने लगे। डायन को पकडकर इलाके की रक्षा के लिए 'ग्राम रक्षादल' नामक संगठन की भी स्थापना की। संगठन के नेतृत्व में सैकडों स्त्री-पुरुष और बच्चों को मारा। लेकिन सगेन और उनके साथियाँ मिलकर इस कुकृत्य का विरोध किया।

खदान के पुस्तकालय से युरेनियम की विध्वंसकारी शक्ति के बारे में सगेन समझने लगे। वैसे मरंग गोडा के जन-जीवन को तहस-नहस करनेवाले असली डायन को सगेन ने पकड लिया। उन्होंने मरंग गोडा के जनता को जागरूक करने लगा कि अपने इलाके के लाइलाज बीमारियों का जड़ युरेनियम, विकिरण और रेडियोधर्मिता आदि हैं। अपने साथी, पत्रकार आदित्यश्री की सहायता से लोगों के बीच विकिरण के दुष्प्रभाव पर बने फिल्मों का प्रदर्शन किया। साथ ही साथ अपने इलाके की खतरनाक स्थिति के बारे में फिल्म बनाकर अंतर्राष्ट्रीय फिल्म फेस्टिवेल में प्रदर्शित की थी।

खदानों का दुष्प्रभाव सिर्फ मानव पर ही नहीं बल्कि पेड-पौधे, जीव-जंतु, वायु, जल, मिट्टी सभी पर पडे हैं। खदानों से बाहर निकालनेवाले धुआँ से वायु प्रदूषण बढते रहे। अपशिष्ट पदार्थों से युक्त जल भूमिगत जलस्रोतों को दूषित किया। नदी-नालों का पानी बहुत भारी हो गया। तालाब-नदियों की मछलियों पर भी इसका दुष्प्रभाव देखने लगे। मछलियों की मात्रा काफी घट गयी। शेष मछलियाँ मुंडी बहुत छोटी और देह पतली जैसी अजीब सी दिखने लगी। साँपों की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं थे। लोगों में कैंसर, टी.बी, थैलेसेमिया, थायरॉयड, दमा, मैक्रो

कैथेली, मैगा कैथेली आदि बीमारियाँ फैलीं। रेडियोधर्मी पदार्थों से युक्त पानी से मिट्टी का भी प्रदूषण हुआ, और उस मिट्टी में उपजे अनाज, उपजी फसलें ज़हरीली हो जाती है। खदानों से बाहर निकलनेवाले युरेनियम कचरे से युक्त पानी, युरेनियम खनिज को साफ करने के लिए उपयुक्त गंधक के तेजाब आदि से वायु-जल ज़हरीला हो गये।

युरेनियम खनन के कचरे को डालने के लिए कंपनी द्वारा बनाये टेलिंग डैम में पाइपलाइन के ज़रिये ही कचरे डाले थे। इनके पास का विकिरण खदान से भी दस से सौ गुना ज़्यादा है। इसके अलावा इन डैमों में देश के तमाम परमाणु संयंत्रों से, आणविक प्रयोगशालाओं से, अस्पतालों से कचरा लाकर फेंका था। कानून के अनुसार ऐसे डेलिंग डैमों के पाँच किलोमीटर दूरी पर भी लोगों का आवास नहीं होना चाहिए। लेकिन मरंग गोडा में बर्फ के मैदान जैसे लगनेवाले इस टेलिंग डैम में ही इलाके के बच्चे खेलते हैं, और लोग पैदल चलते हैं। विकिरण के बारे में अच्छी जानकारी होते हुए भी कंपनीवालों, अफसरों, अधिकारियों ने मिलकर आदिवासियों को नहीं रोकते थे। इससे ही स्पष्ट है कि वहाँ आदिवासियों से कितना बडा अन्याय ही हो रहा है। इसप्रकार युरेनियम कंपनि आदिवासियों के बहुमूल्य संपत्ति छीन रही हैं। सगेन का कथन है- "अब हमारे पास खोने के लिए कुछ नहीं बचा है। हम आदिवासियों के पास तो संपत्ति के नाम पर होती है शुद्ध हवा, हरे-भरे स्वस्थ पेड, स्वच्छ पानी, जंगलों से ढंके पहाड, पंछी, जानवर जंगली फूल, फलों से लदे पेड...। अब सब खतम हो रहे हैं। इनके साथ-साथ हमारी संस्कृति भी नष्ट हो रही है।"[75]

लेखिका बताती हैं कि यह तो सिर्फ मरंग गोडा के आदिवासियों की समस्या नहीं है। पूरी दुनिया में सबसे पीडित आदिवासी ही हैं। दुनिया में अमेरिका,

कानडा, दक्षिण अफ्रिका जैसे जहाँ-जहाँ युरेनियम खदानें है, वहाँ के आदिवासी किसी न किसी रूप में पीडित हैं। अपने विषय में तीव्रता लाने के लिए, विकिरण की खतरनाक स्थिति को समझाने के लिए उपन्यास में कई मिसालों को प्रस्तुत किये हैं। इनसान के प्रति इनसान की घृणा की पराकाष्ठा की क्रूरतम बानगी-जापान के हिरोशिमा-नागसाकी के अणु बम वर्षा और आज भी उसके दुष्परिणामों को भोगनेवाले जापान जनता, चेरनोबिल दुर्घटना, थ्री मैल आइलेन्ड दुर्घटना आदि के बारे में अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। साथ ही साथ सन् 1998 में भारत और पाकिस्तान में हुए परमाणु बम परीक्षण पर अपनी आशंका इस प्रकार व्यक्त की हैं कि ये तो पूरे देश को मरंगगोडा बनाने का इरादा है।

उपन्यास के अंतिम भागों में आदिवासी जनता हमें चेतावनी देती हैं -"यही कि हमें सताकर, हमारी चीख्र पुकार को अनसुनी कर तुम लोग ज़्यादा खुश मत होना। विकिरण कभी किसी का सगा नहीं होता। हम आदिवासियों को तबाह करने के बाद यह तुम्हारी बस्तियों की तरफ भी बढ सकता है...।"[76] इसलिए लेखिका हमें चेतावनी देती हैं कि ऐसे खदानें सिर्फ आदिवासियों को ही नहीं पृथ्वी के संपूर्ण जीव-निर्जिव वस्तुओं को तबाह करने की शक्ति उनमें है। इसलिए हम ऐसी विकास योजनाओं के बदले इस धरती की रक्षा के लिए विकास की आदिवासी मॉडल को अपनाना ही उचित होगा। क्योंकि प्रकृति के साथ तालमेल रखकर जीने की कला आदिवासियों के पास ही है। मानव के भोगविलास का साधन उपलब्ध कराने की धरती की क्षमता सीमित है। यदि हम अपनी धरती और अपने अस्तित्व की रक्षा करना चाहते हैं तो अपनी आवश्यकताओं को सीमित करना ही होगा। नहीं तो अपमृत्यु तथा विनाश अवश्यंभावी होगा।

आधुनिक मानव को लेखिका ऐसा संदेश देती हैं- "आदतें बदलो, जीवनशैली बदलो। विकास के नये मॉडल की तलाश करो। एक ऐसा मॉडल जो इस धरती को बचा सकें... हमारी सभ्यता को बचा सकें... हमें बचा सकें।"[77]

निष्कर्ष

साहित्य के सबसे अधिक लोकप्रिय एवं सशक्त विधा है उपन्यास। मानव जीवन के यथार्थ को उसकी संपूर्णता के साथ चित्रित करने में उपन्यास विधा विशेष सफलता प्राप्त हुई है। इसलिए ही उपन्यास को आधुनिक जीवन का आईना कहा जाता है। वर्तमान समाज भूमण्डलीकरण, बाज़ारीकरण, उदारीकरण आदि नये-नये दौर से गुज़र रहे हैं। भूमण्डलीकरण के इस युग में संपूर्ण विश्व सामनेकरनेवाली कई समस्याओं में सबसे प्रमुख है पारिस्थितिक संकट। दिन-प्रतिदिन बढती जा रही पारिस्थितिक समस्याएँ समकालीन उपन्यास का भी मुख्य विषय बन गया है। समकालीन उपन्यासकारों ने अपने रचनाकर्म द्वारा इस विकराल समस्या के बारे में पाठकों को अवगत कराने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। इसके उदाहरण हैं 'सावधान! नीचे आगे है', 'डूब', 'पार', 'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ', 'धार', 'इदन्नमम', 'दावानल', 'हलफनामे', 'ग्लोबल गाँव के देवता' आदि उपन्यास। प्रस्तुत उपन्यासों के माध्यम से पारिस्थितिक समस्याओं के प्रति गहरी चिन्ता प्रकट की हैं और इस भीषण समस्या के बारे में पाठकों को जागरूक बनाकर मानव और प्रकृति के बीच का रागात्मक संबंध पुनः मिलाने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. नित्यानंद पटेल- प्रेमचंद के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक चेतना, पृ.186
2. प्रेमचंद- रंगभमि, पृ.13
3. वही, पृ.13
4. वही, पृ.43
5. वही, पृ.43
6. वही, पृ.10
7. संजीव- सावधान! नीचे आग है, पृ.24,25,182
8. वही, पृ.12
9. वही, पृ.43
10. वही, पृ.52
11. वही, पृ.149
12. वही, पृ.182
13. संजीव- धार, पृ.19
14. वही, पृ.19
15. वही, पृ.96
16. वही, पृ.157
17. वीरेन्द्र जैन- डूब, पृ.54,62

18. एम.पी. सदाशिवन - कूडुतल जननन्मक्कु वेण्डि, पृ.15

19. वीरेन्द्र जैन- डूब, पृ.279

20. वही, पृ.287

21. वही, पृ.288

22. मनमोहन पाठक – गगन घटा घहरानी, पृ.63

23. वही, पृ.64

24. वही, पृ.97

25. वही, पृ.36

26. वही, पृ.114

27. वही, पृ.136

28. वही, पृ.245

29. वही, पृ.285

30. वीरेन्द्र जैन- पार, पृ.68-69

31. वही, पृ.32

32. मैत्रेयी पुष्पा- इदन्नमम, पृ.352

33. वही, पृ.352

34. वही, पृ.370

35. वही, पृ.314

36. मैत्रेयी पुष्पा- इदन्नमम, पृ.269

37. वही, पृ.270

38. कमलेश्वर- अनबीता व्यतीत, पृ.8

39. वही, पृ.63

40. वही, पृ.147

41. वही, पृ.147

42. नासिरा शर्मा- कुइयाँजान, पृ.11

43. वही, पृ.16

44. वही, पृ.22

45. वही, पृ.88

46. वही, पृ.408

47. राजू शर्मा- हलफनामे, पृ.30

48. वही, पृ.47

49. वही, पृ.49

50. वही, पृ.52

51. वही, पृ.219

52. वही, पृ.98

53. वही, पृ.101

54. राजू शर्मा- हलफनामे, पृ.101

55. वही, पृ.121

56. वही, पृ.121

57. वही, पृ.121

58. नवीन जोशी- दावानल, पृ.190

59. वही, पृ.203

60. वही, पृ.66

61. वही, पृ.152

62. वही, पृ.102

63. वही, पृ.21

64. वही, पृ.119

65. रणेन्द्र- ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.9

66. वही, पृ.62

67. वही, पृ.14

68. वही, पृ.84

69. वही, पृ.91

70. वही, पृ.92

71. महुआमाजी- मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, पृ.11

72. महुआमाजी- मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, पृ.116

73. वही, पृ.161

74. वही, पृ.90

75. वही, पृ.192

76. वही, पृ.382

77. वही, पृ.384

पाँचवाँ अध्याय

चर्चित उपन्यासों में अभिव्यक्त प्रतिरोध की आवाज़

समाज में फैले अन्यायों के विरुद्ध आक्रोश प्रकट करना ही प्रतिरोध है। प्रतिरोध कोई आधुनिक परिघटना नहीं है। जहाँ अन्याय है वहाँ आक्रोश भी होता है। प्रतिरोध का लक्ष्य है परिवर्तन लाना। परिवर्तन के लिए संघर्ष करना मानव प्रकृति का एक अभिन्न हिस्सा है। यह परिवर्तन सिर्फ कोई व्यक्ति विशेष को ध्यान में रखकर नहीं होता बल्कि संपूर्ण समाज के कल्याण को ही लक्ष्य करते हैं। समाज की कई परिस्थितियाँ तथा विकास की प्रवृत्तियाँ मानव के समक्ष अनेक प्रकार की चुनौतियाँ उत्पन्न करती हैं। कभी-कभी मानव इन चुनौतियों के प्रतिरोध करने के लिए बाध्य बन जाते हैं। इसलिए वे जनता को केन्द्र में रखकर, उन्हें संगठित करके प्रत्येक परिस्थिति के विरुद्ध आन्दोलन करते हैं। इन आन्दोलनों का लक्ष्य है कि यथास्थिति के विरुद्ध आक्रोश प्रकट करना और बदलाव के लिए प्रयत्न करना। सामान्यतः प्रतिरोध दो प्रकार के होते हैं- अहिंसात्मक और हिंसात्मक। समाज का कल्याण लक्ष्य करनेवाले कोई भी प्रतिरोधकर्मी सीधे हिंसात्मक माध्यम का चुनाव नहीं करता बल्कि शांतिपूर्ण माध्यम से उसका समाधान ढूँढता है। लेकिन जब अहिंसा का माध्यम बेअसर रहता है तब अंतिम तरकीब के रूप में ही हिंसा के माध्यम को अपनाता है।

भारत में जनसंघर्ष या प्रतिरोध का अपना इतिहास है। काल और आवश्यकताओं के अनुरूप इनमें परिवर्तन होते रहते हैं। औपनिवेशिक भारत के लोगों ने स्वतंत्रता और बेहतर ज़िन्दगी के लिए संघर्ष किया था। स्वतंत्र भारत में भी कई प्रकार के प्रतिरोध व संघर्ष चलते रहे हैं। स्वतंत्रता के प्रारंभिककाल में ही तेलंगाना आन्दोलन सशक्त रूप धारण किया। इसके बाद पाँचवें दशक में गाँधीजी के शिष्य विनोबा भावे के नेतृत्व में भूदान और ग्रामदान अभियान चलाए। छठे और सातवें दशक में कई प्रकार के विद्यार्थी आन्दोलन और युवा आन्दोलन हुए। इसके अलावा किसान आन्दोलन, नक्सलबाडी आन्दोलन, श्रमिकों का आन्दोलन आदि प्रतिरोध के

कई रूप हमने देखा। सातवें और आठवें दशक में मज़दूरों के हडताल, डाक-तार कर्मचारियों तथा खदान श्रमिकों के आन्दोलन भी उभर आये थे। इसी काल में ही भारत के कई आदिवासी अंचलों में जन-आन्दोलन सक्रिय रूप में हुए और आज भी हो रहे हैं। इन सबके अलावा देश में जल-जंगल-ज़मीन से जुडे जनसंघर्ष भी उभर आये, जो बाद में पारिस्थितिक आन्दोलन का रूप धारण किया। इस प्रकार स्वतंत्र भारत में लिंग असमानता, मानवाधिकार, बाल-श्रम, पर्यावरण संरक्षण, सांस्कृतिक प्रदूषण, वैश्वीकरण के मानव विरोधी प्रभाव,पानी का निजीकरण आदि कई मुद्दों को लेकर आज भी कई प्रकार के आन्दोलन तथा प्रतिरोध के विभिन्न रूप देख सकते हैं। इन सारे संघर्ष के प्रतिनिधि के रूप में बाब आम्टे, मेधा पटकर, सुन्दरलाल बहुगुणा, महाश्वेता देवी, अन्ना हज़ारे, अरुंधती रॉय, वन्दना शिवा, वृन्दा काराट, ओ. एन. वी कुरुप्प, सुगतकुमारी आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

आज दुनियाभर में होनेवाले प्रतिरोधों में सबसे महत्वपूर्ण है पारिस्थितिक आन्दोलन। पारिस्थितिक समस्याएँ आधुनिक युग की सबसे विकराल समस्या बन गयी हैं। इसका मुख्य कारण हैं औद्योगिक क्रांति और वैज्ञानिक विकास। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप दुनियाभर में पूँजीवादी व्यवस्था प्रबल बन गयी। वैश्विक पूँजीवाद ने संपूर्ण मानव को कई-कई रंगीन स्वप्न दिखाए थे और वादा किया था कि इसके द्वारा संपूर्ण दुनिया में समान रूप से, समाज के सभी वर्गों की उन्नति होगी, गरीबी मिटा सकें, सुख-सुविधाएँ मिलेंगी और सबको बेहतर ज़िन्दगी प्रदान कर सकें। लेकिन असल में हुआ क्या? वैश्विक पूँजीवाद के दुर्ग अमेरिका में ही इसके खिलाफ जनसंघर्ष हुआ। भारतीय संदर्भ में देखें तो जबसे वैश्वीकरण की प्रक्रिया तेज़ हुई, तब से भारतीय गाँवों में हलचल होने लगी। लाखों भारतीय किसानों में आत्महत्या की, भारतीय गाँव उजड गये, किसान, आदिवासी, गाँववाले आदि के

हाशियेकरण की प्रक्रिया बढ गयी। भारतीय परंपरागत मूल्यों का ह्रास होने लगे और मानव का दृष्टिकोण अर्थ पर आधारित हो गये। नयी-नयी आर्थिक नीतियों ने प्रकृति-शोषण की प्रक्रिया को तेज़ की। पूँजीपतियों ने अपनी आर्थिक उन्नति और मुनाफा कमाने का आसान तरीके के रूप में प्रकृति को स्वीकार किया और उसका निरंकुश शोषण करने लगे। प्रकृति देवी से दासी बन गयी और मानव पुत्र से शासक बन गये। इस प्रकार प्रकृति पर शासन करनेवाली एक नयी सभ्यता का आगमन भी पाश्चात्य जगत की देन है। लेकिन वहाँ भी प्रारंभिककाल में प्रकृति का शोषण करनेवाली व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिरोध हुआ था। यूरोप में रूसो से लेकर अडोरनो, फूको तक के चिंतकों ने इसके विरुद्ध आक्रोश प्रकट किया था। पूरी दुनिया में इसके प्रतिरोधी कर्मियों में गाँधीजी से लेकर फुकुवोका तक के लोग आ जाते हैं।

आज वैश्वीकरण की रफतार तेज़ी से होती जा रही है। पूँजीपति अपनी अर्थव्यवस्था को और भी दृढ बनाने के लिए व्यग्र है। इसके लिए किसी भी सीमा तक जाने में उन्हें कोई संकोच नहीं है। ऐसी एक पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति जागरूक होने के लिए कई सालों पहले ही कार्ल मार्क्स तथा उनके साथी फेड्रिक ऐंगल्स जैसे महान व्यक्तियों ने हमें चेतावनी दी थी। सन् 1845 में ही कार्ल मार्क्स ने कहा था कि पूँजीवादी अपनी आर्थिक उन्नति के आधारभूत तत्व के रूप में ही प्रकृति को स्वीकार करेंगे। सन् 1878 में ऐंगल्स ने कहा था कि प्रकृति के ऊपर मानव का हर एक हस्तक्षेप के विरुद्ध प्रकृति स्वयं ही अपनी भारी प्रतिक्रिया प्रकट करेगी। लेकिन इतने सालों बीतने पर भी पूँजीपतियों की शोषणपरक मानसिकता में कोई कमी नहीं आयी हैं। वे प्रकृति का शोषण करते रहे और प्रकृति भी कभी-कभी इसके विरुद्ध अपना आक्रोश प्रकट कर रही है। इस प्रकार प्रकृति पर मानव का बढता हस्तक्षेप जब से

पृथ्वी में जीवन के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगाने लगे तब उसकी प्रतिक्रिया के रूप में समाज में पारिस्थितिक बोध का उदय हुआ। इसका पहला कदम सन् 1962 में रेचल कार्सन द्वारा रचित 'सैलेंड स्प्रिंग' नामक रचना को ही माना जाता है। DDT नामक ज़हरीली कीटनाशकों के दुष्प्रभाव से नाश हुए अमेरिका के एक इलाके का चित्रण ही प्रस्तुत रचना में किया गया है। इससे प्रेरणा पाकर सन् 1972 में स्टॉकहोम में लोकराज्य मिलकर पहला पारिस्थितिक सम्मेलन हुआ। इसमें पर्यावरण संरक्षण के लिए एक साथ मिलकर कोशिश करने का निर्णय लिया।

भारत में सन् 1974 में उत्तराखंड के चमोली गाँव में ग्रामीण स्त्रीयों द्वारा चलाये चिपको आन्दोलन को ही पर्यावरण आन्दोलन का मील का पत्थर माना जाता है। इसी चेतना ने बडे-बडे बाँधों के निर्माण के विरुद्ध कई आन्दोलनों को जन्म दिया। इसके बाद टेहरी बाँध-विरोधी आन्दोलन, नर्मदा बचाओ आन्दोलन, सैलेंडवाली आन्दोलन जैसी घटनाएँ हुईं।

भारत के पारिस्थितिक आन्दोलनों पर ध्यान देते वक्त सबसे पहले बिष्णोई आन्दोलन के बारे में बताना अत्यंत अनिवार्य है, जो सिर्फ भारत के ही नहीं विश्वभर के पारिस्थितिक आन्दोलनों में प्रथम मानने में कोई गलती नहीं होगी। सन् 1730 में पेडों की रक्षा के लिए जीवत्याग किये बिष्णोई लोग भारत में प्रसिद्ध हैं। गुरु जंबेश्वर के तत्वों को आधार बनाकर जीवन व्यतीत करनेवाले वैष्णव धर्मावलंबी लोग थे बिष्णोई। उनके धर्मानुसार पेड-पौधे और जीव-जंतुओं पर हमला करना अपराध है, पाप है। उस समय में राजस्थान के जोधपुर के राजा अभयसिहं को नये राजमहल के निर्माण के लिए अनेक लकडियों की ज़रूरत पडी। देश के कई भागों से लकडी लाने के लिए उन्होंने सैनिकों को नियुक्त किया। सैनिक बिष्णोई गाँव खेजारी में ही आये

और पेडों को काटने लगे। गाँव की 'अमृतादेवी' नामक महिला ने स्त्रियों को इकट्ठा कर पेडों से चिपककर काटने का विरोध किया। सैनिकों ने उन्हें मारा। लेकिन गाँववाले ने आकर पेडों से चिपककर काटने का विरोध किया। इसप्रकार 363 बिष्णोई लोग मारे गये। प्रस्तुत आन्दोलन को भारत का पहला पारिस्थितिक आन्दोलन माना जाता है। चिपको पर भी इसका प्रभाव पडा है। भारत के अन्य प्रमुख पारिस्थितिक आन्दोलनों के बारे में पहले अध्याय में ही ज़िक्र किया गया है।

सन् 1948 में भोपाल में स्थित यूनियन कारबाइड कारख़ाने में हुई दुर्घटना भी पर्यावरण से जुडा हुआ मामला है। कारख़ाने से ज़हरीली गैस रिसाव के कारण दिसंबर 3 के भोर में हज़ारों लोगों की मृत्यु हुई। हज़ारों लोग जीवनभर के लिए विकलांग हो गये। इनके वर्षों बाद भी भोपाल गैस पीडितों का संघर्ष देश में चल रहा है। महाराष्ट्र के अमेरिकन कंपनी एनरॉन के विरुद्ध चलाए प्रतिरोध भी इसी श्रृंख़ला की कडी है। वैसे कर्नाटक के बहुराष्ट्रीय कंपनी के विरुद्ध भी संघर्ष चलाया है। इस प्रकार भारत में पारिस्थितिक हस्तक्षेपों के ख़िलाफ कई सामाजिक-राजनीतिक प्रतिरोध हुए हैं। आज प्रकृति प्रतिरोध का पर्याय बन गया है। परिस्थितिवाद की भाषा भी प्रतिरोध की भाषा बन चुकी है। आज के साहित्य ने भी इसी भाषा को स्वीकारा है। समकालीन हिन्दी उपन्यास विधा में भी प्रकृति पर होनेवाले अनावश्यक हस्तक्षेप पर प्रतिरोध की बुलन्द आवाज़ है।

हमारे देश में पर्यावरण रक्षा के लिए बनाये गये कानूनों की कोई कमी नहीं है। इसके लिए प्रत्येक विभाग और मंत्रालय को भी नियुक्त किये हैं। फिर भी जंगल कट रहे हैं, भूमि बंजर बन रही है, जलस्रोत तथा वायु प्रदूषित हो रही हैं। इस प्रकार पर्यावरण संरक्षण की जिम्मेदारियाँ सिर्फ कागज़ पर सीमित रहती हैं। आज

स्थिति यह हो गयी है कि जिस राज ने अपने कंधों पर देश के पर्यावरण की रक्षा का भार उठा लिया है, उसी के हाथों से ही वह नष्ट हो रहा है। इसलिए पर्यावरण के प्रति जनता को जागरूक बनाने और सरकारी कार्यवाइयों को उचित रूप में लागू करवाने के लिए कई स्वयंसेवी संगठन व संस्थाएँ कार्यरत हैं। लेकिन देश के विकास तथा प्रगति के नाम पर इनके प्रयासों तथा प्रतिरोधों को दबाते हैं। इसके पीछे भी वैश्विक पूँजीवाद का हाथ है। पूँजीपति अपनी आर्थिक उन्नति के लिए देश के विकास के बहाने प्राकृतिक संसाधनों की लूट कर रहे हैं। प्रकृति को अपने हित के अनुरूप बदलने के लिए विज्ञान और तकनीकी की सहायता से निरंकुश दोहन-शोषण कर रहे हैं। विकास का एक सूत्र यह हो गया है कि जो बलशाली है वह जीत जाता है और जीवित रहता है, कमज़ोर लोग हारकर जीवन गंवाता है। यह पूँजीवादी लोगों ने सरकार को भी अपने काबू में रखा है और उसकी सहायता से बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ लाभमोह के रवैयों से प्रकृति पर हस्तक्षेप कर रहे हैं। इस प्रकार आज संपूर्ण दुनिया वैश्विक पूँजी सत्ता के गिरफ्त में है। देश के शासकवर्ग इस तंत्र के समक्ष नतमस्तक हुए हैं और पूँजीवाद के निर्बाद विस्तार के लिए सहायता देते हैं। इसलिए ही आम जनता का प्रतिरोध कुचल रहा है। आज पर्यावरण संरक्षण के लिए आवाज़ उठानेवाले लोग पूँजीपतियों के शिकार बन रहे हैं। नैजीरिया के ओगोणी जनता तथा वहाँ के पर्यावरण की रक्षा के लिए लडे 'केनसारो विवा' की फँासी की सज़ा, आमसोन जंगल की रक्षा के लिए प्रयत्नरत 'षिकोमेन्डस' की हत्या तथा 'ग्रीन्स पार्टी' महिला नेता 'पेट्रो केल्ली' की मृत्यु आदि इसके उदाहरण हैं।

साहित्य में भी इस प्रकार के सफल और असफल प्रतिरोध का चित्रण देख्र सकते हैं। पात्रों द्वारा किये जानेवाले आन्दोलन तथा लडाइयों को पूँजीपति दबाते हैं

और सरकार भी इसके लिए उन्हें सहायता देते हैं। लेकिन साहित्य की एक ख़ूबी यह है कि पात्रों द्वारा किये जानेवाला प्रतिरोध असफल होने के बावजूद भी उसके बारे में पाठकों के मन में अवबोध प्रदान करने में लेखक सफल बन जाते हैं। प्रस्तुत अध्याय में मैं ने हर एक उपन्यास में अभिव्यक्त पर्यावरण से जुडे प्रतिरोधों को ही नहीं बल्कि उपन्यास में चित्रित सारे प्रतिरोधों के बारे में ज़िक्र करने का प्रयास किया है।

➢ चर्चित उपन्यासो में अभिव्यक्त प्रतिरोध की आवाज़

5.1 सावधान! नीचे आग है

'सावधान! नीचे आग है' उपन्यास में पूँजीपति और शासनतंत्र द्वारा दबानेवाले एक असफल प्रतिरोध का चित्रण ही हम देख सकते हैं। उपन्यास में ऊधमसिंह और आशीषकुमार घोषाल दोनों का प्रतिरोध चित्रित किया है। खदान के अंतर्गत, जल-प्लावन में फँसकर मौत और ज़िन्दगी से जूझ रहे ऊधमसिंह अपने अंतिम समय में मेनेजमेंट की लापरवाही के विरुद्ध अपना प्रतिरोध डायरी में लिखकर प्रकट करता है। ऊधमसिंह अपने ख़ून से डायरी में यों लिखता है - "मैंने दुनिया का अंत बहुत करीब से देखा है। अपनी अहंमन्यता या सनक में डूबे कुछ-एक पापी महज अपने सामान्य से स्वार्थ के लिए दुनिया को श्मशान बना जायेंगे, फिर कोई मसीहा बचाने नहीं आयेगा। वक्त रहते भेडियों और कुत्तों को पहचानकर चुन-चुनकर इनका सफाया कर दो। हमने इस सत्य को पहचाना, मगर तब तक देर... वक्त रहते तुम भी सावधान हो जाओ- डूबकर मरनेवाले माइनरों का आखिरी अनुभव है यह। कहीं तुम्हें भी देर न हो जाय। ... मैनेजमेंट हत्यारा है चोर, ठँसानी..."[1]

सतह के ऊपर आशीष कुमार घोषाल, मेनेजमेंट के अपराध तथा लापरवाही को बाहरी दुनिया तक पहूँचाने के लिए कठिन प्रयत्न कर रहा है। लेकिन मेनेजमेंट भी दुर्घटना में अपने को निर्दोषी सिद्ध करने के लिए अन्याय पर अन्याय कर रहे हैं। मेनेजमेंट के विरुद्ध खड़े चौधरी और मुखर्जी जैसे गवाहों को जाँच कमीशन के सिर्फ एक दिन पूर्व हत्या करवाता है, अन्य कई गवाहों को पैसा देकर या डरा-धमाकर उनकी बयान बदल देती है, बयान न बदलनेवालों को पुलिस और गुंडों द्वारा मारता-पीटता है। लेकिन आशीष अपने फैसले से पीछे नहीं हटा। वह सर्वे की रिपोर्ट, वेंटिलेशन सिस्टम से संबंधित फाइल, ऊधमसिंह की डायरियों के पन्ने आदि को जाँच कमीशन के पास पहुँचाने की कोशिश करता है। लेकिन पुलिस की भोडिये और मेनेजमेंट के शिकारी कुत्ते से बचकर एनक्वयरी कमीशन तक पहूँचना कठिन काम था। इसलिए साथी श्री सिंह के पास सारे सबूत भिजवाता है। लेकिन श्री सिंह आशीष को फुसलाकर सारी कागज़ात को चालीस हज़ार रुपये के लिए मेनेजमेंट के अफसरों को देता है। बचे-खुचे सबूतों की प्रतिलिपि को रखकर आशीष प्रधानमंत्री को भी रेजिस्टर्ड डाक भेजता है, लेकिन चार महीने गुज़रने के बाद भी उसके लिए कोई जवाब नहीं मिला। मेनेजमेंट के लोग न्यायाधीश को भी पैसे की चमक दिखाकर अपने काबू में रखते हैं। न्यायाधीश से अहलूवालिया का कथन था- "साहब, बेकार ही उतना पढ- लिखकर चीफ़ जस्टिस हुए! रिटायर्ड होकर भी आपके पास क्या है अभी? यहाँ के गुंडों और ठेकदारों की अक्षर से भेंट नहीं और जाकर देखिये उनकी कमाई!"[2] इस प्रकार दुर्घटना के बाद चंदनपुर के आधुनिकीकरण के लिए वेल्ड बैंक द्वारा दिये गये पैसे से पूँजीपति अपने को निर्दोष सिद्ध करते हैं। न्याय के लिए लडाई किये आशीष को पागल घोषित करके पागलखाने में बंद करवाता है। आशीष से उनका कथन था- "हम लोग तो तुम्हारी हत्या भी करवा

सकते थे। इट वाज़ सिंपली ए फ्यू सेकेडंस अफेयर।... आप तो इस पागलखाने के बिस्तर पर है। मत भूलो कि, जब तक हम न चाहें तुम एक पागल हो...। कल को यह सत्य पागल बन कर सडकों पर नंगे डोलेगा, पायखाने पर गिरे भात चुन-चुनकर खायेगा, नाबदान का पानी पियेगा।"[3] अंत में अपने अंदर और बाहर के संत्रास से बचने के लिए हार मानकर आशीष चंदनपुर छोडकर चला जाता है। दुर्घटना के बाद कई साल बीत गये। सरकारें आती हैं, सरकारें जाती हैं। फिर भी चंदनपुर की स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया। पूँजीपतियों द्वारा शोषण वैसे के वैसे ही ज़ारी रहे हैं।

उपन्यास में 'झानू' नामक आदिवासी मज़दूर का प्रतिरोध का चित्रण भी देखने को मिलता है। झानू अपनी ज़मीन और जाति के अस्तित्व के लिए लडाई करता है। लेकिन वह भी नाकामयाब रहता है। क्योंकि आदिवासी मज़दूर भी किसी भी ठेकेदार की कठपुतलियाँ हैं। अपने प्रति होनेवाले अत्याचारों के विरुद्ध लडने की हिम्मत उनमें नहीं है। लडाई के कारण झानू को अपनी नौकरी नष्ट होती है ठेकेदार-गुंडों द्वारा उसकी औरत पर अत्याचार करते हैं। झानू का कथन था- "आस्ते-आस्ते सारा ज़मीन दखल कर लिया हमारा, बोलो, हम कहाँ जायेगा, बोलो...बोला नौकरी देगा, पानी देगा, स्कूल खोलेगा...ये कर देगा, वो कर देगा, सोना से मढ देगा...हम अपना मुशीबत बताने गया तो पोसे गुंडों से पिटवाया।"[4]

इस प्रकार उपन्यास के पात्रों द्वारा किये गये सारा प्रतिरोध पूँजीपति और ठेकेदार कुचल देते हैं।

5.2 धार

'धार' उपन्यास में लेखक ने सफल प्रतिरोध का चित्रण ही किया है। उपन्यास में गंधक की फैक्टरी और अवैध खदानों के खिलाफ मैना के नेतृत्व में लडाई करती हैं। इलाके में ज़हर घोलनेवाली तेजाब की फैक्टरी के बारे में मैना गाँववालों को अवगत कराती है और जनता को इकट्ठा कर आन्दोलन की अगुआई भी करती है। इसके कारण मैना, पुलिस ठेकेदार और गुंडों के शोषण का शिकार बन जाती है और अपने पिता और पति का भी दुश्मन बन जाती है। फिर भी वह अपनी लडाई से पीछे नहीं हटी। वह लोगों से कहती है- "भाइयों, काम छोडके निकल आवो, ऊ फैटरी नहीं हम सबकी मौत है।"[5] अंततः लडाई में सफलता प्राप्त होती है और गाँववाले मिलकर हत्यारे फैक्टरी बंद करवाते हैं।

अवैध खनन तथा पारिस्थितिक शोषण को रोकने के लिए उपन्यास में प्रस्तुत किया गया एक सशक्त प्रतिरोध है जनखदान का निर्माण। मैना और अविनाश शर्मा के नेतृत्व में चतरपुर में शुरू किये गये जनखदान में मज़दूरों की सुरक्षा तथा पर्यावरण रक्षा हेतु सारा बंदोबस्त करते हैं। लूट की सरकारी और निजी योजनाओं के खिलाफ एक उचित तरकीब है जनखदान, जो जनता का खदान है। अविनाश शर्मा का कथन है- "इसकी वजह से बीस गाँव के लोगों को राजी-रोजी मिलेगी। यह खदान किसी एक की नहीं बल्कि सभी कामकरनेवालों की साझा होगी।... जब कोयला निकलना शुरू होगा तो मज़दूरी भी कोयले में मिलेगी। इस खान के ज़रिए गाँववालों का डॉक्टरी इलाज, रिन-करज, पढाई-लिखाई का भी बन्दोबस्त होगा।"[6]... चिकित्सालय में एक एम.बी.बी.एस और होमियोपैथ डॉक्टर हैं, एक प्रशिक्षित नर्स थी, दिन की पाठशाला में तीन शिक्षक और प्रौढ पाठशाला समेत रात

की पाठशाला में दस शिक्षक हैं।"[7] इसके अलावा जनखदान के ज़रिये पर्यावरण की रक्षा के लिए भी प्रयत्न करते हैं। पर्यावरण संकट से मुक्ति के लिए जनखदान के मज़दूरों द्वारा सडक की दोनों ओर वृक्ष लगाने का कार्य करता है। इस प्रकार 'जनखदान' के ज़रिये लेखक यह प्रस्तुत करने का सफल प्रयास करते हैं कि औद्योगिक प्रगति पर्यावरण को क्षति पहूँचाए बिना होनी चाहिए। इसके लिए हम एक साथ प्रयत्न करना अन्यंत अनिवार्य हैं। एक साथ रहना ही शक्ति है, धार है। अविनाश शर्मा का कथन है- "तो साथियों, यह धार ही हमारी शक्ति है और धार का भोथरा होना ही मौत। यहाँ ही नहीं, जहाँ-जहाँ भी साम्यवादी सरकारें हैं, यह उपमा लागू होती है।...धार बरकरार रही तो सारा संसार ही आपका है।... यह छोटी सी जनखदान भी किरकिरी बन गई है आँख की। चारों तरफ भेडिए गुर्रा रहे हैं। वे हमें खा जाने पर आमदा हैं लेकिन क्या हम उनके नापाक इरादे पूरे होने देंगे? नहीं। हर्गिज़ नहीं। इसीलिए हमें धार की ज़रूरत है, सतत सान से ताज़ा होती धार-चाहे हमें कोई भी कुर्बानी क्यों न देनी पडे।"[8]

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने 'व्यक्तिगत स्वार्थ के खिलाफ सामूहिक स्वार्थ की लडाई'[9] के रूप में 'जनखदान' की सफलता को चित्रित किया है।

5.3 डूब

'डूब' उपन्यास का नायक माते सरकार की विकास योजनाओं के खिलाफ उपन्यास के आदि से अंत तक संघर्षरत होकर दिखाई पडता है। वह देश के उस विकास नीति का विरोध करता है, जिससे गाँव का विस्थापन तथा प्रकृति का नुकसान हो जाते हैं। माते का मानना है कि गाँव के विकास के लिए कोई बाहरी

शक्ति की ज़रूरत नहीं हैं। गाँव का विकास स्वयं गाँव ही करें। डूब उपन्यास का माते संघर्षशील मानवीय चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति है। लेकिन उपन्यास में प्रतिरोध कोई आन्दोलन या लडाई के रूप में देख्र नहीं सकता। क्योंकि गाँववालों को इसकी हिम्मत नहीं है। वे जानते हैं कि सरकार के काम में दख्रलंदाज़ी करना देशद्रोह है, जेल में जाएगा और सज़ा मिलेगी। इसलिए गाँववाले जेल के डर से कुछ भी करने को राजी नहीं। फिर भी लेख्रक माते की हर एक बातों से उनके प्रतिरोध को स्पष्ट रूप में चित्रित किया है। उनका कथन था- "यह सरकार, यह गरीबों को सताएगी, उन्हें सताएगी जिन्हें भाग्य, भगवान, धनवान सभी पहले ही सताने पर आमादा है।"[10] स्वतंत्रता के बाद सरकार ने ढेरों योजनाएँ हाथ में लीं। चारों ओर विकास का शोर गाँजते रहे। फलस्वरूप भारतीय गाँव उजड गये और गाँववाले अपने जल-जंगल-ज़मीन से वंचित रहे। विकास के बहाने गाँववालों का जीवन कुर्बानी देना पडा। लेकिन इन लोगों के पुनर्वास या मुआवज़ा के लिए किसी भी प्रकार की तरकीब सरकार के पास भी नहीं थे। माते का कथन है-"देश का विकास आवश्यक है। इसलिए न हमें अपनी ज़मीन से उख्रडना होगा, मगर हमारा मन कहता है कि इसे कुर्बानी कोई नहीं मानेगा। जब सरकार तक मानने को तैयार नहीं है।"[11] इस प्रकार गाँवों को उजडनेवाली, गाँववालों पर अत्याचार करनेवाली सरकार की विकास योजनाओं को देख्रकर माते कहता है "बानियों का काम करती है सरकार। क्षत्रिय से वैश्य हो गई है सरकार।[12] अंत में लडैई जैसे कई गाँवों को उजाडकर तैयार किये राजघाट बाँध परियोजना के बदले उन गाँवों पर सरकार द्वारा पर्यटकों को आकर्षित कराने हेतु अभयारण्य, पंचमनगर में अफसरों और राजनीतिज्ञों के लिए क्लब, स्विमिंगपूल, ऐशगाह आदि के निर्माण करने का कार्य किया जा रहा है। लडैई गाँव

के लोगों को सिद्धपुर के पहाडों पर बसाने का निर्णय भी लेती है, जिसे देखकर देश-विदेश के पर्यटक यह समझ सकते हैं कि भारतवर्ष के पुराने जमाने के लोग कैसे जीवन बिताये थे। इस प्रकार कानून का भय दिखाकर नादान गाँववालों से गैरकानूनी काम करनेवाली सरकार पर माते का विश्वास नष्ट हो जाता है। माते कहता है- "लाबरी है जा सरकार, महा लाबरी! महा झूठी, सरासर झूठी !"[13]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक माते के ज़रिये सरकार की उन विकास नीतियों का सख्त विरोध करते हैं जो सिर्फ देश के पूँजीपति या उच्चवर्ग की सुख-सुविधा तथा आर्थिक प्रगति को ध्यान में रखकर लागू कर रहे हैं।

5.4 गगन घटा घहरानी

प्रस्तुत उपन्यास में सोनाराम, रामधनी और तपेसर मिस्त्री के नेतृत्व में होनेवाले हडताल, लडाई और फसल-दखल आन्दोलन जैसे प्रतिरोध के कई रूपों का चित्रण देखने को मिलता है। सोनाराम शोषक वर्ग के खिलाफ गाँववालों को इकट्ठा करता है और शोषक वर्ग द्वारा शोषितों पर थोपते नियमों के खिलाफ लडाई करने की प्रेरणा देते है। राय बहादूर पूँजीपति का प्रतिनिधि है जिन्होंने आदिवासी तथा प्रकृति पर अपना अधिकार जमा किया है। प्राकृतिक जलस्त्रोतों को निजी संपत्ति बनाकर रखा है और गाँववाले पानी की किल्लत से तरस रहे हैं। इसके अलावा आदिवासी लोगों को तथा जंगली जानवर चीते को भी उसने अपने घर में बंद करके रखा है। इसके विरुद्ध सोनाराम के नेतृत्व में गाँववाले लडाई करते हैं और जागो तथा चीते को छुटकारा मिल जाते हैं। पानी की किल्लत से बचने के लिए बारवाडीह के लोग इकट्ठा होकर लडाई करते हैं और एक-साथ मिलकर पोखरा काटकर अपनी खेती की ओर पानी बहाते हैं और पर्याप्त पानी लेते हैं।

अपने काम की पर्याप्त मज़दूरी मिलने के लिए चलाये गये मज़दूरों के हडताल के बारे में भी उपन्यास में ज़िक्र किया है। तपेसर मिस्त्री गाँववालों को प्रेरणा देता है कि "हक के लिए लडाई ही ज़िंदगी है। अन्याय का विरोध करना ही मरदानगी है।"[14] लडाई के बारे में वह गाँववालों को अवगत कराती है- "साथी, आपने एक बहुत बडी लडाई शुरू की है। यह सोचकर जी छोटा न कीजिए कि यह 10-5 रुपए की मज़दूरी की माँग भर है। यह आदमी के श्रम की, मान की लडाई है। आप जानते होंगे, आपका ठेकेदार कौन हैं। हाँ, विभीखनसिंह एम. एल. ए मज़दूरों के नेता बनते हैं। बाहर इनकी यही छवि है। पलामू के कोयला खदानें और चूना-पत्थर की खानों में इनकी यूनियन चलती है। मज़दूर यूनियन है। मज़दूर यूनियन के लाखों रुपए के चंदे डकार जाते हैं ये। उसी रुपये से इनकी अय्याशी चलती है। उन्हीं रुपयों को बिजनीस में लगाया हुआ है। इनका एक बेटा कोयले की हेरा-फेरी में लगा है। एक बेटे की टरिलीन के कपडे की मिल हैं। विदेश से कच्चा माल माँगते हैं। यहाँ मज़दूर सस्ते हैं। हम अपना श्रम सस्ते में बेचते हैं, जिन्हें खरीदकर ये मालामाल हैं। ... यह न्यूनतम मज़दूरी, जिसकी माँग पर आप काम रोके पडे हैं, आपकी माँग नहीं है। अरे, यह तो, इन्हीं विधायकों ने, इन्हीं की सरकार ने, एक तरफा यह किया है कि किसी काम के लिए एक साधारण मजदूर को, उसके आठ घंटे काम के एवज में, कम से कम 16 रू. 50 पैसे मज़दूरी मिलनी चाहिए। याद रखिए, यह आपके दिन भर के श्रम की सही कीमत नहीं है। यह इन्हीं विभीखनसिंह जैसे विधायकों द्वारा तय की गई न्यूनतम मज़दूरी की दर है। इन्हें शरम आनी चाहिए, वे यह भी देने को तैयार नहीं।"[15] तपेसर मिस्त्री, रामधनी और सोनाराम के भाषण से प्रेरणा पाकर मज़दूर वर्ग, जो भूखे-नंगे होने के बावजूद भी दो दिन काम बंद करके हडताल करने का निर्णय लेते हैं। उनके हडताल के बारे में

लेखक का कथन था कि- "यह हडताल किसी कारखाने की बडी- बडी यूनियनोंवाले खाते-पीते मज़दूरों की हडताल न थी। यह हडताल अपने-अपने घरों, झोंपडियों में रहनेवाले खेतिहर किसान मज़दूरों की हडताल न थी। अकाल से त्रस्त होकर गाँव-घर छोडकर अपना श्रम बेचने निकले, अपनी मेहनत, अपनी देह- नीलाम करनेवाले ठेकेदार- मज़दूरों की हडताल थी यह। इनके लिए दो दिन बहुत होते हैं।"[16]

इसके अलावा उपन्यास में चित्रित एक सशक्त प्रतिरोध के रूप में फसल-दखल आन्दोलन को देख सकते हैं। आदिवासी अपनी आर्थिक तंगी के कारण राय बहादूर जैसे पूँजीपतियों के पास अपना खेत गिरवी रखते हैं, लेकिन फिर कभी-भी उन्हें वह खेत वापस नहीं मिलते। इस प्रकार अपने ही खेत में बहुत कम वेतन के लिए काम करने को अभिशप्त आदिवासी इसके विरूद्ध आन्दोलन करते हैं। भूख और गरीबी से त्रस्त ये लोग राय बहादूर के खेत से पके हुए फसल काटकर ले जाते हैं। बंगाल और भोजपुर में हुए फसल-दखल जैसे एक आन्दोलन चलानेवाले उराँव आदिवासियों से रामधनी का कथन है- "अरे भाई, यह आगे की लडाई है। खेत जो जोते-बोये उसका। जिसकी मिहनत उसकी फसल। कैसे इधर झारखंड में मुंडा-उराँव के लोग जंगल पर अपना हक माँग रहे हैं, वह वैसे ही समझो।"[17] इस प्रकार गाँव के 20-25 आदमी, औरत, बूढे, बच्चे सवेरे ही खेत में आकर धान काटने लगे। एक बूढा आदमी डुगडुगी बजा रहा था। फसल की कटाई रोकने के लिए गये सिपाही से उनका कथन था "हमारा खेत है, हम धान काटेंगे।" राय बहादूर से पूछकर काटने के लिए कहते वक्त गाँववालों का जवाब था- " हमारा खेत है, तो इसमें गढी से पूछने की क्या बात है? आप चुपचाप बैठिये।" लेकिन सिपाही उनके

आगे खडे होकर धान काटने से रोकने की कोशिश करता है। तब एक औरत का कथन था - "रुको मत, काटते जाओ, नहीं हटेगा तो अपने गोड काटेगा।"[18]

लेकिन आदिवासियों के इन प्रतिरोधों को पुलिस, ठेकेदार द्वारा दबाने की कोशिश की जाती है। गाँववालों पर पुलिस हमला करते हैं। हर एक घर में आकर लोगों को मारते हैं, पीटते हैं, औरतों पर अन्याय करते हैं। घर- गाँव उजड जाते हैं। कई लोगों को पुलिस पकडकर ले जाते हैं और मार-पीट करते हैं। फिर भी ये लोग अपना आन्दालन ज़ारी रखते हैं।

5.5 पार

डूब का अगला पडाव के रूप में विख्यात उपन्यास 'पार' में भी लेखक ने राजघाट बाँध परियोजना के कारण तहस-नहस हुए लडैई तथा जीरोन गाँवों का चित्रण ही किया है। प्रस्तुत उपन्यास में भी गाँववालों का प्रतिरोध कोई आन्दोलन या लडाई के रूप में देख नहीं सकता। क्योंकि उसका शोषक सरकार है, सरकार के विरुद्ध लडने की हिम्मत गाँववालों में नहीं थी। उनको यह भय था कि सरकार के काम में दखल देने पर जेल हो जाएगी। इसलिए माते यह विश्वास रखता है कि अपने गाँव की मुक्ति रामदुलारे और अरविदं पांडे के ज़रिये ही संभव हो जाएगी। रामदुलारे ने लडैई गाँव में विकास के बदले विनाश ही देखा था। गाँव का महाविनाश। इसलिए लडैई और जीरोन की देख-भाल कर, उसके बारे में समझकर रामदुलारे अदालत जाने का निर्णय लेता है। क्योंकि इससे ही गाँववालों को पर्याप्त मुआवज़ा, पुनर्वास के लिए जगह, सडक की सुविधा, स्थानिय लोगों को रोज़गार, गाँव में खेती की अनुमति, नालों से पानी लेने की अनुमति आदि सुविधाएँ मिल सकें। रामदुलारे विश्वास करता है कि गाँव की रक्षा के लिए संगठन, सडक, शिक्षा

इन तीनों की ज़रूरत हैं। इसके लिए उनके साथी अरविंद पांडे और पत्नी यशस्विनी भी उनकी सहायता करने को तैयार थे। लेकिन अनपढ, अशिक्षित, अज्ञात गाँववाले कैलाश महाराज जैसे बानियों के चंगुल में फँसकर इनका विरोध करते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने रामदुलारे के ज़रिये सरकार की राजघाट बाँध परियोजना की सच्चाइयों को बाहरी दुनिया तक लाकर इसके विरुद्ध स्वयं अपना प्रतिरोध प्रकट करने का प्रयास किया है। असल में यही उपन्यास का सही प्रतिरोध है। सरकार तथा पूँजीवादियों की ऐसी विकास नीतियों के प्रति पाठकों के मन में सख्त विरोध का बीजारोपण करना ही लेखक का लक्ष्य है। लेखक बताते हैं "राजघाट जैसी परियोजना के, शताब्दी के अंत तक भी पूरा होने की संभावना नहीं है। क्योंकि योजना को शुरु से ही धनाभाव रहा है। परियोजना के पास धन न होने से डूब क्षेत्र के सभी गाँवों का अधिकरण नहीं हो सका। दोनों शासन (उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश सरकार) आवश्यक अभियंता और अन्य अधिकारियों को पर्याप्त मात्रा में प्रतिनियुक्ति पर नहीं भेज रहे हैं। हैरानी की बात यह है कि बेतवा नदी बोर्ड की कार्यकारी समिति में केंद्रीय जल संसाधन मंत्री, केन्द्रीय शक्ति व विद्युत मंत्री, दोनों राज्यों के मुख्यमंत्री, सिंचाई, शक्ति और वित्त मंत्री सदस्य हैं। इतनी वरिष्ठतम अधिकारी होते हए भी इस परियोजना की समस्याओं का हल नहीं निकल पा रहा है। इसके अलावा डूब का मुख्य कारण यह है कि दोनों राज्यों ने राजघाट बाँध के निकास के जल का उपयोग करने केलिए अपनी नहरों का विकास समय से नहीं किया है। इसलिए बाँध में अब तक खपाए धन का समुचित लाभ नहीं मिल पाया, न इस क्षेत्र के विस्थापित और प्रभावित ग्रामीणों को कोई प्रगति की किरण दिखाई दी।

बाँध की ऊँचाई के कारण इसके तल में जमा होनेवाली मिट्टी- सिल्ट की मात्रा और उसकी सफाई के प्रबंध की ठीक से तैयारी नहीं की गई तो बाँध की उम्र शायद उतनी भी नहीं, जितने वर्ष इसके बनने में लगने जा रहे हैं।

बाँध पूरा होने तक एक बडे क्षेत्र में जो पानी रुक रहा है उससे दलदल बनने की नई समस्या सामने आने लगी है। इस तरह की कई और समस्याएँ जन्म लेंगी। मलेरिया और पेट के रोग बढेंगे। भूमि की क्षरीयता बढेगी। ज़मीन खेती योग्य नहीं रह जाएगी। बाँध के पानी के साथ जो रेत खेतों तक आती है, वहीं रुक जाती है, वह खेतों को उपजाऊ नहीं रहने देगी।

यदि दोनों राज्य की नहर समय पर बन गई तो कोई भी क्षेत्र नहीं डूबेगा।

सरकार कहती है हम अभयारण्य बनाएँगे। लडैई को, जीरोन को वापस गुरिला पर बसाएँगे। पुराने जमाने के ढंग का रहना- सहना रखेंगे ताकि भविष्य में पर्यटक आकर देख सकें कि प्राचीन काल में यहाँ लोग किस तरह रहते थे। यानी वहाँ विकास की किरण नहीं पहूँचने दी जाएगी। लोगों को संग्रहालय की, अजायबघर की वस्तु बनाया जाएगा । जैसे खजुराहो में किया गया है। जैसे भोपाल में भारत भवन में किये जाने का प्रयास चल रहे है।"

सरकार कहती है कि नए वन लगाएँगे। लेकिन यह बाँध पूरा होने तक हमारी वन- संपदा, वनस्पति और वन्य प्रणियों की जो हानि हो चुकेगी उसकी पूर्ति कब, कैसे, किससे हो सकेगी? प्राकृतिक वनों की संरचना एक जटिल प्रक्रिया है। हज़ारों वर्ष का विकास उन्हें वनस्पति- वैभिन्न देता है। यह बहुमूल्य वन और जैविक संपदा होती है। कृत्रिम रुप से रोपित वनों में वह बात आ ही नहीं सकती।

जब बाँध के लिए ही पैसा नहीं है तो पर्यावरण सुधार क्या हवा से करेगे?"[19]

इस प्रकार वीरेन्द्र जैन ने अपने उपन्यास 'पार' में बाँध निर्माण के कारण होनेवाली संपूर्ण समस्याओं खुला का चित्रण प्रस्तुत करके स्वतंत्र भारत की उन विकास नीतियों के प्रति अपना प्रतिरोध व्यक्त किया है कि जिससे भारतीय गाँव तथा प्रकृति को भारी नुकसान हो जाती है।

5.6 इदन्नमम

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास इदन्नमम में लेखिका ने नायिका मंदाकिनी और पारीछा गाँव के प्रधान टीकमसिंह दोनों के नेतृत्व में किये जानेवाले आन्दोलन का ज़िक्र किया है। सोनपुरा गाँव में बढती हुई क्रशर उद्योग से गाँव पूर्ण रूप से उजड जाता है। जनता को कई प्रकार की समस्याओं को झेलनी पडती है। खेत- खलिहान नष्ट हुए गाँववालों को क्रशरों में काम देने के लिए ठेकेदार भी तैयार नहीं है। क्योंकि ठेकेदारों को यह डर था कि स्थानीय मज़दूरों को क्रशरों में काम दिये तो वे संगठन बनायेंगे, और एक मिट्टी से जन्मे लोग एक होकर उनके विरुद्ध लडेंगे। इसलिए भूख और गरीबी से त्रस्त होने पर भी स्थनिय लोगों को काम नहीं देते थे। इसके खिलाफ गाँववालों को इकट्ठा कर मन्दाकिनी की अगुआई में गाँववाले संघर्ष करते हैं। गाँववालों को मन्दाकिनी प्रेरणा देती है- "सो जागो रे जागो ! चेतो रे चेतो! छोटे- बडे, नन्हे- मुन्ने, बूढे- पुराने, नए जवानों के अलावा ढोर- चोंपे, परेवा-पंछी, नदी-ताल, पेड-रूख, हवा- पानी यहाँ तक कि दसों दिशाओं को जागना होगा। बचने-बचाने को जूझना होगा। अमीर-गरीब, शत्रु- मित्र सबको शामिल होना होगा इस यज्ञ में। समय पडे तो समिधा-सामंग्री भी बनना होगा। बात होम की है। बात

आन्दोलन की है।"[20] इस प्रकार गाँववालों को जागरूक बनाकर संगठित करके क्रशरों के विरुद्ध गाँव से पहाड तक कतार बाँधता है। मन्दाकिनी कहती है - "महाराजाजी कहते हैं, संगठन में शक्ति होती है। मिलकर चलोंगे। फिर अपनी शर्तें धरेंगी।"[21] लेकिन ठेकेदार और व्यापारियों ने उनका आन्दोलन दबाया। अपनी शर्तों के बारे में बताने के लिए गये लोगों को वाकयुद्ध में परास्त करके वापस भेज देते हैं। ठेकेदार का कथन है- "बहन, सच बात तो यह है कि जिस तरह की मज़दूरी तुम माँग रही हो, हमारे क्रेशर पर उस तरह का काम है ही नहीं। डबल प्लांट की मशीन है, काम तेज़ी से होता है। हमारे पास इतना बख्रत कहाँ धरा है कि फुटकर मज़दूरों के चक्कर में बँधे रहें। दिन-रात मागजपच्ची करें। अपन तो सीधे ट्रैक्टरवालों को ठेका दे देते हैं। आगे का काम उनका रहता है। वे चाहे जहाँ से जुटावें मज़दूर। हमें तो केवल काम पूरा चाहिए।"[22] अंत में गाँववाले मिलकर ट्रैक्टर ख्ररीदने का निर्णय लेते हैं और पैसा इकट्ठा कर ट्रैक्टर ख्ररीदते हैं। फिर भी गाँववालों को काम देने के लिए ठेकेदार तैयार नहीं थे। सरकार और अधिकारी वर्ग भी गाँववालों के रोज़गार की माँग स्वीकार नहीं करती। मन्दाजिनी कहती है- "नौकरशाह और राजनेताओं के हाथ का ख्रिलौना हो गया है हमारा जीवन। यहाँ प्रजातंत्र नहीं, शोषणतंत्र लागू है।"[23] लेकिन चुनाव के अवसर पर राजनीतिज्ञ और नेतागण आकर गौववालों से वोट माँगते हैं, और गाँव की प्रगति के बारे में घोर-घोर भाषण देते हैं, रोजी-रोटी, शिक्षा, सडक, अस्पताल आदि बहुत सारी सुविधाओं का वादा देते हैं। इसके विरुद्ध मन्दाकिनी अपना आक्रोश यों प्रकट करती है- "ये नेता लोग हमें जीवित आदमी नहीं, केवल वोट समझते हैं। हम सोचने-समझने का माद्दा रख्रनेवाले इंसान नहीं, इनकी निगाह में कागज़ पर ठुकी मोहर हैं। सुख्र-दुख्र, लाभ- हानि, ख्रुशी-गमी हमें

नहीं व्यापती। हम तो इनके इस्तेमाल की चीज़ हैं, जिसे वे चाहे जब प्रयोग करें, चाहे जब खारिज कर दें।... एक ओर अपनी वाणी से चमत्कृत करते हैं लोगों को। दूसरी ओर कथनी और करनी को अलग- अलग करके रखते हैं।"[24] राजनीतिज्ञों की ऐसी मानसिकता के विरुद्ध चुनाव बहिष्कृत करके गाँववाले अपना प्रतिरोध व्यक्त करते हैं। मन्दाकिनी ने चुनाव कमीशनर से लेकर अखबारों तक पहूँचकर खबर देती है कि गाँववाले वोटों का बहिष्कार करते हैं, चुनाव बहिष्कार करते हैं।

उपन्यास में टीकमसिंह द्वारा की जानेवाली लडाई का जिक्र भी किया है। पारीछा गाँव के प्रधान थे टीकमसिंह। स्वतंत्रता के बाद देश में विकास की गति तेज़ी से होने लगी। देश में विकास का महापर्व था लेकिन गाँववालों को यह अपना संकट का काल था। उपन्यास में बताया है- "बेतवा के किनारे बसे पारीछा गाँव में सरिया, मुरम, गिट्टी और पत्थर ट्रक भर-भरकर आने लगे। खेतों में होकर सडकें बनाई जाने लगीं और उन सडकों पर इंजनों का कर्णभेदी कोलाहल घरघराने लगा। फसलें ही नहीं, जैसे किसानों के कलेजे रौंदे जाने लगे हों। छटपटाने लगा आसपास के गाँवों का किसान वर्ग।"[25] उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश के सैकडों गोंवों को बिजली, सिंचाई का साधन उपलब्ध कराने के लिए बनायी गयी पारीछा थर्मल प्लांट योजना से संपूर्ण गाँव उजड गये। गाँववालों को मुआवज़ा, पुनर्वास के लिए जगह, रोज़गार कुछ भी नहीं मिला। लोग रो-धोकर निराश-हताश हो गए। इस प्रकार थर्मल प्लांट की योजना "किसी के लिए विकास का महापर्व तो किसी के लिए विनाश का महापर्व। पारीछा खुर्द जसौरा- खडेसर के विनाश का महापर्व। जहाँ के निवासियों को अपनी भूमि से उखाडा जा रहा था। बेदखल किया जा रहा था, खदेडा जा रहा था।"[26] इसके विरुद्ध टीकमसिंह लडाई करने का निर्णय लेता है, और गाँव के किसानों, मज़दूरों,

पशुपालकों को एक सूत्र में बाँधकर लडाई का आह्वान देता है। उनकी लडाई सरकार के विरूद्ध थी। स्टे ऑर्डर भी ले लिया। काम रोक दिया। लेकिन अंत में सरकार के विरुद्ध होने के कारण केस हार गए। सरकार का मानना था कि दो विस्तृत प्रदेशों की प्रगति का सपना था, सो पूरा तो होना ही होना था। लेकिन टीकमसिंह सिर्फ केस ही हार गए हिम्मत नहीं हारा। उन्होंने गाँववालों के पुनर्वास, मुआवज़ा, रोज़गार आदि के लिए लडाई की, और अंत में केस का परिणाम टीकमसिंह के पक्ष में आया। थर्मल प्लांट के आसपास बसे गाँव के लोगों को रोज़गार मिला और अपनी ज़मीन को चौगुनी कीमत भी मिली।

5.7 हलफनामे

प्रस्तुत उपन्यास में राजू शर्मा देश में बढती बोरवेल उद्योग पर अपना प्रतिरोध व्यक्त करते हुए पानी की समस्या को दूर करने के लिए प्राचीन भारतीयों के जल-संचयन के तरीकों को अपनाने का आह्वान देते हैं। उपन्यास में, 'जय जवान-जय किसान' नारे को महत्व देनेवाले भारतवर्ष में बढती किसान आत्महत्याओं को गंभीर समस्या के रूप में चित्रित करके उसकी असलियत को प्रस्तुत किया गया है। किसान आत्महत्या के प्रमुख्र कारण के रूप में सरकार की लापरवाही और पूँजीपतियों की स्वार्थपरक मानसिकता कहते हुए लेख्रक उसके प्रति अपना विरोध यों प्रकट करते हैं- "असल में सरकार मूलतः किसान और कृषि विरोधी है। वह कृषि सेक्टर को गरीब किसान के हाथ से छीनकर पूँजीपतियों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों को सौंपना चाहती है। संरचनात्मक स्तर पर इनकी नीतियाँ जनविरोधी और प्रतिक्रियावादी हैं।"[27]

किसान आत्महत्या के मुख्य कारण के रूप में बोरवेल उद्योग पर चर्चा की है और स्वामीराम, पनियाबाबा और पादरी आदि पात्रों के माध्यम से जल संचयन की आवश्यकता तथा उसके विभिन्न तरीकों के बारे में पाठकों को अवगत कराती है। अतः लेखक मानते हैं कि वर्षा के पानी को विभिन्न तरीकों से पृथ्वी के गर्भ में संचयन करना चाहिए। इसके ज़रिए एक हद तक पानी की किल्लत से बच पायें और बोरवेल उद्योग पर रोकथाम लगाया जा सकें।

आधुनिक युग में बोरवेल उद्योग तेज़ी से आगे बढ रहा है। भारत में बोरवेल माफिया पनप रहे हैं। ये लोग सगुनिया यानी पानी के पुरोहितों को अपने काबू में लाकर उनका इस्तेमाल करते हैं और किसानों को खेती, बोरवेल आदि के लिए कर्ज देते हैं। ये बीज, खाद, कीटनाशक आदि भी बेचते हैं, और किसानों से फसल, ज़मीन, चमडी आदि औने- पौने दाम पर खरीद लेते हैं। बोरिंग के लिए पाइप आदि की सप्लाई भी इन्हीं का ही काम है। फेल बोरवेलों के कारण पानी की समस्या से खेती नष्ट हुए किसान इन्हीं के पास अपनी ज़मीन गिरवी रखते हैं। अंत में कर्ज में डूबकर किसान, आत्महत्या करते हैं और ज़मीन इन पूँजीपतियों के हाथ में आ जाती है। पूँजीपतियों के इस षड्यंत्र का खुला चित्रण उपन्यास में देख सकते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में आन्ध्रप्रदेश की किसान अत्महत्याओं का चित्रण अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है और लेखक शिकायत करते हैं कि इतनी किसान आत्महत्याएँ होने के बावजूद भी वहाँ की सरकार किसानों के उद्धार के लिए कोई खास योजना लागू नहीं करती है। बोरवेल उद्योग के अलावा कल कारखानों के अपशिष्टों के कारण नाश हुए तालाब और प्लास्टिक के बढते उपयोग से नदी का प्रदूषण आदि जलस्रोतों के प्रदूषण का खुला चित्रण किया गया है। आधुनिक युग में दिन-प्रतिदिन बढती जा रही जल-समस्या के बारे में पाठकों को अवगत कराना ही लेखक का लक्ष्य है।

5.8 दावानल

नवीन जोशी का 'दावानल' भारत के विख्यात पारिस्थितिक आन्दोलन 'चिपको आन्दोलन' की औपन्यासिक महागाथा है। उत्तराखंड की ग्रामीण स्त्रियों द्वारा जंगलों की रक्षा के लिए किये गये प्रस्तुत आन्दोलन दुनियाभर में शुद्ध पर्यावरण रक्षा आन्दोलन के रूप में खूब ख्याति प्राप्त की। उपन्यास में एक ओर चिपको की इस रोमांचकारी कथा का चित्रण प्रस्तुत किया है तो दूसरी ओर आन्दोलन के दौरान जंगलों पर अपने परंपरागत अधिकारों से वंचित गाँववालों की त्रासद कथा और उनके आन्दोलन को भी व्यक्त किया है।

सरकार द्वारा वनों के व्यापारीकरण के विरुद्ध उत्तराखंड के रेणी गाँव में सन् 1974 मार्च में गाँव की महिला मंडल के नेता गौरा देवी की अगुआई में गाँव की महिलाओं द्वारा शुरू किया गया आन्दोलन है चिपको आन्दोलन। सरकार ने सारे जंगल गाँववालों के हाथों से छीनकर अपने कब्जे में ले लिया और उनके मवेशियों को जंगल में चराने से रोकथाम लगाया और गाँववालों को जंगल में आना-जाना तक मना किया, और साइमंड जैसे कंपनियों और बडे-बडे पेपर मिलों को जंगल एक तरफ से बेचने लगे। कंपनीवाले पूरा जंगल साफ करने लगे। इसके विरुद्ध गौरादेवी ने गाँव की औरतों को इकट्ठा कर आन्दोलन करने का आह्वान दिया। गाँववालों को प्रेरणा दी- "ये जंगल तुम्हारे हैं। इन पेडों पर सब लोगों का समान हक है। तुम्हारा हक छीनकर ये जंगल मैदानों के व्यापारियों को बेचे जा रहे हैं। हम गाँववाले पत्ते और लकडी तक नहीं तोड सकते। मगर वे पूरा का पूरा जंगल साफ करके ले जा रहे हैं। उनका कोई हक नहीं है। जंगल से हमारा रिश्ता जन्मों का है। किसी को भी अपने जंगलों में मत घुसने दो। ...पूरा जंगल काट देंगे वे।"[28] उस समय गाँव में

एक भी मर्द न थे। वे सब मलारी की ज़मीन की मुआवज़ा के लिए चमोली गये थे। इसलिए जंगल की रक्षा गौरादेवी ने अपना कर्तव्य माना और औरतों को इकट्ठा कर पेडों की कटाई रोकने के लिए जंगल की ओर चली। उसने औरतों से कहा- "हमारा जंगल काटने को ठेकेदार के आदमी आ गए हैं।... उनको रोकना होगा... रोकना बहुत ज़रूरी है। मर्द नहीं है आज, इसलिए ठेकेदार जंगल काटने आया है। हम उन्हें पेड़ नहीं काटने देंगी। यह जंगल हमारा है- हम गाँववालों का। ...हम उनके सामने खडी हो जाएंगी। उन्हें जंगल में नहीं जाने देंगी। पेडों तक पहूँचने ही नहीं देंगी। ज़ोर-ज़बरदस्ती करेंगे तो हम कुलहाडी के सामने खडी हो जाएंगी। देखें वे कैसे काटते हैं एक भी पेड।"[29] सब लोग गौरा देवी के पीछे चल पडीं। लेखक बताते हैं – "गौरा देवी और लक्ष्मी देवी, बूढी देवी और जवान देवी। विधवा देवी और सधवा देवी। जिन्होंने कभी जुलूस नहीं देखा था और आन्दोलन नहीं जाने थे। वे जुलूस बनाकर आन्दोलन के लिए दौडी जा रही थीं। गिनती की सत्ताईस औरतें।"[30] आन्दोलन के तरीके के बारे में गाँववालों से गौरादेवी ने कहा था- "पहले हम उन्हें वापस जाने को समझाएंगी, मज़दूरों से कहेंगी कि लौट जाओ। हमारा जंगल मत काटो। ...अगर वे नहीं माने तो हम पेडों को अंग्वाल्ठा (आलिंगन) डाल देंगी, ऐसे...गौरा ने बगल में खडी औरत को अपनी बाहों में भर लिया...ऐसे, पट्ट पकट लेंगी पेड को।"[31] गौरादेवी के आदेशानुसार सब मिलकर जंगल की ओर गयी और गौरादेवी ने पेड़ों की कटाई के लिए आये मज़दूरों से कहा- "देखो, तुम्हारे भी तो बाल-बच्चे होंगे। उनके लिए इन पेडों को बचा दो। हम विनती करती हैं तुमसे। देखो, यह जंगल कटेगा तो हमारा गाँव, हमारी खेती चौपट हो जाएगी... पहले ही बहुत नुकसान हो चुका है... आप लोग लौट जाओ।"[32] यह देखकर कंपनी के एजेंट

और वन कर्मचारी पहूँच गए और औरतों को बंदूक दिखाकर डराया और कहा-"ये बंदूक देखी है? इससे गोली निकलती है तो आदमी वहीं ढेर हो जाता है।"[33] लेकिन गौरादेवी ने अपने मत से एक कदम पीछे नहीं रखी और उनसे कहा- "हमें बंदूक दिखाकर डराता है? हम जोली खा लेंगी, मगर पेड नहीं काटने देंगी! अंग्वाल्ठा (आलिंगव) डाल देंगी हम पेडों पर... तुमने समझा क्या रखा है?.... पेड तो हम काटने नहीं देंगी...कुल्हाडी चलाना है तो हमारी पीठ पर चलाओ...ये जंगल हमारा मायका है... तुमने क्या समझा था कि गाँव में आज आदमी नहीं हैं तो तुम जंगल काट डालोगे! हम गढवाल की औरतें हैं रे, जान दे देंगी मगर पेड नहीं काटने देंगी। हमारी घास- लकडी बंद हो गई। हमारा पानी सूख गया। हमारे पहाड धंसने लगे। हमारी धरती तुमने उज़ाड दी! अब बस! अब नहीं कटेगा एक भी पेड... भाग जाओ मज़दूरों को लेकर। ले जाओ इन आरों-कुल्हाडों को वर्ना तुम जहां-जहां जाओगे हम तुम्हारा पीछा करेंगी... जय बदरी विशाल।"[34] इस प्रकार गढवाल की औरतों के आगे मज़दूर, मुंशी और वन कर्मचारियों को अपना घुटने टेकना पडा। रेणी की औरतों की बहादुरी सपूर्ण गाँव में फैल गयी। सबने गैरादेवी और रेणी की औरतों को बधाई दी। सबने मिलकर तय किया कि रेणी का किस्सा हर एक जंगल में दोहराया जाऐं जहाँ-जहाँ पेड काटे जा रहे हैं। मज़दूरों को जंगल में घुसने न दिया जाए। पेड़ों पर एक भी कुल्हाडी न पडने दें। यह आन्दोलन पूरी तरह अहिंसात्मक होगा। कोई मारपीट, छीना-झपटी नहीं करेंगे। जंगल को बचाने के लिए जान भी लगा देंगे। धीरे-धीरे चिपको आन्दोलन में रामप्रसाद जी और बाबा जीवनलाल भी शमिल हुए और चिपको को देश- विदेश में खूब ख्याति प्राप्त हुई। रेणी के इस आन्दोलन से प्रेरणा पाकर कुमाऊँ के जंगलों की नीलामी के विरुद्ध तथा अल्मोडा, नैनीताल,

मल्लिताल आदि उत्तराखडं के कई-कई इलाकों में चिपको आन्दोलन चलाया। युवकों ने 'संघर्ष वाहिनी' के नेतृत्व में जंगलों की नीलामी रोकने लगे और राज्य की जगह-जगह पर भाषण, धरना, अनशन आदि का संगठन किया और जनता को अवगत कराया। भाषण इस प्रकार था- "जिलाधिकारी जंगलात के अफसरों और ठेकेदारों से हमारा निवेदन है कि वे पहाड के जंगलों की इस नीलामी को रद्द कर दें। पहाड के जंगलों को काटना पहाडों का विनाश करना है... पहले ही काफी जंगल साफ हो चुके हैं। अब वनों को बचाना बहुत ज़रूरी हो गया है। जंगलों को स्थानीय जनता के संरक्षण में दिया जाना चाहिए। वही वनों का अच्छा उपयोग कर सकती है और संरक्षण भी। ठेकेदार भाइयों से हमारा आग्रह है कि वे बिना बोली लगाए यहाँ से चले जाएं। हम यह नीलामी नहीं होने देंगे। चिपको आन्दोलन ज़िंदाबाद! संघर्ष वाहिनी ज़िंदाबाद।"[35] लेकिन सरकार ने संघर्ष वाहिनी का पुरजोर विरोध किया। पुलीस और अधिकारी वर्ग द्वारा शांतिपूर्ण आन्दोलनकारियों के खिलाफ अपराधिक मामला बनाने के लिए सारा षड्यंत्र रचा गया। शांतिपूर्ण आन्दोलन में पुलीस था अत्याचार हुआ। लाठियाँ पूरी ताकत से आन्दोलनकारियों पर बरसने लगीं। गोलियाँ चलने लगी। उनके क्लब पर आग लगा दी और कई लोग गिरफ्तार हुए। चिपको को सरकार विरोधी कारनामा घोषित किया। फिर भी आन्दोलनकरियों ने अपनी लडाई से पीछे नहीं हटा। अंत में खूब चर्चाएँ हुई। मुख्यमंत्री ने आकर कहा - " चिपको आन्दोलन की भावना को ध्यान में रखकर प्रदेश सरकार ने फैसला किया है कि अलकनंदा और उसकी सहायक नदियों के जलग्रहण क्षेत्रों में अगले दस वर्षों तक पेडों के कटान पर पूरी तरह प्रतिबंध लगा दिया जाए। इससे वनों का संरक्षण होगा, पर्यावरण का असंतुलन दूर होगा और भूस्खलन के बढते खतरे भी क्रमशः कम होंगे।

सरकार ने वन कटान की ठेकेदारी प्रथा को खत्म करने का निर्णय किया है।"[36] इस प्रकार चिपको आन्दोलन की माँगें मानी गई।

चिपको आन्दोलन का नारा था- "मैं खुद कट जाऊँगा, मगर पेडों को नहीं काटने दूँगा।[37] चिपको के इस नारे ने पेडों को आध्यात्मिक और रोमांटिक प्रचार दे दिया। पेड को अद्‌भुत प्रतिष्ठा मिल गई। कहा गया कि एक पेड दस पुत्रों के समान है। पेड के इस महिमा मंडन में आन्दोलन के कुछ कार्यकर्ता नेता बन गये। अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भी चिपको की चर्चा होने लगी। जंगलों के विनाश और उसके दुष्प्रभावों की वैज्ञानिक रपटें छप रही। दिल्ली, जिनेवा, पारिस, स्विट्ज़रलैंड, न्यूयोर्क जाने कहाँ-कहाँ बडे-बडे सम्मेलन हुए। चिपको पर पैसा और अनेक पुस्स्कार मिले। देश के सरकार भी वन-अधिनियम को और सख्त बनाकर चिपको को सरकारी मान्यता दे दी। लेकिन यह आन्दोलन सिर्फ पेडों की रक्षा के लिए नहीं थे बल्कि गाँववालों के हक की माँग भी इसमें थी। आन्दोलन व्यापक होने के साथ उस हक की लडाई कहीं खो गई और 'चिपको' शुद्ध पर्यावरण आन्दोलन के रूप में सफलता हासिल की। गाँववालों को जंगल पर अपने बचे-खुचे अधिकार भी नष्ट हुए। इस प्रकार चिपको आन्दोलन एक ओर पारिस्थितिक आन्दोलन के रूप में सफल हुए हैं लेकिन दूसरी ओर विजय हासिल करने में असफल है।

5.9 ग्लोबल गाँव के देवता

प्रस्तुत उपन्यास में असुर आदिवासियों द्वारा चलानेवाले कई आन्दोलनों का चित्रण देखा जा सकता है। अवैध खनन तथा उसके फलस्वरूप उत्पन्न समस्याओं के हल के लिए और अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए आदिवासी संघर्षरत है। लेकिन उनका सारा संघर्ष पूँजीपति और पुलिस द्वारा दबाये जाते हैं। अपने इलाके में चल

रहे वैध और अवैध ख़नन से त्रस्त आदिवासी अपनी मुआवज़ा, पुनर्वास तथा रोज़गार के लिए संघर्ष करते हैं। 'कनारी नवयुवक संघ' नामक संघर्ष समिति की मदद से आदिवासी, गाँववाले और अन्य मज़दूर मिलकर लडाई करते हैं। बहुत बडी भीड जिला मुख्यालय की ओर जुलूस निकलती है। बिरसा मैदान से जब रैली निकली, हरे झंडे से पूरा शहर पट गये। सबसे आगे बुधनी दी और एतवारी, संघर्ष समिति का बडा बैनर पकडकर बढ रही थी। उन्होंने कलेक्टर के पास जाकर माँग-पत्र सौंप दिये और सात दिन तक ख़दान बंद करवाकर गाँववालों ने लडाई की। यह घटना ग्लोबल गाँव के देवताओं में ख़लबली मचाने का कारण बन गया। किशन कन्हैया पांडे नामक पूँजीपति ने नवयुवक संघ के जेम्स की बहन सलोनी पर अत्याचार करके उसका एक वीडियो सीडी तैयार करके जेम्स को ब्लैक मैल किया और अंत में नवयुवक संघ को लडाई से पीछे मुडना पडा। उसी रात में ही गाँव में पुलिस आकर गाँववालों को मार-पीटकर बाकी नेताओं को भी गिरफ्तार करके ले गए। डॉक्टर रामकुमार, लालचन, बालचन, रुमझुम, सोमा, भीखा आदि को तथा बुधनी दी को भी गिरफ्तार करके थाना ले गए। वैसे गाँववालों की लडाई असफल हुई।

इसके बाद गाँव में पुलिस के अत्याचारों को रोकने के लिए लालचन दा की 'संघर्ष समिति' ने पाट पर जनता कर्फ्यू लगा दिया। सखुआ के पेड़ों को काटकर हर गाँव के मुहाने पर चेक नाका बना दिया गया। 'संघर्ष समिति' के कार्यकर्ताओं के घर के सामने भी चेक नाका बना दिया था। रात में कोई पुलिस जीप आती तो सामने के घर से नगाडा बजाते थे और दस मिनट के अंतर्गत गाँव के सभी मर्द-औरत इकट्ठे हो जाते थे और जीप के सामने चुपचाप बैठ जाते थे। पुलिस ने गाँववालों को उत्तेजित करने की कोशिशें की थीं परंतु भीड चुप और शांत होकर बैठ रहे थे और पुलिस को लाचार होकर लौटना पडता था। लेकिन एक दिन पाथरपाट

से पुलिस जीप आकर जनता कर्फ्यू के लिए लगाये गये चेकनाका तोडने लगे और गाँववालों को मार-पीटकर लौट गये। इसके विरुद्ध पुलिस चौकी को घेरने की योजना पर सब गाँववाले सहमत थे और सवेरे भीड पुलिस चौकी के चारों ओर जमा हुआ। कहीं कोई उत्तेजना या हडबडाहट नहीं थे। पाट के सारे मर्द और सियानीमन दिन भर घेराव-धरना की तैयारी से आये थे। लोगों को सिर्फ एक ही माँग थी कि कल बिना मतलब मारपीट करनेवाले पुलिसवालों को निलम्बित किया जाए। पुलिसवालों ने सोचा था कि 'संघर्ष समिति' के लोग रात में ही चौकी पर आ जाएँगे, लेकिन उनकी प्लानिंग गडबडा गयी थी। इसलिए सवेरे में आये भीड को देखकर वह हकबका गये थे। शान्त बैठे हज़ारों भीड से निपटने के लिए कई कोशिशें की और अंत में रायफल निकालकर भीड पर फयरिंग करना शुरू कर दी। रुमझुम, भीखा समेत आगे बैठे सभी- लोगों को गोली लगी। कुछ क्षणों में छह लाशें सामने पडी। पुलिस की इस नृशंस हत्याकांड को नकसली मुठभेड के रूप में खबर फैलायी और दूसरे दिन के अखबारों के तीसरे पेज पर ऐसी खबर छप गयी थी कि पाथरपाट में हुए पुलिस मुठभेड में छह नक्सली मारे गये। मारे गये नक्सलियों में कुख्यात एरिया कमांडर बालचन भी शमिल थे। फिर बालचन के नृशंस कारनामों का विवरण भी दिया गया था। अंत में इस बात का भी उल्लेख था कि भागते समय नक्सली लाशें उठा ले गये। पुलिस फोर्स लाशों की तलाश कर रही है। इस प्रकार आदिवासियों के अस्तित्व की लडाई को पुलिस ने नक्सली आन्दोलन में बदल दिया।

उपन्यास में 'वेदांग' कंपनी के खिलाफ हुए प्रतिरोध का चित्रण भी देखा जा सकता है। गाँववालों ने तय किया कि भीड या जुलूस के बदले बस पन्द्रह-बीस लोग मिलकर पुलिस या संबंध अधिकारियों से बात करके अपनी हक की माँग करें। सारी बात दरख्वास्त में लिखकर उन्हें देंगे। ज़्यादा बहस नहीं करनी है। कोई झगडा-झंझट

नहीं केवल अपने मुआवज़े, पुनर्वास की बात करनी है। इसलिए वेदांग कंपनी और पुलिस प्रशासन को ख़बर दे दी गयी कि कल ही बात की जाएँ उसके बाद कंपनी का काम आगे बढाया जाए। लेकिन ऐसी एक शांतिपूर्ण बातचीत के लिए भी कंपनीवालों तथा पुलिस तैयार नहीं थे इसलिए बातचीत के लिए गये पन्द्रह लोगों को ब्लास्टिंग के द्वारा हत्या करवा दिया।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने आदिवासियों के असफल प्रतिरोध को कई उदाहरणों के साथ प्रस्तुत किया है और अंत में लेखक बताते हैं कि कितनी बार कुचलने पर भी उनकी लडाई समाप्त नहीं होती। क्योंकि वह अस्तित्व की लडाई है। इसलिए ही राजधानी के यूनिवर्सिटी होस्टल से सुनील असुर अपने साथियों के साथ लडाई की बागडोर-सँभालने के लिए निकल रहा था। इस प्रकार जब तक आदिवासियों पर अत्याचार होगा तब तक उसके खिलाफ संघर्ष भी ज़ारी रहेगा।

5.10 मरंग गोडा नीलकंठ हुआ

प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने नायक सगेन द्वारा युरेनियम खदानों से उत्पन्न प्रदूषण व विकिरण की समस्याओं का चित्रण करके 'युरोनियम कंपनी ऑफ मरंग गोडा' के खिलाफ सगेन और उसके साथी आदित्यश्री के नेतृत्व में हुए आन्दोलनों की विस्तृत चर्चा की है। पत्रकार आदित्यश्री ने मरंग गोडा की त्रासद कथा पर डोक्युमेंटरी फिल्म बनाकर देश-विदेश में प्रदर्शन करके दुनिया का ध्याम मरंग गोडा की ओर आकर्षित कराने का सफल प्रयास किया है।

पहले-पहले गाँववालों ने अपने गाँव की लाइलाज बीमारियों तथा अन्य समस्याओं का कारण किसी डायन का हमला ही मानते थे। लेकिन जब सगेन को खदान में नौकरी मिली तब वहाँ के पुस्तकालय से उसको युरेनियम की विध्वंसकारी

शक्ति के बारे में ख़बर मिली। वहाँ से सगेन ने जाना कि वास्तव में युरेनियम क्या है और वह कितना ख़तरनाक है। युरेनियम से निकलनेवाले विकिरण जीव-जंतु और पेड-पौधों पर दुष्प्रभाव डालता है, नवजात शिशुओं को विकलांग बनाने की क्षमता रखता है। कैंसर जैसी लाइलाज बीमारियों से लोगों को तबाह करने की कूवत रखती है। इस प्रकार सगेन को पता चला कि मरंग गोडा की सभी समस्याओं की जड युरेनियम ख़दान है। इसलिए वह अपने गाँव के लोगों को इस मुसीबत से छुटकारा दिलाने की तरकीबें ढूँढने लगी और उसने आसपास के लोगों तथा अपने साथियों को इसके बारे में अवगत कराने की कोशिश की। लेकिन उसकी बातों से लोगों पर कोई ख़ास असर नहीं पडा। इसलिए सगेन ने 'झारखंड स्टुडेंट्स यूनियन' से जुडकर बिहार से अलग झारखंड राज्य की माँग को लेकर होनेवाले आन्दोलन में भाग लिया। प्रस्तुत संगठन के ज़रिए मरंगोंडा की रक्षा के लिए भी संघर्ष करने का निर्णय लिया और मरंग गोडा के प्रदूषण के ख़िलाफ आवाज़ उठाने लगे। गाँव के कई लोग सगेन को डराने- धमकाने लगे और उनसे सतर्क करने लगे- "युरोनियम या परमाणु का नामला अत्यंत संवेदनशील मामला है। इसके ख़िलाफ सार्वजनिक रूप से कुछ भी बोलना, या कोई भी कदम उठाना देश द्रोह माना जाता है। इस मामले में कंपनी तथा प्रशासन का रवैया अत्यंत सख़्त है। ऐसा करने पर किसी भी वक्त गिरफ्तार किये जा सकते हो। कठोर से कठोर सजा हो सकती है।"[38] इसलिए सज़ा के डर में युरेनियम विकिरण मुद्दे पर खुलेआम उसके साथ काम करने के लिए कोई व्यक्ति तैयार नहीं थे। लेकिन सगेन ने अपना एक अलग संगठन बनाने का निर्णय लिया। इसके लिए सबसे पहले मरंग गोडा के कुछ युवकों को लेकर 'मरंग गोडा आदिवासी विस्थापित बेरोज़गार संघ' नामक संगठन का निर्माण किया। इसके तहत वह

विस्थापित बेरोज़गरों को कंपनी से मुआवज़ा, नौकरी, इलाके में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र आदि के लिए आन्दोलन करने लगे। धीरे-धीरे उनका संगठन काफी सक्रिय हो उठा। सगेन ने ग्रामीणों को अवगत कराने के लिए लाख्रों कोशिश की। लेकिन कुछ लोगों का कहना था- "कंपनीवाले बहुत ताकतवार हैं। वे जो चाहेंगे, वही करेंगे। बेहतर होगा, हमारी जमीन के बदले वे जो कुछ दे रहे हैं उसे लेकर चुपचाप कहीं चले जाएं हम।"[39] इसलिए सगेन ने पैसठ गाँव के ग्राम प्रधानों को बुलाकर अवगत कराने की कोशिश की और उन ग्राम प्रधानों के निर्देशानुसार गाँववालों ने इकट्ठा होकर संघर्ष करने का निर्णय लिया। 'दुनियावालों सुन लो आज, हमारे गाँव में हमारा राज! जान दे देंगे मगर अपने पवित्र जाहेर थान को डूबने नहीं देंगे।"[40] नारा लगाकर आन्दोलन करने लगे। कंपनीवालों ने उनसे कहा- "देख्रो, ये ज़मीन हमारी है। हम अपनी ज़मीन पर डैम बना रहे हैं। तुम लोग इसका विरोध नहीं कर सकतो।"[41] लेकिन गाँववालों का जवाब था- "हम विरोध करेंगे। ये ज़मीन हमारी है। हमारे पुरख्रों ने ख्रून पसीना एक करके इसे रहने और ख्रेती करने लायक बनाया है। वर्षों से हम यहीं रहते आए हैं, ख्रेती करते आए हैं।"[42] लेकिन कंपनीवालों ने भारी पुलिस बल के सहारे गाँव में घुसकर गाँववालों पर अत्याचार किया। तीस घरों को निर्ममता से तोड डाला, लोगों को मारा-पीटा। इस घटना पर आँसू बहाते रहे गाँववालों से सगेन ने कहा- "आप लोगों ने इतने जतन से तिल-तिल करके अपना घर बनाया। उसे सजाया संवारा। हाड़तोड मेहनत करके गृहस्थी की छोटी-बडी चीज़ें जुटाईं। और कंपनीवालों ने क्या किया? बगैर पूछे, बगैर सूचना दिये आपके घर को तोड डाला। क्या आप लोग इसका प्रतिवाद नहीं करेंगे? हर आदमी को अपनी लडाई ख्रुद लडनी चाहिए। अपने प्रति हो रहे अन्याय, शोषण के ख्रिलाफ आवाज़ उठाना

चाहिए। हमें किसी अवतार की किसी भगवान की प्रतीक्षा नहीं करनी है। बिरसा ने, कृष्णा ने अन्याय के ख़िलाफ आवाज़ उठायी। हमने उन्हें भगवान का दर्जा दिया और सोचने लगे कि हमेशा ऐसा ही कोई अवतारी पुरुष, कोई अलौकिक शक्ति हमारा उद्धार करने आएगी। और हम हाथ पर हाथ धरे बैठ रह गये। यह अलौकिक शक्ति कुछ और नहीं, हमारा आत्मविश्वास है। हमारी हिम्मत है। इसे ही जगाना है हमें। हमें बिरसा की तरह भगवान नहीं बनना है। हमें मानव ही रहना है। मानव बनकर मानव के अधिकारों के लिए लडना है।"[43] सगेन के भाषण से प्रेरणा पाकर गाँव के लोग टेलिंग डैम का विरोध करते हुए जगह-जगह धरना- प्रदर्शन करने लगे। इस लडाई में गाँव के सब लोग शमिल थे। लाल पाड वाली सफेद साडी में औरतें। पीले रंग का साफा बांधे पुरुष। "दुनियावालों सुन लो आज, हमारे गाँव में हमारा राज, इनकलाब जिंदाबाद, जल, जंगल, ज़मीन हमारा है, हमें हमारा घर वापस करो, हमारा खेत वापस करो।"[44] नारा लगाकर विभिन्न शस्त्रों के साथ आगे बढे। उनके साथ पत्रकार आदित्यश्री भी फोटो खींचकर चल रहा था। उस समय कंपनीवालों ने बाहर से मज़दूर लाकर भारी संख्या में पुलीस बल की मदद से टैलिगं डैम का निर्माण कर रहे थे। लेकिन इसके ख़िलाफ गाँववालों ने अपना आन्दोलन तेज़ कर दिया। उनके साथ पुलिस हमला हुआ और कई लोगों को गिरफ्तार करके ले गये। पुलिस के इस अत्याचार के विरुद्ध गाँववालों ने 'जेल भरो आन्दोलन' शुरू कर दिया। गाँव के कई लोग गिरफ्तार हुए। धरना, प्रदर्शन तेज़ होते रहे और गिफ्तारी देने का सिलसिला ज़ारी था। ग्रामीणों ने पुलिस से कहा कि- "सौ से अधिक गाँव हैं इधर। जब तक गाँव में एक भी व्यक्ति बचा रहेगा, प्रतिरोध ज़ारी रहेगा।"[45] देश के पत्रकार प्रस्तुत आन्दोलन की ख़बरं फैलाने लगीं। वैसे इस संघर्ष से केन्द्र सरकार

की किरकिरी हो रही थी तो राज्य के प्रशासनिक अधिकारियों और खदान कंपनी के आला अधिकारियों पर इस मामले का जल्द से जल्द निपटाने का दबाव पडने लगा। कंपनीवालों ने 'मरंग गोडा आदिवासी विस्थापित बेरोज़गार संघ' के तत्वावधान में ग्रामीणों से बात करने का निर्णय लिया। गाँव के तोडे गये तीस घरों के प्रत्येक परिवार के प्रत्येक बालिग को नौकरी देने का और उनकी ज़मीन को प्रति एकड 95 हज़ार रुपये देने का और मकान बनाने के लिए 65 हज़ार रुपये देने का वादा किया और गाँव में बसने के लिए प्रत्येक परिवार को 12 डिसमिल ज़मीन का पट्टा भी देने का निर्णय लिया। यह उनके संगठन के आन्दोलन के लिए एक अभूतपूर्व सफलता थी। लेकिन इसमें प्रदूषण नियंत्रण के लिए कोई खास निर्णय नहीं लिये थे। इसलिए आन्दोलन 'रेडियोधर्मिता विरोधी आन्दोलन' की ओर मोड दिया। सगेन का कथन था - "भले ही मुआवज़ा देकर कंपनी ने कुछ लोगों का भला किया हो पर इसके कारण हमारा वातावरण तो प्रदूषित होता ही रहेगा न! हमारी आनेवाली पीढियाँ तो बीमार होती ही रहेंगी न! हमारी विकलांगता, हमारी असामयिक मौत देख वैसे भी हमारे पुरखों की आत्मा रो रही है। कंपनी चाहे कितना भी मुआवज़ा क्यों न दे, बीमारों के इलाज की व्यवस्था कर दे मगर हमारे स्वास्थ्य, हमारी स्वच्छ हवा को, जो हम गरीबों की एकमात्र पूँजी थी, तो वापस नहीं ला सकती है न! जब इन तमाम मुसीबतों की जड़ ये खदानें, ये मिलें हैं तो क्यों न इन्हें ही बंद करने की हम मांग करें। ज़हरीली साँप को उसके बिल में रहने देना ही बुद्धिमानी है। बाहर लाना नहीं।"[46] इस प्रकार प्रदूषण नियंत्रण केलिए आन्दोलनकारियों की सहमति से संगठन का नाम बदलकर 'मरंगगोडाज़ और्गनाइज़ेशन अगेन्स्ट रेडिएशन' (मोआर) रखा। संगठन को पता चला कि मरंग गोडा में सिर्फ युरेनियम खदानों से ही नहीं देश के

विभिन्न आणविक प्रयोगशालाओं, परमाणु, संयंत्रों तथा अस्पतालों से निकले रेडियोधर्मी कचरों को लाकर मरंग गोडा के टेलिंग डैम में फेंका जाता है। इस प्रकार इलाके को देश भर का 'न्यूक्लियर वेस्ट डम्पिंग स्टेशन' बनाया गया है। इसके खिलाफ सगेन ने जनता को अवगत कराया और आदित्यश्री ने सबको रिकोर्डिंग भी किया। सगेन के निर्देशानुसार गुजरात से कई डॉक्टर मरंग गोडा के बारे में अध्ययन करने के लिए आए। उन्होंने जनता से कहा - "यह आन्दोलन जनता के हित की रक्षा के लिए जनता द्वारा किया जानेवाला आन्दोलन है, देशद्रोहियों का आन्दोलन नहीं।"[47] इससे प्रेरणा पाकर आन्दोलन शुरू किया। इन तमाम गतिविधियों एवं लोगों के सामूहिक प्रयास से धीरे-धीरे मरंग गोडा के लोग स्वास्थ्य और पर्यावरण के प्रति जागरूक होने लगे थे और कंपनीवालों को मरंग गोडा के खुले मैदान में एक पेड के नीचे जनसभा में समस्याओं के हल केलिए चर्चा करने हेतु बैठक बुलाया। जब ग्रमिणों ने टेलिंग डैम से उत्पन्न समस्याओं से संबंधित सवाल पूछ-पूछ कर कंपनी के अधिकारी को परेशान करना आरंभ किया तो वे हिन्दी के बजाय अंग्रेज़ी में जवाब देने लगे। इस सभा के बाद टेलिंग डैम द्वारा होनेवाले प्रदूषण रोकने के लिए कंपनीवालों ने तय किया। कंक्रीट से डैमों के आकार के बडे-बडे चबूतरे बनाकर शुद्ध सीमेंट के घोल की परत चढाकर मोटे प्लास्टिक से मढने के बाद उसमें युरेनियम के गीले कचरे को डालने के लिए सहमत हुए और कंपनी ने सुरक्षा मानकों को स्वीकार करके आगे बढने का भी निर्णय लिया। इस प्रकार गाँववालों की समस्याओं का एक हद तक हल हो जाएगा।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने सिर्फ मरंग गोडा के ही नहीं दुनिया भर में रेडियोधर्मी प्रदूषण के कारण हुई दुर्घटनाओं तथा उसके खिलाफ हुए कई आन्दोलनों पर भी विस्तृत चर्चा की है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त दस उपन्यासों के अध्ययन के दौरान हम यह कह सकते हैं कि समकालीन साहित्य का मुख्य स्वर 'प्रतिरोध' ही है। समकालीन साहित्यकारों ने तत्कालीन सामाजिक परिवेश तथा जीवन यथार्थ को उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की हैं। आज, वैश्वीकरण के इस युग में पूंजीवादी व्यवस्था पूरी ताकत से आगे बढ रही है। फलस्वरूप प्रकृति और हाशियेकृत समाज इनके शोषण का शिकार बन रहे हैं। पूँजीपति अपनी अर्थव्यवस्था को सुदृढ बनाने के लिए प्रकृति पर हस्तक्षेप कर रहे हैं और हाशियेकृत समाज पर अत्याचार किये जा रहे हैं। इसके विरुद्ध समाज में कई प्रकार के संघर्ष चल रहे हैं। इसकी झलक साहित्य में भी देख सकते हैं। आज साहित्य में पर्यावरण-चिंतन एक गंभीर विषय है। साहित्यकार प्रकृति और हाशियेकृत समाज पर होनेवाले अत्याचार को अपनी रचनाधर्मिता द्वारा संपूर्ण समाज के सामने पहुँचाने का सफल प्रयास कर रहे हैं। उपर्युक्त सभी उपन्यासों में हम आन्दोलन के कई रूप देख सकते हैं। इनमें सफल और असफल दोनों प्रकार के प्रतिरोध का चित्रण किये गये हैं। साहित्य में पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त आन्दोलन या प्रतिरोध असफल होने के बावजूद भी इसकी एक खूबी यह है कि प्रस्तुत समस्या के बारे में पाठकों के मन में एक प्रतिक्रिया जगाने में लेखक सफल होते हैं। इसी दृष्टि से देखें तो ये दस उपन्यास हिन्दी साहित्य जगत की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. संजीव- सावधान! नीचे आग है, पृ.182
2. वही, पृ.257
3. वही, पृ.263
4. वही, पृ.43
5. संजीव- धार, पृ.22
6. वही, पृ.130
7. वही, पृ.156
8. वही, पृ.157
9. वही, पृ.130
10. वीरेन्द्र जैन- डूब, पृ.108
11. वही, पृ.116
12. वही, पृ.251
13. वही, पृ.288
14. मनमोहन पाठक- गगन घटा घहरानी, पृ.176
15. वही, पृ.176, 177
16. वही, पृ.172
17. वही, पृ.158

18. मनमोहन पाठक- गगन घटा घहरानी, पृ.226

19. वीरेन्द्र जैन- पार, पृ.126, 127

20. मैत्रेयी पुष्पा- इदन्नकम, पृ.224

21. वही, पृ.225

22. वही, पृ.234

23. वही, पृ.206

24. वही, पृ.409, 410

25. वही, पृ.214

26. वही, पृ.214

27. राजू शर्मा- हलफनामे, पृ.219

28. नवीन जोशी- दावानल, पृ.61

29. वही, पृ.65

30. वही, पृ.66

31. वही, पृ.69

32. वही, पृ.70

33. वही, पृ.70

34. वही, पृ.71

35. वही, पृ.135

36. नवीन जोशी- दावानल, पृ.157

37. वही, पृ.21

38. महुआ माजी- मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, पृ.162

39. वही, पृ.166

40. वही, पृ.167

41. वही, पृ.167

42. वही, पृ.167

43. वही, पृ.168

44. वही, पृ.169

45. वही, पृ.173

46. वही, पृ.177

47. वही, पृ.181

उपसंहार

आधुनिक युग की सबसे विकराल समस्या है पारिस्थिकि समस्या, जो आज किसी एक देश या समाज की समस्या नहीं है बल्कि विश्वभर की सबसे गंभीर समस्या बन गयी है। आज की पारिस्थितिक समस्याओं के मूल कारण हैं- औद्योगीकरण, शहरीकरण, आधुनिकीकरण, जनसंख्या विस्फोट आदि। आधुनिक युग में विकास और आर्थिक प्रगति के पीछे दौडनेवाले मानव, प्रकृति को अपने उपभोग की वस्तु मानकर प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध शोषण करने लगे, फलस्वरूप कई प्रकार के पर्यावरण संकट भी उभर आने लगे। ग्लोबल वार्मिंग, वर्षा में कमी, ओसोन परत का क्षय, अम्ल वर्षा, मौसम में परिवर्तन आदि समस्याओं के कारण पृथ्वी की स्थिति इतनी ख़तरनाक हो गयी है कि वह स्वयं अपना संतुलन बनाये रख्ने में अक्षम सिद्ध हुई है। इस प्रकार प्रकृति पर मानव का बढता हस्तक्षेप जब पृथ्वी में जीवन के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगाने लगा तब समाज के कुछ सजग लोग इसके विरुद्ध आवाज़ उठाने लगे। फलस्वरूप पर्यावरण संरक्षण के लिए कई प्रकार के आन्दोलनों व सम्मेलनों का आयोजन हुआ। साहित्य के क्षेत्र में भी इस गंभीर समस्या के प्रति चर्चाएँ होने लगीं और साहित्य में पारिस्थितिक विमर्श नामक एक नई विचारधारा उभर आयी। भारत में चिपको आन्दोलन, सैलेंडवाली आन्दोलन, भोपाल गैस त्रासदी आदि घटनाओं के कारण पर्यावरण संबंधी सजगता भारतीय जन-मानस में बल पकडने लगी। भारतीय सृजनात्मक साहित्य में भी पारिस्थितिक समस्या ने गंभीर विषय के रूप में स्थान प्राप्त किया है। साहित्यकार ने इस प्राकृतिक विध्वंस को रोकने केलिए, प्रकृति के साथ की अमानवीय वृत्ति के प्रतिरोध को अपने दायित्व के रूप में स्वीकार किया। हिन्दी के सृजनात्मक साहित्य में विशेषकर उपन्यास, कविता, कहानी में पृथ्वी को आसन्न मृत्यु से बचाने की कोशिश ज़ोरों पर दिख्राई देती है।

मानव जीवन के विकास में पर्यावरण का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। पर्यावरण से तात्पर्य है हमारी चारों दिशाओं में घिरा हुआ आवरण, जिसमें अनेक प्रकार के जैविक-अजैविक घटक होते हैं और प्रत्येक घटक एक दूसरे से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में प्रभावित होते हैं। मानव भी इस पर्यावरण का एक अंग मात्र है। पहले-पहले मानव इस यथार्थ को पहचानकर प्रकृति के साथ निर्ममतापूर्ण व्यवहार करते थे। लेकिन जब वह धीर-धीरे प्रगति तथा विकास की ओर अग्रसर होने लगे तब से अपने को प्रकृति का शासक मानने लगे और प्राकृतिक संसाधनों को लूटने लगे। फलस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण उभर आने लगे। पर्यावरण के यह बदलते रूप विज्ञान के क्षेत्र में भी अध्ययन के विषय बन गये हैं जो 'पारिस्थितिक विज्ञान' नाम से जाने जाते हैं। पर्यावरण के प्रति मानव के बदलते दृष्टिकोण के कारण समाज में पारिस्थितिक दर्शन का भी उदय हुआ। इसकी मुख्यतः चार शाखाएँ हैं- गहन पारिस्थितिवाद, सामाजिक पारिस्थितिवाद, पारिस्थितिक मार्क्सवाद और पारिस्थितिक स्त्रीवाद। गहन पारिस्थितिवाद के प्रवर्तक हैं नोर्वे के पारिस्थितिक चिंतक आर्ननेस। उनके अनुसार प्रकृति में मानव के समान सभी तत्वों का अपना महत्व होता है। प्रत्येक सत्ता का महत्व इस पर केन्द्रित नहीं कि वह मानव के लिए उपयोगी है या नहीं। इसलिए मानव को दूसरे जीवों का अस्तित्व बर्बाद करने का कोई अधिकार नहीं है। सामाजिक पारिस्थितिवाद के प्रवर्तक हैं मुरे बुक्कचिन। इसमें बक्कचिन ने पारिस्थितिक समस्याओं का मूल कारण मानव की प्रभुत्व मानसिकता को मानकर उन्हें समाज से दूर करने का आह्वान दिया है। मैकल बकुनिन के अनारकिसम तथा मार्क्स और ऐंगल्स के कम्यूनिसम को आधार बनाकर आविष्कृत एक विचारधारा है पारिस्थितिक मार्क्सवाद, जिसके अनुसार समाज में जारी रखनेवाली पूँजीवादी व्यवस्था ही प्राकृतिक समस्याओं के मूल कारण हैं। मानव की यह

शोषणपरक मानसिकता बदलनी चाहिए। आधुनिक नारीवादियों में सबसे पहले सीमोन द बुआ ने स्त्री और प्रकृति को एक साथ रखकर प्रस्तुत की गयी विचारधारा है इको फेमिनिज़्म। स्त्री और प्रकृति का शोषण सभी देशों में हो रहा है। लेकिन सीमोन द बुआ ने इन दोनों को एक सिक्के के दो पहलू के रूप में देखकर पारिस्थितिक आन्दोलन के ज़रिए महिलाओं को पृथ्वी तथा स्त्री की मुक्ति के लिए प्रयत्न करने का आह्वान दिया।

इस प्रकार दिन-प्रतिदिन बढती जा रही पारिस्थितिक समस्याएँ हल करने के लिए राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कई प्रयास किये जा रहे हैं। सन् 1972 में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में स्टॉकहोम सम्मेलन का आयोजन किया गया। सम्मेलन के लक्ष्य थे कि पर्यावरण संरक्षण के प्रति संपूर्ण विश्व को अवगत कराना और इसके लिए महत्वपूर्ण कार्यक्रमों को स्वीकार करने हेतु प्रोत्साहन देना। बाद में नैरोबी सम्मेलन, वियन्ना सम्मेलन, रयोघोषणा, क्योटो प्रोटोकोल, कोपनहेगन सम्मेलन आदि का भी आयोजन हुआ था। भारत में भी पर्यावरण संरक्षण के लिए कई प्रकार के कार्यक्रम किये जा रहे हैं। भारतीय संविधान में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा स्पष्ट रूप में निर्धारित की है और संसद द्वारा पर्यावरण संरक्षण के लिए कई अधिनियम पारित किये गये हैं। भारत के पर्यावरण संरक्षण आन्दोलन में चिपको आन्दोलन मील का पत्थर है। इसके बाद सैलेंडवाली आन्दोलन, नर्मदा बचाओ आन्दोलन, गंगा रक्षा आन्दोलन आदि कई आन्दोलन पर्यावरण संरक्षण में सहायक बन गए हैं। इस दिशा में साहित्यकार का प्रयत्न भी प्रशंसनीय है। समकालीन साहित्यकार तत्कालीन समाज की प्रायः सभी समस्याओं को अपनी रचना के विषय के रूप में स्वीकार किये हैं। इस प्रकार पारिस्थितिक चिंतन समकालीन साहित्य का मुख्य विषय बन गया है। हिन्दी की कविता, उपन्यास, कहानी आदि

प्रायः सभी विधाएँ इस विषय को अभिव्यक्त करने में सक्षम सिद्ध हुई हैं। अस्स्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में प्रस्तुत समस्या के प्रति विशेष चर्चाएँ हो रही हैं।

उपन्यास मानव जीवन के बहुत निकट है। मानव जीवन से जुडे प्रायः संपूर्ण विषयों की अभिव्यक्ति उपन्यास में देखा जा सकता है। हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा में पूर्व प्रेमचंदयुगीन उपन्यास अपनी निर्माणात्मक अवस्था में थी, जिसमें औपन्यासिक तत्वों का अभाव था। उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद के आगमन ने उपन्यास विधा को नया मोड प्रदान किया। उत्तर प्रेमचंद युग के उपन्यास साहित्य समृद्धि तथा विकास के शिखरों तक पहूँच गया था। इसके बाद सन् 1960 से लेकर हिन्दी उपन्यासों में समसामयिक सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण देखने को मिलता है। आधुनिक युग में समकालीन समाज की प्रायः संपूर्ण समस्याओं को उसकी पूरी गहराई एवं समग्रता के साथ प्रस्तुत करने में उपन्यास विधा सफलता प्राप्त की है। इसलिए हम निसंदेह कह सकते हैं कि समस्त साहित्यिक विधाओं में उपन्यास एक सशक्त, लोकप्रिय एवं ख्यातिप्राप्त विधा बन गयी है।

समकालीन उपन्यास की एक प्रमुख प्रवृत्ति है पारिस्थितिक विमर्श। पारिस्थितिक विमर्श में प्रकृति की चेतावनियों को सुनकर मानव द्वारा अपनी गलतियों को सुधारने तथा प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण और समन्वयात्मक संबंध स्थापित करने का आह्वान देते हैं। हिन्दी के पारिस्थितिक उपन्यासों में सबसे प्रथम है रंगभूमि। प्रस्तुत उपन्यास में प्रेमचंद ने वर्षों पहले ही औद्योगीकरण से उत्पन्न पारिस्थितिक समस्याओं पर चर्चा की हैं। आज हम जिन पारिस्थितिक संकटों से गुज़र रहे हैं उसके बारे में सालों पहले ही प्रेमचंद जान लिये थे। उनकी इस दीर्घदृष्टि से उपजी महत्वपूर्ण रचना है रंगभूमि। इसके बाद सन् 1980 के बाद के

उपन्यासों में ही प्रस्तुत समस्या के बारे में गंभीर चर्चाएँ होने लगीं। इस कोटी में आनेवाले प्रमुख उपन्यास हैं- संजीव के सावधान! नीचे आग है, धार, वीरेंद्र जैन के डूब, पार, महुआमाजी का मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, रणेन्द्र का ग्लोबल गाँव के देवता, नवीन जोशी का दावानल, राजू शर्मा का हलफनामे, मैत्रेयी पुष्पा का इदन्नमम, नासिरा शर्मा का कुइयाँजान, कमलेश्वर का अनबीता व्यतीत आदि।

पर्यावरण प्रदूषण मुख्यतः प्रकृति के तीन तत्वों पर ही प्रभावित होते हैं- जल, वायु और मिट्टी। ये सब पर्यावरण के अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व हैं, जिसके प्रदूषण से पृथ्वी में जीवन असंभव है। इसलिए उसे शुद्ध रखना अत्यंत अनिवार्य है। लेकिन आधुनिक युग में मानव के अविवेकपूर्ण क्रिया-कलापों द्वारा तथा नयी-नयी विकास योजनाओं के कारण जल-वायु-मिट्टी आदि के प्रदूषण बढ रहे हैं। खनन उद्योग, बाँधों का निर्माण, बोरवेल उद्योग, वनों की अंधाधुंध कटाई, क्रशर उद्योग, कारखानों का भारमार आदि कई कारणों से उत्पन्न पर्यावरण प्रदूषण सबसे अधिक भयानक और खतरनाक हैं।

मानव जाति की विकास यात्रा में खनिज पदार्थ महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। किसी भी देश के आर्थिक तथा औद्योगिक प्रगति में खनिज पदार्थों का स्थान अद्वितीय है। इसलिए ही खनिजों को देश की अर्थव्यवस्था की रीढ कही जाती है। लेकिन वर्तमान युग में खनिज पदार्थों की बढती माँग के कारण अवैध खनन आम बात बन गयी है। देश के अधिकांश खदान, माफिया लोग ही चलाते हैं। ये लोग पारिस्थितिक समस्याओं को नज़रअंदाज़ करके सिर्फ अपनी आर्थिक उन्नति को ही लक्ष्य करते हुए खनिजों का अविवेकपूर्ण दोहन किये जा रहे हैं। खनन कार्य की वजह से उत्पन्न पारिस्थितिक आघात सबसे अधिक भयानक तथा खतरनाक है। खनन

उद्योग में सबसे पहले वन-संपत्ति का व्यापक नाश होता है। जल-वायु-मिट्टी प्रदूषित होती हैं। भूमि धँस जाती है। रेडियोधर्मी प्रदूषण भी होते हैं। इन सबका चित्रण संजीव के 'सावधान! नीचे आग है' और 'धार', महुआमाजी का 'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ', रणेन्द्र का 'ग्लोबल गाँव के देवता' आदि उपन्यासों में देख सकते हैं। खनन कार्य से उत्पन्न रेडियोधर्मी प्रदूषण का एक सशक्त उदाहरण है महुआमाजी का 'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ' नामक उपन्यास। प्रस्तुत उपन्यास में युरेनियम की विध्वंसकारी शक्ति का चित्रण अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

बाँधों के निर्माण के कारण भी कई प्रकार की पारिस्थितिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। वीरेन्द्र जैन के 'डूब' और 'पार' दोनों उपन्यासों में इसका ही चित्रण हम देख सकते हैं। आज़ादी के बाद भारतवर्ष विकास के पीछे पड रहा था। देश के नेताओं ने बाँधों के निर्माण पर विशेष ध्यान दिया। बिजली उत्पादन, सूखा से मुक्ति, सिंचाई आदि कई उद्देश्यों से ही बाँधों का निर्माण करते हैं। लेकिन इससे भारतीय गाँव उजड गये, कृषिभूमि बंजर बन गये, नदियों की मृत्यु हुई, वन-संपत्ति का नाश हुआ, भूक्षरण हुआ, बाढ-सूखा आदि आपदाएँ होने लगी, जैवविविधता का ह्रास हुआ और कई लोग विस्थापित हुए। इस प्रकार आज बाँध विकास के बदले विनाश का पर्याय ही बन गया।

हमारे देश में वनसंपत्ति का व्यापारीकरण और पेडों की नीलामी अधिकाधिक रूप में हो रहे हैं। देश के शासनतंत्र द्वारा बहुराष्ट्रीय कंपनियों तथा ठेकेदारों को वन-संपत्ति बेच रहे हैं जिसके कारण जंगलों का निर्दयतापूर्वक शोषण हो रहा है। देश में बढती वन विनाश के कारण कई प्रकार की पारिस्थितिक समस्याएँ हो रही हैं, जो जल-संकट, वायु-प्रदूषण, भूस्खलन, बाढ, सूखा आदि में परिणत हो जाती हैं। वन-

विनाश से उत्पन्न समस्याओं का दस्तावेज़ हैं नवीन जोशी का 'दावानल' और मनमोहन पाठक का 'गगन घटा घहरानी'। प्रस्तुत उपन्यास में सरकार द्वारा किये जानेवाले वन-व्यापारीकरण तथा उसके दुष्प्रभावों को चित्रित किया गया है।

आधुनिक युग में पानी की किल्लत से बचने के लिए बोरवेल खोदना आम बात बन गयी है। आज यह एक उद्योग के रूप में पनप रही है। इसप्रकार दिन प्रतिदिन बढते बोरवेल उद्योग ही देश में पानी-संकट का मुख्य कारण है। इससे पानी की किल्लत भारी पड जाती है, सूखा पड जाता है और खेती नष्ट हो जाती है। खेती का नाश किसान लोगों की खुदकुशी का भी कारण बन जाता है। इस प्रकार देश में बढती जा रही भूगर्भजल शोषण तथा तज्जन्य समस्याओं को आधार बनाकर राजू शर्मा द्वारा लिखा गया उपन्यास है 'हलफनामे'।

आधुनिक युग में औद्योगिक क्रांति की वजह से जगह-जगह पर कई प्रकार के कारखानों का भरमार हो रहा है। औद्योगिक क्रांति ने संपूर्ण दुनिया में ज़हर घोल रही है। इससे उत्पन्न पारिस्थितिक समस्याएँ सबसे ज़्यादा खतरनाक है। कारखानों से बाहर निकालनेवाले धुआँ, रासयनिक पदार्थों से युक्त अपशिष्ट, आदि के कारण जल, वायु, मिट्टी सब प्रदूषित हो रहे हैं और ध्वनि प्रदूषण भी हो जाता है। वनस्पतियों का नाश, जलस्रोतों की मृत्यु, जैवविविधता का नाश, अम्ल वर्षा आदि भी औद्योगिक क्रांति का नतीजा है। संजीव के 'धार' नामक उपन्यास में कारखानों से होनेवाले रासयनिक प्रदूषण का चित्रण अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

खनन उद्योग से उत्पन्न पारिस्थितिक समस्याओं के समान ही चिंतनीय मुद्दा है क्रशर उद्योग से उत्पन्न समस्याएँ। आज हमारे देश में बढते जा रहे क्रशर उद्योग से भयानक और खतरनाक पारिस्थितिक प्रदूषण हो जाते हैं। पहाडों को पीस करनेवाले

क्रशरों से वायु, जल, मिट्टी प्रदूषण बढते हैं, कई प्रकार की बीमारियाँ होती है, वन-विनाश होते हैं। इन सबका चित्रण मैत्रेयी पुष्पा के इदन्नमम उपन्यास में देख़ सकते हैं।

इस प्रकार आधुनिक युग में आर्थिक प्रगति तथा भौतिक सुख़-सुविधाओं के लिए मानव द्वारा प्राकृतिक संसाधनों की लूट ही हो रही है। प्रकृति पर मानव द्वारा किये जानेवाले इन हस्तक्षेपों की अभिव्यक्ति हिन्दी उपन्यासों में हम देख़ सकते हैं। समकालीन साहित्यकारों ने आधुनिक मानव की इस बदलती मानसिकता को प्रस्तुत करके उसपर अपना प्रतिरोध प्रकट किया है।

समकालीन साहित्य का मुख़्य स्वर प्रतिरोध का है। समाज में फैले अन्यायों के विरुद्ध आक्रोश प्रकट करना ही प्रतिरोध है। भारत में प्रतिरोध का अपना इतिहास है। आज दुनियाभर में होनेवाले प्रतिरोधों में महत्वपूर्ण है पारिस्थितिक आन्दोलन। हमारे देश में पर्यावरण संरक्षण के लिए बनाये गये कानूनों में कोई कमी नहीं है। फिर भी जंगल काटे जा रहे हैं, भूमि बंजर बन रही है, जल-वायु-मिट्टी प्रदूषित हो रही हैं। इसलिए ही पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में कई संगठनों तथा स्वयंसेवी संस्थाएँ कार्यरत हैं। इन सबके द्वारा किये जानेवाले प्रयत्नों के समान ही महत्वपूर्ण है साहित्य के द्वारा किया जानेवाला प्रयास। साहित्यिक रचनाओं में कई प्रकार की पारिस्थितिक समस्याओं को चित्रित करके पर्यावरण संरक्षण के लिए लडनेवाले पात्रों की अभिव्यक्ति देख़ सकते हैं। इन रचनाओं में प्रतिरोध के सफल और असफल दोनों रूपों का चित्रण देख़ सकते हैं। पात्रों द्वारा किये जानेवाले अधिकांश आन्दोलन पूँजीपति तथा शासनतंत्र दबाते हैं। फिर भी साहित्य की एक ख़ूबी यह है कि उनमें

चित्रित प्रतिरोध सफल हो या असफल, पाठकों के मन में प्रत्येक समस्या के प्रति जनता को अवगत करने में लेखक सफल हो जाते हैं।

वर्तमान युग में मानव और प्रकृति के बीच टूट रहे रिश्ते को पुनः मिलाना अत्यंत अनिवार्य है। नहीं तो पृथ्वी में जीवन का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। इसके लिए हर एक व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार प्रयत्न करना चाहिए। आधुनिक युग की पारिस्थितिक समस्याओं को रोकने के लिए सबसे पहले 'पर्यावरण शिक्षा' को अनिवार्य रूप से स्वीकार करना ज़रूरी है। बच्चों के सार्वजनिक शिक्षा के अंतर्गत पर्यावरण शिक्षा को भी जोडकर अध्ययन करने का मौका दिया जाये तो प्रस्तुत समस्या का हल एक हद तक संभव होगा। इसके अलावा सामान्य जनता को भी इस भीषण समस्या के प्रति अवगत कराना, वन-संपत्ति का संरक्षण करना, वृक्षारोपण को प्रोत्साहन देना, परिवहन व्यवस्था में सुधार लाना, निजी वाहनों का उपयोग कम करना, पवन-चक्कियों तथा सौरऊर्जा का अधिक उपयोग करना, बयोगैस प्लांट स्थापित करना आदि कई प्रयत्नों से हर व्यक्ति खुद ही पर्यावरण संरक्षण में कदम रख सकते हैं। इस प्रकार पर्यावरण संरक्षण में सफलता प्राप्त कई वैयक्तिक तथा सामाजिक प्रयासों के उदाहरण हमारे आगे भी हैं। उनमें कुछ है-"टेड टॉक इंडिया नये सोच' नामक कार्यक्रम में आये एक इंजिनीयर 'शुभेन्दु शर्मा' की कहानी। वे टोयोटा कंपनी में ही काम करते थे। तब वहाँ से उनकी मुलाकात जापान के एक विशेषज्ञ 'मियावाकी' से हुआ। उनसे प्रेरणा पाकर शुभेन्दु शर्मा ने अपने घर के आसपास एक छोटा-सा जंगल बनाया। बाद में अपनी नौकरी छोडकर जंगल बनाने के काम में व्यस्त होने लगे। उनका कथन था कि छह कारों को पार्किंग करने लायक एक जगह में एक आय-फोन (i-phone) खरीदने की कीमत में तीन सौ

पेडों का एक जंगल बडी आसानी से हम लगा सकते हैं। उनकी यह पद्धति 'मियावाकी मेथेड' नाम से जानी जाती है।

प्रस्तुत कार्यक्रम में ही अनिरुद्ध शर्मा नामक एक विशेषज्ञ आये थे। उन्होंने अनुसंधान करके दुनिया को दिखाया कि वाहनों से बाहर निकालनेवाले धुआँ से स्याही बनाया जा सकता है और इस स्याही से पेयिन्टिंग कर सकते हैं।

जंगल के निर्माण कार्य में मध्यप्रदेश के आदिवासियों का प्रयत्न भी सराहनीय है। मध्यप्रदेश के झाबुआ जिले के आदिवासी समाज जंगल का निर्माण कर रहे हैं। जिले के 110 गाँवों में इन लोगों ने मिलकर जंगल बनाया है।

यदि शासन और समाज मिलकर प्रयास करें तो खनन क्षेत्र का भी पुनः संवर्धन किया जा सकता है। इसका उदाहरण है गुजरात के बडौदा, मुंबई राजमार्ग के किनारे कार्यरत चीनी मिट्टी का खदान क्षेत्र। वहाँ खनन कार्य के कारण बंजर बन गयी भूमि को सबने मिलकर सजाया और सँवारा गया है। खनन के दौरान बने गड्ढों को झील का रूप देकर उसमें मछलियाँ पाली जा रही है और इन झीलों के चारों ओर हज़ारों पेड लगाए गये हैं। इस प्रकार परित्यक्त भूमि को नया रूप दिया है।

यह सब हमारे लिए भी प्रेरणादायक है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार दृढ चित्त होकर प्रकृति की ओर वापस लौटने का नारा लेकर पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रयत्न करना चाहिए। जिससे हम खुद हमारा अस्तित्व बचा सकते हैं तथा आनेवाली पीढी को भी एक सुखद जीवन प्रदान कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

- आधार ग्रंथ

1. नवीन जोशी : दावानल
   सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
2. मनमोहन पाठक : गगन घटा घहरानी
   ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2015
3. महुआ माजी : मरंग गोडा नीलकंठ हुआ
   राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
4. मैत्रेयी पुष्पा : इदन्नमम
   राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999
5. रणेन्द्र : ग्लोबल गाँव के देवता
   भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2009
6. राजू शर्मा : हलफनामे
   राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
7. वीरेन्द्र जैन : डूब
   वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014
8. वीरेन्द्र जैन : पार
   वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994
9. संजीव : धार
   राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990
10. संजीव : सावधान ! नीचे आग है
    राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986

- **समीक्षा ग्रंथ**

1. डॉ. के. अजिता : आस्वादन के आयाम
   डॉक्टरेट ऑफ पब्लिक रिलेशन आन्ड पब्लिकेशन्स, केरला, 2012
2. सं. अतुल शर्मा : पर्यावरण और वन संरक्षण समस्या एवं समाधान
   तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991
3. सं. अनुपम मिश्र : जीवन संपदा और पर्यावरण
   बालवाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
4. सं.डॉ.वी.के.अब्दुल जलील : समकालीन हिन्दी उपन्यास : समय और संवेदना
   वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
5. डॉ. अर्जुन चाव्हाण : राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन
   राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995
6. उमेश राठौर : पर्यावरण संकट एवं प्रदूषण का कहर
   तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000
7. डॉ.एलाङ्बम विजयलक्ष्मी : समकालीन हिन्दी उपन्यास : समय से साक्षात्कार
   राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
8. कमलेश्वर : अनबीता व्यतीत
   लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004
9. कृष्णदत्त पालीवाल : आधुनिकता संवेदना और संप्रेषण
   वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010

10. गोपाल राय : हिन्दी उपन्यास का इतिहास
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013

11. डॉ. जार्ज मम्मन : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और आधुनिकताबोध
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 2006

12. डॉ. जालिंदर इंगले : समकालीन हिन्दी उपन्यास : वर्ग एवं वर्ण संघर्ष
चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर, 2007

13. डॉ.पी.एस.थॉमस : भारतीय मध्यवर्ग और सामाजिक उपन्यास
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 1995

14. सं. दामोदर शर्मा, हरिश्चंद्र व्यास : आधुनिक जीवन और पर्यावरण
प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005

15. डॉ.नगीना जैन : आँचलिकता और हिन्दी उपन्यास
अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1976

16. डॉ. नरनारायण तिवारी : हिन्दी कहानी में प्रकृति चित्रण
अमन प्रकाशन, मथुरा, 2005

17. नासिरा शर्मा : कुइयाँजान
सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005

18. नित्यानंद पटेल : प्रेमचंद के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक चेतना
लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980

19. डॉ.नीता पांढरीपांडे : हिन्दी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएँ
अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, 2009

20. डॉ. पंडित बन्ने : आधुनिक हिन्दी साहित्य : विविध परिदृश्य
निशा पब्लिकेशन, कानपुर

21. सं. पलक भारद्वाज, बी.एल. शर्मा : मानव एवं पर्यावरण
मालिक एम्ड कंपनी, जयपुर, 2003

22. डॉ.पारुकान्त देशाई : हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास
चिंतन प्रकाशन, कानपुर, 2002

23. डॉ. प्रतापनारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास कला
हिन्दी समिति, लखनाऊ

24. डॉ. प्रतापनारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास
विवेक प्रकाशन, लखनाऊ, 1967

25. प्रतिभा मुदलियार : स्त्री विमर्श और समकालीन साहित्यिक संदर्भ
अमन प्रकाशन, मथुरा, 2017

26. डॉ.प्रभा कुमारी : जनसंख्या विस्फोट और पर्यावरण प्रदूषण
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010

27. डॉ.प्रमीला.के.पी : औरत की अभिव्यक्ति एवं आदमी का अधिकार,
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 2004

28. प्रसीता.पी : प्रवासी भारतीय की समस्याएँ एवं संवेदनाएँ
शिवना प्रकाशन, सीहोर, 2018

29. प्रेमचंद : रंगभूमि
सुमित्र प्रकाशन,
इलाहाबाद, 2006

30. डॉ.एम फिरोज़ ख़ान : हम भी इंसान है
वाङ्मय बुक्स, अलीगढ, 2018

31. डॉ. बाबा साहेब कोकाटे : हिन्दी साहित्य में महानगरीय नारी जीवन
समता प्रकाशन, कानपुर, 2003

32. सं.डी.वी भट्टाचार्य : विज्ञानः नयी चुनौतियाँ
अरुणोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003

33. डॉ.भरत घोंडीराम सगरे : इक्कीसवीं सदी का दलित साहित्य
पूजा पब्लिकेशन, कानपुर, 2014

34. डॉ.मनोहर भंडारे : सत्तरोत्तर ग्राम केन्द्रित उपन्यासों का मूल्यांकन
अमन प्रकाशन, कानपुर, 2009

35. एन. मोहनन : समकालीन हिन्दी उपन्यास
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013

36. डॉ.मोहम्मद जमील अहमद : अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का चित्रण
अन्नपूर्ण प्रकाशन, कानपुर, 2006

37. डॉ.रघुवर दयाल वार्ष्णेय : प्रेमचंद और उनकी उपन्यास कला
प्रतापचंद, जैसवाल, 1970

38. सं.डॉ.रणजीत, डॉ.भारतेंदु प्रकाश : पर्यावरण और विकास
साहित्य रत्नाकार, कानपुर, 1993

39. सं. रमणिका गुप्ता : आदिवासी कौन
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008

40. डॉ.राजकुमारी गुगलानी : उपन्यासकार प्रेमचंद : समाज शास्त्रीय अध्ययन
मथन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1983

41. डॉ. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1955

42. रामदरश मिश्र : हिन्दी उपन्यास- एक अन्तर्यात्रा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1968

43. सं.डॉ.रामदरश मिश्र, डॉ.महीपसिंह : समकालीन साहित्य चिंतन
ज्ञानगंगा, नई दिल्ली, 1995

44. डॉ.राम लखन मीणा : मीडिया विमर्श आधुनिक संदर्भ
कल्पना प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012

45. रामशरण जोशी : प्रतिरोध की विरासत और वैश्विक पूँजी का प्रभुत्व
शिल्पायन, नई दिल्ली, 2010

46. रोहिताश्व : समकालीनता और शाश्वतता
विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2006

47. डॉ.लक्ष्मण तुलसीराम काले : सांप्रदायिक उपन्यास और कितने पाकिस्तान
विकास प्रकाशन, कानपुर, 2015

48. के. वनजा : साहित्य का पारिस्थितिक दर्शन
वाणी प्रकाशन,
नई दिल्ली, 2011

49. शिवानन्द नौटियाल : पर्यावरण : समस्या और समाधान
सामयिक प्रकाशन,
नई दिल्ली, 2012

50. शेख़ अफरोज फातेमा : नासिरा शर्मा का कथा साहित्य वर्तमान समय के सरोकार
अतुल प्रकाशन, कानपुर, 2012

51. सं.एम. षणमुख्रन : समकालीन हिन्दी उपन्यास
जवाहर पुस्तकालय, 2012

52. डॉ. सुप्रिया : हिन्दी उपन्यास के विदेशी पात्र
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 2009

53. प्रो. डॉ. सौ माधवी रूपवाल : नरेन्द्र कोहली के उपन्यास समकालीन सरोकार
अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर

54. डॉ. स्वाती नारखेडे : हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श
रोली प्रकाशन, कानपुर, 2016

55. हंसराज रहबर : प्रेमचंद : जीवन, कला और कृतित्व
साक्षी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1949

56. डॉ.हरिनारायण श्रीवास्तव : वायुमंडलीय प्रदूषण
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992

57. डॉ. हरिमोहन : संस्कृति, पर्यावरण और पर्यटन
तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996

- **मलयालम ग्रंथ**

1. सं. अनिल कुमार : मुल्लप्पेरियार
पापिरस बुक्स, कोट्टयम

2. सं.प्रो. पन्मना रामचन्द्रन नायर : परिस्थिति पठनन्ङल
करन्ट बुक्स, कोषि़क्कोड, 2010

3. सं.जी. मधुसूदनन : हरित निरूपणम् मलयालत्तिल्
करन्ट बुक्स, तृशूर, 2002

4. सं. मनिला. सी. मोहन : माधव गाडगिलुम पश्चिमघट्ट संरक्षणवुम्
मातृभूमि बुक्स, 2014

5. एन.रवीन्द्रन : विषमष़यिल इल्लाताय मण्णुम मनुष्यनुम
डी.सी. बुक्स, कोट्टयम, 2016

6. सं.सी. रहीम : परिस्थितियुडे राष्ट्रीयम्
फेबियन बुक्स, आलप्पुष़ा, 2003

7. एस. राजशेखरन : परिस्थिति दर्शनम् मलयालम कवितयिल
केरल भाषा इंस्टिट्यूट,
तिरुवनंतपुरम, 2010

8. शशिधरन मन्कत्तिल : मुल्लप्पेरियार अणक्केट्टुम केरलत्तिन्टे भावियुम
मातृभूमी बुक्स, 2008

9. अनु: एम.पी. सदाशिवन : कूडुतल जननन्मक्कु वेण्डि
डी.सी.बुक्स, कोट्टयम्, 1999

- **पत्रिकाएँ**

1. अनुशीलन, जनवरी, 2013

2. आलोचना, जनवरी-मार्च, 2015

3. जन विकल्प, सितंबर, 2018

4. नवनिकष, अक्तूबर, 2015

5. शोध अमृत, जून, 2013

6. संग्रथन, अक्तूबर, 2014

7. संग्रथन, अगस्त, 2014

8. संग्रथन, नवंबर, 2014

9. संग्रथन, मई, 2012